छायावादोत्तर प्रबन्ध-काव्यों में भाषा और संवेदना का स्वरुप

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल्. उपाधि हेतु प्रस्तुत)

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तोत्री

कु० वेणु सिंह

निर्देशिका

डॉ० गिरिजा राय

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

1993

x
x
xxx
xxx समर्पण xxx
xxx
x
x

आदर्श स्वरूपा, स्नेहशीला ममता की प्रतिमूर्ति

आदरणीया जिज्जी जी

(डा० शीला सिंह)

तथा

मम्मी (श्रीमती ऊषा सिंह राठौर)

के चरणों में सादर समर्पित

साथ में,

परमप्रिय मौसी स्वर्गीया श्रीमती स्नेहलता सिंह

की

पावन स्मृति में

xxxxxxxxxxxxxxxxxxx
xxxxxxxxxxxxxxxxx
xxxxxxxxxxxxxxx

प्राक्कथन

छायावादोत्तर काल हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के विकास और विस्तार का युग है । इस सीमित काल - परिवेश का खड़ी बोली हिन्दी का प्रबन्ध साहित्य काफी समृद्ध है क्योंकि इस काल में भाषा एवं भाव की दृष्टि से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं । स्वतन्त्रता के पूर्व काल में खड़ी बोली ब्रज भाषा को क्रमश: अपदस्थ करती हुयी आज गद्य तथा पद्य दोनों क्षेत्रों शिखर जा पहुँची ।

नयी कविता की प्रवृत्ति मूलत: प्रबन्धात्मक नहीं है, क्योंकि नयी कविता के सभी समर्थ रचनाकारों ने अपनी सृजनधर्मिता के प्रारम्भिक दौर में छन्द एवं बन्ध मुक्त रचनात्मक उपक्रम ही अपनाया था । क्षण वादी दर्शन और विघटित व्यक्तित्वों वाली धारणा के कारण नवीन कवियों में कथा या घटना श्रृंखलित प्रबन्ध काव्य लिखने का उत्साह कम दृष्टिगोचर होता है अत: क्षण की धारणा को आधुनिक कवियों ने संशोधित रूप में प्रस्तुत किया । वर्तमान युग के बिखरे और टूटे सत्यों को लेकर श्रृंखलाबद्ध काव्य लिखना अत्यन्त कठिन है । आज की रचना हमारे उपेक्षित सामान्य दैनिक जीवन और भीतरी व्यक्तित्व के अनेक सत्यों को स्वीकार करके चलती है । दैनिक जीवन की सामान्य पर गहन अनुभूतियों और व्यक्तित्व के भीतरी स्तरों को उजागर करके ही आज की रचना सार्थक हो सकती है आज के युगीन मूल्य बदल गये हैं । लघुता या सामान्यता को विशिष्टता प्रदान करना ही आज की प्रवृत्ति है । लोकतन्त्र की स्थापना से इस प्रवृत्ति को और भी विकसित होने

का बल मिला है । रूढ़ि सामूहिकता टूटने एवं गतिशील सामाजिकता के विकास से व्यक्ति को समादर प्राप्त हुआ है,

जिसके कारण व्यक्ति सामाजिक दायित्व, नैतिकता या आदर्श का निर्जीव अंश न होकर सजीव इकाई बन गया है । आज के व्यक्ति में स्व और सामाजिकता का अपूर्ण मिश्रण है अर्थात् प्रजा और सामान्य मानवता को शक्ति और सत्ता मिली है । कल के उपेक्षित, अपमानित और महत्व हीन सामान्य व्यक्तियों को आगे आने का अवसर प्राप्त हुआ है । युग की जो अनेक समस्याएं आती जाती रहती है तथा मनुष्य को तोड़ती हैं, जिन पर साधारण मानव विचार नहीं करता, जिसे नियति का अभिशाप मान लेता है वही रचनाकार उसमें तन्मय हो जाता है । वर्तमान समस्याओं ने उसे चिन्तन के लिए लाचार कर क दिया है । समस्याएं अनेक हैं कतिपय व्यापक समस्याओं पर कवियों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं जैसे - युग-बोध, व्यक्तित्व की रक्षा, व्यक्ति और समाज का परस्पर सम्बन्ध, पुरुष और नारी का जीवन क्षेत्र, भावना और बुद्धि का द्वन्द, वैज्ञानिक प्रगति और संस्कृति ।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवित रहने का कारण युग एवं परिवेश का बोध है । वह युग चाहे भयावह और विनाशगामी हो या समृद्धि की ओर, व्यक्तित्व

के निर्माण में उसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है । वर्तमान परिस्थितियाँ प्रतिकूल एवं आतंक से परिपूर्ण हैं ।युद्ध की समस्या और समाधान ने विश्व को भ्रमित कर दिया है ।। रचनाकार स्वयं को इस स्थिति में संवेदना शून्य पाता है क्योंकि उसकी चिन्तन शक्ति और संवेदना शक्ति समस्या के दूरगामी परिणाम प्रस्तुत करती है । इस चेतना से असम्पृक्त होना उसके बस की बात नहीं है । " अंधायुग " "एक कंठ विषपायी " और संशय की एक रात " इसी समस्या के एक एक छोर पर आत्ममंथन करते है और समाधान का मार्ग ढूंढते हैं । " अंधायुग " युद्धोपरान्त परिणामों की ओर संकेत करता है । " एक कंठ विषपायी " का पात्र सर्वहत रहते हुए मानव मूल्यों का टूटा हुआ किन्तु जीवित व्यक्ति है । " एक पुरुष और " में अस्तित्व के प्रश्न को उठाया गया है । " उर्वशी " का मूल स्वर प्रेम और काम है । " कनुप्रिया " में प्रेम की भावाकुल तन्मयता का चित्रण है । " संशय की एक रात " में राम को एक साधारण संशयी व्यक्ति बताया है । "शम्बूक " में प्रतिपक्ष की बुलन्द आवाज उठायी है । " आत्मजयी " में मनुष्य मृत्योपरान्त के प्रश्नों के समाधान को ढूंढता है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से नई कविता के उल्लिखित प्रबन्ध काव्यों में भाषा तथा संवेदना के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । इस शोध

की मूल दृष्टि प्रबन्ध काव्यों के माध्यम से नयी कविता (छायावादोत्तर कविता) की भाषिक संरचना व सृजनात्मक सामर्थ्य को उजागर करने की रही है। साथ ही छायावादोत्तर प्रबन्ध काव्यों को वृहत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्य परम्परा से जोड़ने वाले सूत्रों को भी खोजा गया है।

इस शोध के विषय की प्रेरणा और विचार मुझे अपनी निर्देशिका डा० श्रीमती गिरिजा राय से मिली थी। उनके निर्देशन में यह कठिन शोध कार्य सम्पन्न हो सका है। उनकी प्रेरणा और आशीष तथा समय - समय पर बहुमूल्य निर्देशन के प्रति आभार मुक्त होना सम्भव नहीं है। उनके अति व्यस्त जीवन में बार - बार व्यवधान बनने की धृष्टता करते हुए मैं निरन्तर उनसे दिशा निर्देश प्राप्त करती रही हूँ। उनका स्नेह आशीर्वाद मुझे सदा ही प्राप्त होता रहा है। उनके प्रति आभार मेरा यह शोध प्रबन्ध ही है।

इसके साथ साथ मैं अपनी जिज्जी पूजनीया डा० शीला सिंह, अम्मा व बड़े मामा डा० विजयकीर्ति प्रताप सिंह चौहान के प्रति भी नतमस्तक हूँ जिनके असीम स्नेह और आशीर्वाद के फलस्वरूप मैं अपना कार्य सुचारु रूप से कर सकी। आपने एवं बड़े मामा ने कठिन क्षणों में बराबर मेरा हौसला बढ़ाया है।

इस शोध प्रबन्ध की सामग्री को ढूंढने में मुझे काफी समय लगा । अक्सर मैं हताश और निराश हो जाया करती थी ऐसे क्षणों में मुझे निराशा के अंधकार से निकालने का कार्य करने वाले अपनी माँ तथा पिताजी के चरणों में मैं नतमस्तक हूँ । साथ ही रचनात्मक कार्यों में बराबर सहयोग देने वाली मेरे उत्साह को बढ़ाने वाली बहनें, अल्की तथा गुड़िया के प्रति अपने आभार को मात्र शब्दों से ही व्यक्त कर सकती हूँ । इन्हीं के स्नेह पूर्ण सहयोग से मैं अपना कार्य पूर्ण कर सकी ।

मैं अपने विभाग के सभी प्राध्यापकों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ । जिनका मुझे सदैव सहयोग प्राप्त हुआ ।

मुझे छायावादोत्तर प्रबन्ध काव्यों से सम्बन्धित ग्रन्थों को प्राप्त करने तथा अध्ययन करने एवं सार तत्वों को निकालने के लिए सदा से भारत में प्रसिद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से अभूतपूर्व सहायता मिली । साथ ही में हिन्दी साहित्य सम्मेलन से शोध कार्य से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने के लिए मैं इन पुस्तकालयों की आभारी हूँ ।

मैं अपने बड़े भाई दादा श्रीश सिंह, विनोद भइया, रमेश भइया की आभारी हूँ । जिन्होंने समय - समय पर शोध सामग्री ढूंढने में मेरी मदद की तथा बहुमूल्य सुझाव दिये । साथ ही अपने मित्रों में, सुभाष बाजपेयी, दिनेश मिश्रा, अमरेश जी की भी अभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य में समय समय पर सहयोग

और मार्ग दर्शन दिया ।

मैं अपने शोध कार्य के टंकण कार्य के लिए भाई श्री राकेश कुमार शुक्ला की भी आभारी हूँ, जिन्होंने अतिशीघ्र मेरे शोध प्रबन्ध का टंकण कार्य किया । साथ ही मैं शुभम् फोटो कापीयर्स को धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ ।

शोध छात्रा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद ।

विषयानुक्रमणिका

छायावादोत्तर प्रबन्ध काव्यों में भाषा और संवेदना का स्वरूप

xxxxxxxx

अध्याय - 1

आधुनिक हिन्दी कविता का विकास : भाषिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में

विश्व में किसी भी साहित्य का जन्म उस देश के समाज की आवश्यकता का प्रतिफल है। साहित्य के इतिहास के विभिन्न युग, युग विशेष के ही सन्दर्भ हैं। हिन्दी की नयी कविता की पृष्ठभूमि व्यापक और अन्तर्राष्ट्रीय है। फ्रांस में नयी कविता का उदय पिछली सदी में ही हो गया था। अंग्रेजी में प्रथम विश्व-युद्ध के बाद और हिन्दी भाषा में द्वितीय विश्व के बाद नयी काव्य दृष्टि तैयार हुयी है। प्रत्येक भाषा की साहित्यिक प्रवृत्तियों का विकास सामान्यतः सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के परिवृत्त में होता है। संवेदन-शील रचनाकार इन्हीं परिस्थितियों से प्रेरणा प्राप्त करता है। समकालीन स्थितियों को अनुरूप ही साहित्यिक संरचना में समस्याएं उभरती है तथा उसके नये नये समाधान होते हैं।

काव्य मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक जीवन्त माध्यम है। प्रभावान्विति की दृष्टि से काव्य मानवीय अन्तश्चेतना को आकृष्ट एवं प्रेरित करता है इसीलिए अनादिकाल से आज तक कविता का महत्व स्वीकारा गया है। आद्यान्त हिन्दी कविता की सुदीर्घ परम्परा से लेकर रीतिकाल तक के कवियों की चेतना राजा और ईश्वर के इर्द-गिर्द थी। लोक एवं स्वचेतना

का अभाव इस दीर्घकाल के साहित्य संसार में देखा जा सकता है । तुलसी ने अपने कलियुग -वर्णन में जो यथार्थ जीवन व्यंजित किया है, वह एक भक्त की दृष्टि है । रावण के नाश के लिए राम से वहाँ भी प्रार्थना ही की गयी है । रीतिकालीन कवियों ने जीवनानुभव साहित्यानुभव को अधिक प्रकट किया । कवि परम्परा श्रृंगार, नारी, प्रकृति, विषमता आदि को जिस अवस्था और जिस रूप में चित्रित करती रही, अपने ढंग से इन कवियों ने भी उसे उसी रूप में चित्रित किया । उस स्वानुभव और आग्रह मुक्त चिन्तन का अभाव इनके काव्य-जगत में देखा जा सकता है, जो जीवन संघर्षों के कड़वे मी-ठे अनुभवों के साथ सीधे साक्षात्कार के द्वारा कवि मानस में उद्घाटित होता है । ऐतिहासिक दृष्टि से आदिकाल से आधुनिक काल तक जो काव्य प्रवृत्तियाँ हुई हैं, उन्हें वीरगाथा काल, भक्ति काल, एवं रीति काल के नाम से सम्बोधित किया गया है, किन्तु आधुनिक काल को हिन्दी के साहित्यकारों ने अधुनातन काल,[1] विद्रोह का युग[2], परिवर्तन काल[3] गद्य- काल[4] आदि नाम दिये हैं ।

1· डा0 गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ0- 381

2· डा0 प्रतिपाल सिंह, बीसवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध के हिन्दी महाकाव्य पृ0-40

3· मिश्र बन्धु विनोद (संस्करण : 1913)

4· आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 - 383

आरम्भ में नयी कविता को सबसे अधिक प्रभावित किया था मनोविश्लेषणवादी, फ्रायड, युंग तथा एडलर ने । युग - युग से बाह्य जीवन में भटकता हुआ कवि फ्रायड की प्रेरणा से अवचेतन में झांकने की शक्ति पा सका था। वास्तव में मनुष्य की बाह्य गति आन्तरिक गति की अपेक्षा अधिक स्थूल और सीमित होती है । अतः जो प्रतीक पुराने अर्थों से भर जाते थे, नयी संवेदना अर्थ और अवचेतन की द्रुत गति के लिए अपर्याप्त सिद्ध हुए । नये प्रयोग, नये उपमान, नयी योजनाएं और नयी शैलियों की खोज के पीछे यही भूमिका है । टी०एस० इलियट ,डी०एच०लारेन्स और एजरा पाउण्ड इन कवियों का मार्गदर्शन कर रहे थे । परन्तु पश्चिमी चिन्तन के साथ - साथ कवियों ने अपनी पद्धति को भी अपनाया है । नयी कविता ने अपना सामाजिक और सांस्कृतिक दर्शन को दृढ़ बना लिया है इतना अधिक समय इसलिए लगा है कि अधिकांश पाठक जिन दिनों में जी रहे थे और जो भोग रहे थे, उसी के व्यक्त करने वाले नये काव्य दर्शन को नहीं समझ पा रहे थे, इसका कारण आत्म निरीक्षण की कमी थी । नये कवियों ने अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में अपने युग को समझा और समझाया है । लोक चेतना का प्रादुर्भाव सबसे पहले आधुनिक काव्य धारा में ही हुआ । जन सामान्य की सामान्य जिन्दगी में बिखरे हुए साहित्य के कणों को ढूंढने की

चेतना को इस युग में बल मिला । धर्म भावना के मध्यकालीन साहित्य मूल्य के स्थान पर लोक भावना की प्रतिष्ठा हुई - " हिन्दी काव्य के इतिहास की परम्परा में जो विभिन्न आन्दोलन आए उन्हें ध्यान में रखते हुए उन्नीसवीं शती में खडी बोली और उसके काव्य साहित्य के जन जागरण के विषय में कोई एक साधारण स्थापना करनी हो तो यही बात सबसे अधिक युक्तिसंगत और अभिप्राय पूर्ण होगी कि खड़ी बोली का अभ्युत्थान साहित्य में लौकिकता की प्रतिष्ठा और स्वीकृति का पर्याय था । निःसन्देह रीतिकाल के साहित्य में भी एक प्रकार की ला लौकिकता थी और उत्तर रीतिकाल की अतिरंजित श्रृंगारिकता में ऐन्द्रिय उत्तेजना के उपकरणों से आगे किसी गम्भीर आध्यात्मिक अभिप्राय की खोज पाठक की विश्वास क्षमता पर जोर डालती है, तथापि राजा के मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करने वाला कवि भी उस प्राचीन परम्परा का ही निर्वाह करता था, जिसके अनुसार राजा में देवता का अंश होता है : " राजभक्ति भी धर्म भक्ति का और इस प्रकार भगवत्भक्ति का एक अंश होती थी । हिन्दी काव्य परम्परा में इस समय तक धर्मभावना प्रधान रही । मुसलिम काल में जितने साहित्यिक आन्दोलन और उत्थान हुए सबकी मूल प्रेरणा धार्मिक ही रहा । उन्नीसवीं शती में जिस साहित्यिक उन्मेष का आरम्भ हुआ, वही पहले पहल इसका अपवाद हुआ :

उसकी मूल प्रेरणाएं धार्मिक न होकर लौकिक रहीं और उनमें व्याप्त लोक चेतना न केवल बनी रही वरन् क्रमशः और भी स्पष्ट और व्यापक होती गयी ।"[5]

आधुनिक हिन्दी साहित्य का आरम्भ भारतेन्दु काल से होता है, क्योंकि अपने सीमित रूप में ही सही भौतिक यथार्थ का प्रारम्भ वहीं से दीखता है । भारतेन्दु और उनके समकालीन लेखकों ने मध्यकाल की सामंती को त्याग कर नये जीवन - सन्दर्भों से साहित्य को सन्दर्भित करना प्रारम्भ किया । "भारतेन्दु कालीन हिन्दी काव्य यदि एक ओर रीति युगीन परम्परागत मांसल रोमांस के चित्र प्रस्तुत करता रहा तो दूसरी ओर तत्कालीन समाजगत हीनता भी उनमें दृष्टिगत होती रही और साथ ही नयी मान्यताओं की आदर्श स्थापना के सन्दर्भ में इस युग का नाम लिया जा सकता है ।"[6] इस तरह इस काल के यथार्थ -बोध में सामाजिक विषमता की ओर दृष्टिपात तो था किन्तु वह विषमता जितनी राष्ट्रीय परिवेश की देन थी उतनी वैज्ञानिक यांत्रिकता की नहीं, क्योंकि भारत में वह स्थिति अभी नहीं आई थी । यह क्रम द्विवेदी युग में चलता रहा । इस युग में आधुनिकता ने समाज और देश की मुक्ति और नव-निर्माण के साथ -साथ व्यक्ति के व्यक्तित्व की मुक्ति की भी आवाज उठायी । भारतेन्दु युगीन ब्रजभाषा के संस्कार के स्थान पर खड़ी बोली प्रतिष्ठित हुई । द्विवेदी युग के कवियों ने

5: अज्ञेय : हिन्दी साहित्य, एक आधुनिक परिदृश्य पृ0 - 44- 45

6. डा0 देवेश ठाकुर - नयी कविता के सात अध्याय ।

जो उपेक्षित पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रों को या उनके उपेक्षित व्यक्तियों को एक सीमा में महत्व और आधुनिक स्पर्श देने का प्रयास किया वह प्रकारान्तर से व्यक्ति की चेतना को मुक्त करने की दिशा में एक स्तुत्य आरम्भ था, किन्तु उनका मुख्य प्रयास तो समाज और राष्ट्र को गढ़ने या पुराने नैतिक मूल्यों को आधुनिक सन्दर्भों में पुनर्निर्मित करने का था । भारतेन्दु कालीन हिन्दी काव्य शास्त्र में कविता का स्वरूप परिवर्तित तो अवश्य हुआ है किन्तु वह परिवर्तन स्पष्ट रूप से उभर नहीं पाया है । कविता में रस अलंकार से लेकर समाज सुधार शिक्षा, देशोद्धार तक को स्थान दिया गया । प्राचीन क्लासिक कृतियों की अलंकृत शैली का विरोध भी किया गया एवं अलंकृत शैली में लिखने के लिए कवियों का आहवान भी किया गया । किन्तु कुल मिलाकर कविता का स्वरूप बदला है ।

द्विवेदी युग में कविता के क्षेत्र में परिवर्तन अत्यन्त स्पष्टता से परिलक्षित होने लगा था । पौराणिकता के स्थान पर बुद्धि वाद को बल मिला । प्रस्तुत कालीन कविता रीति कालीन कविता से इतनी बदल गयी थी कि दोनों में पूर्वापर सम्बन्ध स्थापित करना भी कठिन लगने लगता है । कवि रीतिकालीन संकुचित दृष्टिकोण से बाहर निकल आया था । उसकी संवेदना का विस्तार देश, राष्ट्र जननी, धर्म प्रकृति एवं ब्रह्म तक होने लगा था । यद्यपि मैथिलीशरण गुप्त अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध" और सियाराम शरण गुप्त के काव्य में

पौराणिकता और मध्ययुगीन मूल्य है पर उनके ऊपर नये युग के अनुरूप गांधीवाद, मानवीयता और राष्ट्रीय चेतना का भी पर्याप्त प्रभाव है यह अकारण नहीं है कि - राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है । कोई कवि बन जाय सहज संभाव्य है ।" - पर विश्वास रखने वाले गुप्त जी को सीता वनवासिनियों को तकली कातकर खाली समय का उपयोग करने का उपदेश देती है । " बिहारी मतिराम और रसलीन के दोहों की सृष्टि एक ही मानसिक यंत्रालय में हुई जान पड़ती है, यद्यपि उनकी कोटि और विशेषताओं में अन्तर है । एक ही साँचे में ढले हुए कवित्तों और सवैयों से पाठकों का जी ऊब जाता था । परन्तु आधुनिक काल में एककवि की रचनाओं में ही विविध रूपता मिलती है । " प्रसाद " के 'झरना' ग्रन्थ में अनेककविताओं का संग्रह है। जिसमें प्रत्येक एक दूसरे से भिन्न है । पन्त की " परिवर्तन " नामक एक ही कविता में दो छन्द एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि दोनों एकही कवि की रचना है, यह कहना कठिन हो जाता है।[7] केवल छंदगत विविधता ही नहीं अपितु भाषा को लेकर भी इस कविता में पर्याप्त वैविध्य दीखता है । विशुद्ध भाषा में इतिवृत्तात्मक कविता[8] भी उपलब्ध है,

- -

7· डा0 श्रीकृष्ण लाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास चतुर्थ संस्करण पृ0-37

8· ऊपर नीला वितान तना था, नीचे या मैदान हरा ।
शून्य मार्ग से विमल वायु का आता था उल्लास भरा ।
कभी दौड़ने लग जाते हम, रह जाते फिर मुग्ध खड़े ।
उड़ने की इच्छा होती थी, उड़ते देख विहंग बड़े ।
- मैथिलीशरण गुप्त, भारत भारती, पृ0- 38

एवं अलंकृत लाक्षणिक शक्ति सम्पन्न भाषा[9] में उनमूर्त विषय योजना भी । अंग्रेजी कविता भाषा के शब्द प्रयोग का तथा फ्रेन्च भाषा के शब्द प्रयोग का हिन्दी कविता के शब्द प्रयोग पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा । चित्रमय, गतिमय एवं वर्णमय शब्दों का प्रयोग होने लगा । कविता के शब्दों के द्वारा ही वर्णित विषय का व्यंजनापूर्ण चित्र उपस्थित कर दिया जाता था । द्विवेदी युग का महत्व खड़ी बोली के परिष्कार के लिए है और साथ ही श्रीधर पाठक जैसी प्रतिभा को जन्म देने में भी जिससे काव्य की संभावनाओं में भी छायावाद जैसे ऐश्वर्य पूर्ण काव्यान्दोलन को प्रतिष्ठित किया । मनुष्य की निर्धनता पीड़ा और उसकी छोटी - छोटी समस्याओं से टकराकर काव्य सृजन करने की प्रेरणा का प्रारम्भ द्विवेदी युग से हुआ ।

द्विवेदी युग अपनी इति वृत्तात्मक प्रवृत्ति के कारण अधिक दिन तक चल सका क्योंकि इसके भीतर निषेध की ऐसी चेतना थी, जो साहित्य है । अंग्रेजी के रोमेन्टिक कवियों के काव्य प्रवाह से प्रेरणा लेकर इन कवियों ने अपने

- -

9. अंगड़ाते तम में,

अलसित पलकों से स्वर्ण - स्वप्नित

सजीन ! देखती हो तुम विस्मित

नव अलभ्य, अज्ञान !

-सुमित्रानन्दन पन्त, वीणा " अंगड़ाते तम " से पृ0 - 58

सौन्दर्य-रुचि- सम्पन्न प्रतिभा को नये शिल्प विधान और भाषा की नयी क्रान्ति के साथ प्रस्तुत किया । बंगला साहित्य की मृदुलता, अद्वैतवाद, सर्वात्मवाद, सूफियों के रहस्यवाद और पश्चिम के "मिस्टीसिज्म" के मिले जुले संस्कार से प्रभावित होने वाले कवियों का एक वर्ग नयी काव्य चेतना के साथ साहित्य जगत के सामने आया । इन कवियों में अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता थी । व्यंजना और लक्षणा वृत्ति की प्रधानता थी । इनके अनुभव में निजी जीवन का आवेग था । अभिव्यक्ति में तरलता और कल्पना की चारुवक्रता का समाहार था । द्विवेदी-युग की गद्यात्मक शुष्कता के स्थान पर संवेदना की नवीन तरलता के कारण इन कवियों का काव्य स्वच्छन्दता, गीतात्मकता और सौन्दर्य सम्पन्नता के नये आयाम प्रशस्त करने लगा । प्रसाद ने यदि शैव रहस्यवाद के आधार को चुनकर " संसार की रूप माधुरी " को अकंठ पान " करने का सौन्दर्यवादी काव्य-दृष्टिकोण स्पष्ट किया तो पन्त प्रकृति के ऐश्वर्य में अपनी काव्य भाषा का अन्वेषण करने में लगे । निराला ने उद्दाम आवेग को मुक्त छंद दिया तो महादेवी अव्यक्त प्रियतम का मणिकांचन संयोग करने लगी । कुल मिलाकर छायावादी काव्यांदोलन ने प्रकृति, प्रेम और रहस्य का आवेगमय तरल काव्य रूप प्रस्तुत किया, जिसमें भाषा की भावनुकूल संयोजना, चित्र सौन्दर्य, सूक्ष्म चित्रण और उपचार वक्रता का आश्रय

लिया गया । अवश्य ही निराला जैसे कवि छायावाद के ढाँचे से बाहर जाकर नये यथार्थ वादी साहित्य की संभावनाओं को भी उजागर करते रहे पर अधिकांश छायावादी कवि एक भावात्मक आदर्श की स्थापना में लगे रहे । यदि द्विवेदी युग समाज के आदर्श का प्रतिष्ठापन काव्य काल है तो छायावाद युग भावादर्श की स्थापना के प्रयत्न का विस्तार । पन्त जी ने मनुष्य के आन्तरिक मनस-सौन्दर्य में इसका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया तो कवि प्रसाद उसे "श्रद्धा " और "इड़ा " के समन्वय, शिव शक्ति के समरस संयोग और ज्ञान, कर्म, इच्छा के दार्शनिक समन्वय परक आदर्श की ओर ले गये । महादेवी अपनी पीड़ा में व्यस्त रहीं । केवल निराला अद्वैत के प्रति निष्ठावान होते हुए भीसमाज के संघर्षों से जुड़े रहे । छायावाद का समापन और उत्कर्ष " कामायनी " जैसी कृति के समाहार और व्यवस्था में है । सन् 1940 में पंत जी की "ग्राम्या" प्रकाशित हुई । इस ग्रन्थ में कवि ने सबसे पहले अपने कल्पना लोक का परित्याग किया ।

छायावाद का पतन हो चला था । कल्पना, पलायन सौन्दर्यवादिता, अस्पष्टता, स्वप्नप्रियता और सौन्दर्यवादिता के दिवास्वप्न ध्वस्त हो रहे थे। युग द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका की ओर उन्मुख था । उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द, सज्जाद जहीर अली, सरदार जाफरी, निराला और गाँधी - गरीबी

शोषण और अत्याचार की चक्की में पिसे किसान - मजदूर की वकालत अपने अपने साहित्यिक और राजनीतिक व्यक्तित्व के माध्यम से कर रहे थे । ऐसी स्थिति में अतिशय सौन्दर्यप्रियता , प्रकृति प्रेम, मानवतावाद, रहस्यानुभूति तथा आत्माभिव्यक्ति की कोरी कल्पना अधिक दिनों तक नही चल सकी । इन कवियों का जीवन - बोध अत्यन्त न्यून था । स्वयं प्रसाद अपनी महत्वपूर्ण कृति कामायनी में जो छायावाद की सर्वश्रेष्ठ कृति कहलाती है, उस तात्विक जीवन बोध को न दे सके जिसकी माँग युग को थी । यद्यपि उन्होंने बडी कोशिश की कि युग जीवन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अपर्याप्तता का बहुत कुछ रूप "काम के शाप " के रूप में सामने आ सके और समकालीन जीवन की विडम्बना भी इस प्रकार उजागर हो, पर वह एक कल्पना विधान और आदर्श के स्पर्श जैसी अर्थवत्ता देकर रह गया । " राम की शक्ति पूजा " निराला जी की एक अनुपम कृति है जो छायावाद की संघर्ष चेतना को भी सामने लाती है ।

आधुनिक काव्य सृजन में छायावाद के पश्चात एक नूतन सामाजिक चेतना युक्त जिस काव्य युग का सन् 1936 में समारम्भ हुआ, उसे " प्रगतिशील काव्य" की संज्ञा दी जाती है । " वह अन्य युगीन साहित्य की तुलना में द्रुमलता भी न बना पाया । वह एक छुई मुई का पौधा था जो सन् 1936 में लगा था और

प्रयोगवाद की उँगली दिखाते ही 1942 में मुरझा गया ।"[10] प्रयोगवाद ने व्यक्ति के मन में यथार्थ के गहन स्तरों को खोलने का प्रयत्न किया । प्रगतिवाद की उद्‌बोधनात्मक शैली, इतिवृत्तात्मक शैली, सरल प्रवाह मयी शैली, स्फीतियुक्त, शैली, प्रगतिवादी काव्य के और उसके उद्‌देश्य के अनुकूल थी । प्रयोगवाद ने मध्यम वर्गीय व्यक्ति मन की उलझी संवेदनाओं को अपना कथ्य बनाया । अत: उन्हें रूपायित कर सकने योग्य नये चमत्कारों की नयी शिल्प शक्ति की खोज करनी पड़ी । कवि ने ऐसे नये बिम्बों और उपमानों की खोज की जो व्यक्ति मन के अनेक सन्दर्भों को, नयी जिज्ञासाओं को नये दर्दों को व्यक्त कर पाने में समर्थ दिखायी पड़े । प्रयोग धर्मी चेतना की कविता का सूत्रपात सन् 1943 में अज्ञेय के सम्पादन में प्रकाशित " तारसप्तक " की भूमिका में निरूपित काव्यगत प्रयोगों की विस्तृत चर्चा से हुआ । कविता के भीतर नई क्रान्ति लाने के लिए ही कवि अज्ञेय ने तारसप्तक की योजना बनायी । डा0 गोविन्द रजनीश के शब्दों में - " तार सप्तक की रचनाओं को प्रयोगवाद के नाम से अभिहीत किया गया क्योंकि इस सम्प्रदाय के कवियों में नवीन प्रयोगों के प्रति लालसा थी।"[11] अज्ञेय जी के

---

10. डा0 देवी प्रसाद गुप्त - साहित्य सिद्धान्त और समालोचना ।
    पृ0 - 160

11. डा0 गोविन्द रजनीश - समसामयिक हिन्दी कविता : विविध परिदृश्य
    पृ0 - 22

अनुसार शब्द और अर्थ के द्वारा व्यक्त किया जाने वाला अनुभव संसार अपनी सम्पूर्ण भावात्मक तीव्रता के साथ घिसीपिटी अभिव्यक्ति पद्वति के कारण व्यक्त नहीं हो पाता । उन्हें कवि कर्म की सार्थकता के साथ - साथ अनुभूति के प्रति गहरी ईमानदारी की तलाश थी ।

प्रयोगवादी कविता को कुछ समीक्षक रूपवाद (Formalism) का रूपान्तरण मानते है तो कुछ इसे पाश्चात्य " कल्पनावाद" का अनुकरण मानते है । वस्तुतः इसे मात्र रूपान्तर या अनुकरण मान लेना अनुचित होगा । इस सम्बन्ध में डा० शम्भू नाथ सिंह का मत उल्लेखनीय हैकि - " प्रयोगवाद का आरम्भ फैशन या पाश्चात्य अनुकरण से नहीं हुआ । ---- वस्तुतः बदलते हुए यु ग की परिस्थितियों की माँग थी कि कविता के स्वरूप में परिवर्तन होना चाहिए ।"[12] प्रयोगवाद काव्य के आरम्भ के सम्बन्ध में यह चिन्तनीय है कि छायावाद की वायवीय कल्पना और शब्द विन्यास की मसृणता के कारण जो अनुभूतियाँ अर्धव्यक्त थी उन्हें सामाजिक भूमिका पर प्रगतिवाद ने पूर्ण व्यक्त बनाने का श्रम उठाया । परन्तु इस श्रम के परिणाम स्वरूप हिन्दी कविता को मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का बोझ भी उठाना पड़ा । नतीजा यह निकला कि

---

12. डा० शम्भू नाथ सिंह - प्रयोगवाद और नई कविता - पृ० - 22

कविता विज्ञापनी हो गयी ।------ अतः कविता को कलात्मक सौष्ठव और स्वस्थ सामाजिकता प्रदान करने के लिए प्रयोग आविर्भूत हुआ । नये - नये प्रयोग हुए और इन प्रयोगों को पाश्चात्य साहित्य ने प्रभावित किया।"[13] डा० श्रीराम नागर के शब्द में-" प्रयोग बदलती परिस्थितियों को पहचानने में, उनके सन्दर्भों में व्यक्ति के रागात्मक सम्बन्धों को सबल अभिव्यक्ति देने में साधन रूप है लेकिन निरी प्रयोग-शीलता किसी रचना को काव्य नहीं बना सकती । मुक्ति पाने की छटपटाहट प्रयोग को जन्म देने वाली प्रसव स्थिति है, उसके लिए प्रयत्न स्वयं प्रयोग का ही दूसरा नाम है ।"[14] प्रयोगवादी काव्य संरचना पर इंगलैण्ड, अमेरिका एवं फ्रांस के स्वच्छन्दता वादी कवियों (इलियट एजरापाउण्ड, फ्लेवर, वाल्टेयर, आर्थर रिम्बो, पाल वर्लेन आदि) का भी प्राभूत प्रभाव पड़ा ।

प्रमुख प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय, नकेन कवि एवं चारों सप्तकों के कवि सम्मिलित हैं अज्ञेय ने इन कवियों के विषय में लिखा है - " वे किसी एक

13· डा० हरिचरण शर्मा, आधुनिक कविता : प्रकृति और परिवेश पृ० - 136

14· डा० श्रीराम नागर - हिन्दी की प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणा स्त्रोत भूमिका पृ० - ट से ड ।

स्कूल नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है, अभी राही है - राही नहीं, राहों के अन्वेषी । उनमें मतैक्य नहीं है । सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग अलग है - जीवन के विषय में, समाज और धर्म और राजनीति के विषय में, काव्य वस्तु और शैली के, छन्द और तुक के, कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद हैयहाँ तक कि हमारे जगत के ऐसे सर्वमान्य और स्वयं सिद्ध मौलिक सत्यों को भी वे समान रूप से स्वीकार नहीं करते जैसे लोकतन्त्र की आवश्यकता, उद्योगों का समाजीकरण, यांत्रिक युद्ध की उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई अथवा कानन बाला और सहगल के गानों की उत्कृष्टता इत्यादि। वे सब परस्पर एक दूसरे पर, एकदूसरे की रुचियों ,कृतियों और आशाओं पर एक दूसरे की जीवन परिपाटी पर यहाँ तक कि एक दूसरे के मित्रों और कुत्तों पर भी हंसते हैं ।"[15] यहाँ पर एक बात स्पष्टहै कि अज्ञेय और तारसप्तक के लगभग सभी कवि इस दिशा में सचेष्ट है कि अनुभूति सत्य अपने समस्त तीव्रतम संवेग के साथ कथ्य के रूप में पाठक के सम्मुख संप्रेषित हो । राम विलास शर्मा "तार सप्तक " में लिखते हैं -

"अब कहाँ"यत्न से कवि-कुल गुरु का ठाट- बाट ?

- -

15. अज्ञेय : तारसप्तक भूमिका पृ0-8 ।2

अर्पित है कवि चरणों में किसका राजपाट

उन स्वर्ण खचित प्रसादों में किसका विलास ।

कवि के अन्त:पुर में किरन श्यामा का निवास

पैरों में कठिन बिवाई कटती नहीं डगर

आँखों में आँसू, दुख से खुलते नहीं अधर

खो गया कहीं सूने नभ में वह अरूण राग

धूसर संध्या में कवि उदास है वीतराग ।" [16]

वास्तव में प्रयोगवाद का उद्देश्य ही था कि यह कविता के नाम पर पाये जाने वाले शब्द विधान का पुनर्मूल्यांकन कर एक अर्थ पूर्ण अभिव्यक्ति पद्धति प्रदान करे । दूसरे शब्दों में निरंकुश भावोच्छवास को चिन्तन के रस से संचालित करने का आग्रह लेकर प्रयोगवादी कवि काव्य क्षितिज में उदित हुए थे । इनके मन में शब्दों की परंपरित छन्दमयता से सन्तोष नहीं था । उनके सामने अपनी परम्परा की थाती अवश्य थी पर उन्होंने यह अनुभव किया कि युग के नये संस्कारों में प्रेम, विनय, उत्साह, करूणा, मानवता आदि के मानसिक स्वरूप में किंचित परिवर्तन हुआ है । युग की नयी मन: स्थिति को उसी रूप में प्रकट करने की उनकी आतुरता

---

16. राम विलास शर्मा : तारसप्तक पृ0 - 233

ने उन्हें अनुभूति के प्रति ईमानदार बनाया । डा० सुधेश ने प्रयोगवाद की पाँच प्रमुख प्रवृत्तियाँ गिनाई है - 1. व्यक्तिवाद का आग्रह , 2. बौद्धिकता का आग्रह , 3. फ्रायड के मनोविज्ञान का प्रभाव, 4. बौद्धिकता का आग्रह 5. साधारणीकरण का त्याग । "[17] एक अन्य समीक्षक के मतानुसार प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार है -

1. युग के प्रति आस्था
2. आंतरिक यथार्थ की खोज
3. अंह और प्रतिबद्धता का संघर्ष
4. सौन्दय बोध और यौन वर्जनाओं के प्रति असंतोष ।
5. सौन्दर्यानुभूति का निर्लेप चित्रण
6. प्रेमाभिव्यक्ति
7. प्रेम और रोमान्स का चित्रण ।[18]

---

17. डा० सुधेश : आधुनिक हिन्दी एवं उर्दू काव्य की प्रवृत्तियाँ , पृ० - 396

18. डा० कमला प्रसाद पाण्डेय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि , पृ० - 238- 240

सन् 1955 के पश्चात की कविता वादों के घेरे से निकलकर युग जीवन की अनेक प्रवृत्तियों को आत्मसात कर सामने आयी । समकालीन भावबोध एवं नव्य चेतना परक कविता को " नयी कविता " नाम दिया गया । परिवेश एवं परिस्थितियों की गतिशीलता ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नूतनता का आग्रह प्रस्तुत किया । नयी कविता की पूर्व पीठिका का समाकलन करते हुए आचार्य विनय मोहन शर्मा लिखते हैं कि -"प्रयोग वादी काव्य की अग्रिम धारा या उसके अगले चरण को नयी कविता कहा जाने लगा, जिसे हम आज की कविता कहेंगे । "नयी कविता " आज की कविता की विशिष्ट वस्तु एवं शिल्पगत रचना का नाम है । यों कविता की नयी पुरानी संज्ञा बेनामी है उत्तम काव्य सदा नया रहता है।"[19]

नयी कविता के विकास क्रम की ओर इंगित करते हुए डा० जगदीश गुप्त लिखते हैं कि - " नयी कविता प्रगतिवादी यथार्थ के आघात से उत्पन्न छायावाद के स्वप्न भंग के बाद की कविता है, जिसमें व्यक्त भावनाएं कुहासे के बीच पनपने वाले तन्द्रालस से युक्त न होकर दिन की रोशनी के बीच, विषमताओं से घिरे

- -

19· डा० विजय मोहन शर्मा : साहित्य : नया और पुराना पृ० - 29

जागृत मनुष्य की भावनाएं है ।"[20] नयी कविता को चेतना अधिक से अधिक नवीन और गत्यात्मक भाव सरणियों की चेतना है । "प्रगतिवाद" तथा "प्रयोगवाद" ने जिस चेतना को संवेदनीय बनाकर साहित्य के अनुबन्ध में लाने का उपक्रम किया था, नई कविता ने उसे समग्रता प्रदान की है । वस्तुतः प्रयोगवाद" और "नयी कविता" एक ही अध्याय के दो खण्ड हैं और उन्हें पूर्णतः पृथक - पृथक करके नहीं देखा जा सकता ।"[21] डा० रघुवंश के अनुसार - " यद्यपि नयी कविता अपने स्वर, अपनी अभिव्यक्ति तथा उपलब्धि की दृष्टि से प्रयोग शील कविता से आगे विकसित हो चुकी है, उससे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है, प्रयोगशील, कविता ने परम्परा से विद्रोह के रूप में प्रयोग तथा मार्ग का अन्वेषण प्रारम्भ किया था, परन्तु नयी कविता के सन्दर्भ में प्रयोग तथा मार्गान्वेषण उसकी प्रवृत्ति के रूप में स्वीकृत हैं ।"[22]

वस्तुतः " सन् 40 के आस - पास का समय वह समय था जो हिन्दी

20· डा० जगदीश गुप्त : - नयी कविता: स्वरूप और समस्याएं पृ०- 193

21· डा० कमला प्रसाद पाण्डेय, छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० - 266

22· डा० रघुवंश, - साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य पृ० - 150-151

काव्य गगन में नयी - नयी अनुभूतियों के रंग उडेल रहा था एवं पुरानी अनुभूतियों के सिरहाने से चुपके - चुपके नयी अनुभूतियाँ रख रहा था । कहने की आवश्यकता नहीं कि आधुनिक संवेदना कलयित अनुभूतियों का जन्म ऐतिहासिक अनिवार्यता का ही परिणाम था ।"[23] वास्तव में अनुभूति के प्रति अधिक सचेष्ट होने का ऐतिहासिक कारण भी है । बारहवीं शती से लेकर रीतिकाल तक संस्कृति हिन्दी कवियों ने प्राय: कला, शब्द विधान और उक्ति वैचित्र्य पर ही प्रमुख रूप से ध्यान दिया । संस्कृत के कुछ कवियों में तो एक - एक छन्द के कई - कई अर्थ मिलते हैं । उदाहरण के लिए संस्कृत कवि श्री हर्ष की दमयन्ती स्वयंवर प्रसंग की ये पंक्तियाँ रखी जा सकती हैं -

" देव: पतिर्विदुषि नैषधराजगत्या निर्णीयते न किमु न प्रियते भवत्या।
नायं नल: खलु तवाति महानलाभोयदयेनमुज्झसि वर: कतर: परस्ते।।"

अर्थात् दमयन्ती के स्वयंवर में जहाँ नल का रूप धारण किये इन्द्र, यम, अग्नि और वरुण इस आशा से बैठे है कि दमयन्ती धोखे से ही उन्हें वर ले वहाँ की जटिल परिस्थिति को संभालने के लिए कवि अनेकार्थवाची कुछ ही शब्दों में

23· डा० हरिचरण शर्मा - नयी कविता नये धरातल पृ० - 2

ऐसी चातुरी से भगवती सरस्वती के द्वारा परिचय कराता है कि उन्हें असत्य भाषण भी नहीं करना पड़ता है और सबका निरूपण भी हो जाता है। वास्तव में अश्वघोष और तत्कालीन कवियों में कालिदास ही ऐसे कवि हैं, जिनमें कवि कर्म का शोधन लालित्य प्रदर्शन के रूप में प्राप्त होता है। उनमें चमत्कार या अनेकार्थवादिता का मोह न होकर रससिद्ध लालित्य का प्रदर्शन है। उन तक आते - आते मार्मिकता और रसमयता चरम पर पहुँच गयी थी और उनके बाद के कवियों में प्राय: रस और मर्म का आग्रह कम कला का आग्रह अधिक हो जाता है।

हिन्दी के रीतिकाल में काव्य- कामिनी शृंगार प्रसाधन की ओर झुकी। उसका हाव और चमत्कार इतना प्रखर था कि उसके अन्तराल में छिपा राग और मर्म अपना स्वर क्षीण करने के लिए बाध्य हुआ। आलोचकों ने इसे कला काल का नाम दिया है। रीतिकाल की प्रवृत्ति आधुनिक काल के भारतेन्दु कालीन लेखकों में यत्किंचित् प्राप्त होती है। इसके बाद द्विवेदी युग आता है। काव्य -मर्म की अभिव्यक्ति, सूक्ष्मता भाव तरलता, भावात्मक छटपटाहट, गहनता और सूक्ष्मता के तत्वों को अपना नारा बनाकर इसीलिए छायावादी कवियों ने इसके खिलाफ आन्दोलन किया। निराला ने तो अपने

इस रागात्मक सूक्ष्मता और मर्मपूर्णता को लेकर यहाँ तक कहा कि " भवभूति, वाल्मीकि से इसी माने में श्रेष्ठ हैं कि उन्होंने इक्ष्वाकु वंश की कुंडली न प्रस्तुत कर राम के मर्म का उद्‌घाटन" किया है ।" प्रगतिवाद के अन्तराल से प्रयोगवाद में पुन: सूक्ष्म चेतना ने आँखे खोली और अज्ञेय के नेतृत्व में " तारसप्तक " और उसके बाहर के कवि शब्दों ,अलंकारों और प्रतीकों को लेकर यह जाँच पड़ताल करने लगे कि ये शब्द,अलंकार, प्रयोग और प्रतीक क्या सचमुच उनके सत्य और काव्य सत्य का सही प्रतिनिधित्व करते हैं, अथवा नहीं । कवियों को महसूस हुआ कि उपमान और प्रतीक क्रमश: अपना निखार और देवत्व खो चुके हैं । अर्थ की दृष्टि से शब्द शोधन व्यापार जितना अज्ञेय ने अपने नेतृत्व में आने वाले कवियों और स्वयं द्वारा सम्पन्न किया उतना हिन्दी साहित्य के इतिहास में किसी ने नहीं किया ।

नयी कविता क्षणों की अनुभूतियों को महत्व देती है । इसलिए नहीं कि वह जीवन की सम्पूर्णता में विश्वास नहीं करती वरन् वह एक -एक क्षण के बोध को, अनुभूति को सत्य मानकर जीवन का पूर्ण उपभोग करना चाहती है । "जीवन क्षण भंगुर है । क्षणिक स्वप्न है । यह दृष्टि जीवन को क्षण मानकर उससे पलायन को प्रेरित करती है । वह क्षण की महत्ता को अस्वीकार करती

रोमांटिक दृष्टि, अध्यात्मवादी दृष्टि, कुछ इसी प्रकार की प्रवृत्ति से प्रेरित है ।

"संसार क्या है ?
अवधि के वक्ष स्थल में व्याप्त
बुलबुले का वह क्षणिक उभार

- भगवती चरण वर्मा

पानी केरा बुदबुदा ज्यों मानुष की जात ।
भोर भये छिप जायेगा ज्योंतारा परभात।।

- कबीर

इसलिए ये कवि क्षणिकता को छोड़कर शाश्वत की ओर सीमा को छोड़कर असीम की खोज में निकल पड़ते हैं । इन क्षणों की अनुभूति के परे इतिहास क्या है ? यह प्रश्न कनुप्रिया की राधा के सामने नई कविता की समस्त मनीषा के सामने खड़ा है -

"हारी हुई सेनाएं जीती हुई सेनाएं
नभ को कंपाते हुए युद्ध - घोष क्रंदन स्वर
भागे हुई सैनिकों से सुनी हुई ।

अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएं युद्ध की

क्या ये सब सार्थक है ?

अर्जुन की तरह कभी -

मुझे भी समझा दो

सार्थकता क्या है बन्धु ?

मान लो कि मेरी तन्मयता के गहरे क्षण

तो सार्थक फिर क्या है कनु. ?

- भारती (कनुप्रिया)

आधुनिक साहित्य ने अपने को सचेत और अचेत दोनों रूपों में परम्परा से काटकर आधुनिक चिन्तन और बोध के समस्त स्त्रोतों से जोड़ना चाहा । आज के साहित्यकार ने साहित्य - विधा के हर क्षेत्र में अनुभव की प्रामाणिकता पर विशेष बल दिया है । आज तक की हर धारा की कविताओं में अनुभवों और संवेदनाओं की भिन्नता होने के बावजूद इस बात की समानता थी कि वे सभी कोई न कोई काल्पनिक या पारम्परिक सामाजिक मूल्य पा लेती थी ।

xxxxxx

छायावादोत्तर प्रबन्ध काव्यों की भाषिक संरचना

कविता की आन्तरिक प्रकृति और संरचना तथा उसकी संवेदना एवं स्वरूप के सम्बन्ध में छायावादोत्तर कवि के अपने कुछ विशिष्ट और मौलिक आग्रह रहे हैं। उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण आग्रह कविता के आत्म चरित्रात्मक रूप को लेकर था। कविता यदि आत्माभिव्यक्ति है तो कवि के आत्मतत्व से असम्पृक्त वस्तु के स्वरूप और उसकी प्रकृति के चित्रण को वह अपने आप में चाहे जितनी महत्वपूर्ण और जीवनोपयोगी क्यों न हो कविता में स्थान नहीं दिया जा सकता। जीवन की आन्तरिक ऊष्मा से रहित ऐसी कविता तथ्यों का संकलन, मात्र बनकर रह जायेगी। यही कारण है कि छायावादोत्तर कवि ने अनुभूति प्रवण छोटी रचना को महत्वपूर्ण माना साथ ही भाव-संवेदना के सातत्य एवं समान स्तर का निर्वाह कर पाने की दु:साध्यता के कारण लम्बी और प्रबन्धात्मक रचनाओं के प्रति धीरे - धीरे उसका आकर्षण कम होता गया।

शास्त्रीय युग में "महाकाव्य", " कथाकाव्य", प्रबन्ध काव्य लिखना कवि और कविता दोनों के गौरव की वस्तु थी। वस्तुत: मानव स्वभाव गीतोन्मुखी एवं रागात्मक रहा है।हर मानवीय क्रिया- कलाप में संगीत की लय और ताल विद्यमान थी और आज भी विद्यमान है। फलत: स्वभाव से ही मानव अपनी वाणी को संगीत के स्वरों में बाँधकर प्रस्तुत करने का प्रयास करता

रहा है । साहित्य एवं काव्य के उद्भव के पूर्व भी व्यक्ति की गुनगुनाहट गीतों का स्वरूप ग्रहण कर रही थी । लेखन कला के अभाव में आदि मानव के ये गीत लिखित रूप नहीं ग्रहण कर सके किन्तु सभ्यता के क्रमिक विकास ने गीतों को मूर्तरूप दिया जिससे विश्व साहित्य की प्रथम रचना " ऋग्वेद" का सृजन हुआ जो गीतों का संकलन ही है जिसमें मानवीय भावनाओं एवं उनके क्रियाकलापों का सफल संयोजन किया गया। कालान्तर में यही काव्य कला विकसित होती हुई अनेकानेक भाषाओं के माध्यम से हिन्दी को भी आत्म-सात करती हुई कविता तक पहुँची । कविता के रूप में काव्य के पृष्ठों पर अवतरित होने के रूप में काव्य के पृष्ठों पर अवतरित होने के पूर्व गीतों में ही मानव का स्वभाव अलिखित रूप से संचित रहा होगा और अनुभूतियों को मानव ने संगीत के साहचर्य में व्यक्त किया होगा । प्रार्थना के क्षणों में, प्रकृति के प्रति अपना रागात्मक सम्बन्ध व्यक्त करते हुए, उल्लास के अवसरों पर नैसर्गिक अनुभूति का प्रकाशन गीतों के माध्यम से हुआ होगा । इस प्रकार साहित्य की आदि विधा के रूप में गीतों को ही स्वीकार करना होगा ।

महाकाव्य को सम्भवतः इसीलिए श्रेष्ठतर स्वीकृत किया गया है क्योंकि उसके माध्यम से विराट प्रतिमानों ने इतिहास के दीर्घ अन्तराल में

प्रसरित संस्कृति को एक स्थान पर लिपिबद्ध करने का प्रयास किया था । मूलत: महाकाव्य अपने प्राचीनतम स्वरूप में संकलनात्मक बना रहा, क्योंकि कवियों ने बिखरी हुई कथाओं को एक सूत्र में बाँधने की चेष्टा की थी । होमर द्वारा ट्राजन की कथाओं का उपयोग इसी प्रकार हुआ है । आगे चलकर महाकाव्य साहित्यिक तो होते गये पर कथा के आग्रह से मुक्त नहीं हो सके । प्राचीन काव्य में गीतिकाव्य भी मिलते हैं, पर वे तो किसी प्रकार जीवित रहे । शास्त्रों की कृपा उस पर कम थी यत्र तत्र प्रासंगिक चर्चाओं में गीतकाव्य स्थान पा जाय, इतना ही पर्याप्त था । महाकाव्यों के अनिवार्य मूल्यों में नायक-नायिका वर्णन, रस विशेष की सत्ता, युद्ध, प्रणय, विवाह प्राकृतिक स्थलों का वर्णन और राजदरबार की प्रवृत्तियों का सम्यक् वर्णन अनिवार्य था । इनसे यह संकेत मिलता है कि समाज और साहित्य दोनों अभिजात्य रुचियों को प्रश्रय दे रहे थे । समाज के इतर वर्ग को न तो अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता थी और न महाकाव्यों के पात्र बनने की । उस वर्ग की सहज खुशी " लोक-गीतों", "लोक-नृत्यों", और मुक्तकों में व्यक्त होती रही । रीतियुग में मुक्तक रचनाओं में मानव स्वभाव की सहज अभिव्यक्ति नहीं हो सकी । आधुनिक युग ने प्रजातान्त्रिक दृष्टि को अपनाया है जिससे मध्यम वर्ग जागरूक होकर आगे बढ़ा है, इसलिए

महाकाव्य के साथ ही गीत काव्य को भी श्रेष्ठ काव्य की विधा के रूप में स्वीकृति मिली । फलस्वरूप पूर्व उपेक्षित "गीत-काव्य" मानव स्वभाव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होने के कारण न केवल छायावाद युग में उन्नति के शिखर पर पहुँचा, अपितु उसने महाकाव्य के अनेक दाय हस्तगत करते हुए साहित्य जगत में प्रतिष्ठापित होने में सफलता प्राप्त की ।

महाकाव्य मूलत: युगीन मूल्यों एवं जीवन दृष्टियों के परिचायक विकासशील काव्यरूप होते हैं । इसमें रचनाकार प्रेषणीयता की भावना से प्रेरित होकर सामाजिकों के लिए उनके ही क्रिया-कलापों की संश्लिष्ट इकाई प्रस्तुत करता है । इन रचनाओं को प्रयोजन से विरहित भी नहीं कहा जा सकता। अत: इनकी रचना और रचना का विधान हर युग में बनता है । दण्डी और भामह ने उस युग के मूल्यों के अनुरूप महाकाव्यों का जो विधान बनाया था, वह स्थायी इसलिए रहा कि उस अवधि के बीच मूल्यों के परिवर्तनार्थ कोई असाधारण क्रान्ति नहीं हुई । इसके बावजूद भी दण्डी और भामह के बाद के युगों में निर्मित सभी महाकाव्यों में विद्यमान युग जीवन की सम्पृक्ति को समालोचक भले ही उन रचनाओं का दोष निरूपित करते रहे हों किन्तु रचनाओं में परिवर्तन के संकेत बराबर मिलते हैं । "बाल्मीकी रामायण", "रामचरितमानस", "पृथ्वीराजरासो",

"प्रियप्रवास", "साकेत", "कामायनी", और "अंधायुग" को एक साथ देखने पर यह परिवर्तन की अनिवार्य दिशा और भी स्पष्ट होती है। हिन्दी साहित्य की धारा अनेक युगों में जन्म लेती, बदलती, इतिहास बनती और विकसित होती हुई यहाँ तक आई है। एक युग का गौरव दूसरे युग में क्रमश: समाप्त हुआ और नई मर्यादाओं को लेकर दूसरा युग आगे बढ़ा है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, और आधुनिक कालों के नये नये उत्थान इस तथ्य के प्रमाण हैं। साहित्य की महत्वपूर्ण विधा महाकाव्य भी इन बदलते हुए आयामों से बनती बिगड़ती हुई आगे आई है। दण्डी और भामह के प्रतिमान तुलसी के युग में इतिहास बन गये थे क्योंकि वहाँ रचनाकार स्वान्त: सुखाय की प्रक्रिया में महाकाव्य लिखने लगा था। उस युग में तुलसी के युग के मूल्यों में भी अन्तर आ गया था, जिनसे उनका कवि आँख नहीं मूँद सका। छायावाद आत्ममंथन का युग था, उसमें आत्माभिव्यक्ति और जीवन को आस्थामूलक अनुभूति के क्षण आए थे, जिन्हें कामायनीकार संवार पाया था। वस्तुत: भिन्न - भिन्न युगों के मानव मूल्यों की रचना-प्रक्रिया में लिखी जाने वाली रचनाओं के मूल्यांकन के प्रतिमान शास्त्रयुगों से नहीं आ सकते। आचार्य बाजपेयी ने " हिन्दी साहित्य, बीसवीं शताब्दी" की विज्ञप्ति में कहा है कि किसी कृति का मूल्यांकन कृति और उस युग के मूल्यों के

सापेक्ष में होना चाहिए । ऐसी स्थिति में किसी साहित्य विधा के प्रतिमानों का निर्धारण स्थायी नहीं हो सकता । फिर भी प्रत्येक युग रचनाओं के सौन्दर्य को दर्शाने के लिए उनके कतिपय संकेतों को प्रतिमानों की संज्ञा दी जा सकती है ।

हमारे देश के समाज व संस्कृति पर पुराणों का बहुत प्रभाव पड़ा है । चेतना के निम्नतर और गहरे स्तर पर पौराणिक मिथकों का असर रहा है । हर युग के कवि अपने युगानुकूल प्रवृत्ति को एक चमक प्रदान करने के लिए पुराण का सहारा लेते रहे हैं । आदि काल में वीर रस काव्यों की प्रधानता रही । क्योंकि देश की अस्त व्यस्त परिस्थितियों में कवि के लिए इतना अवकाश नहीं रहता कि वह अपने उदात्त चिन्तन-मनन के बल पर किसी शाश्वत दर्शन का जन्म दे सके अथवा किसी महत् चरित्र की सृष्टि करा सके । लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार - " महाकाव्य की रचना प्रायः युद्धकाल अथवा परिवर्तनकाल में अत्यधिक होती है। इसके दो मूल कारण हैं । प्रथम तो युद्ध के अवसर पर प्रत्येक व्यक्ति को, विशेषकर कवि को, सेनाओं के आवागमन ,उनकी जय-पराजय, उनकी संचालन विधि, नीति-विशारदों की कूटनीति आदि बातों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है । दूसरे महाकाव्य का सृजन वस्तुत: तभी सम्भव हो सकता है जबकि कवि में अपने

व्यक्तित्व को मिटाकर अपने आराध्यदेव या महापुरूष में समर्पित कर देने की प्रबल इच्छा हो ।"[1]

आदिकाल के अधिकांश काव्यों की भाषा अपभ्रंश थी तथा धीरे - धीरे हिन्दी का रूप धारण कर रही थी । लेखनी तलवार की अनिवार्य संगिनी थी । हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाओं का जन्म वस्तुत: युद्ध की गोद में हुआ, युद्ध- प्रिय जाति की यश गाथा गाने के लिए हुआ । वह काल एक ओर विदेशी लुटेरों और राज्य -लोलुपों के भयंकर आतंक और दूसरी ओर राजपूतों की आपस की कलह और विद्वेष की अग्नि में उनकी समृद्धि के स्वाहा होने का था। स्त्री का स्थान निम्न था इसीलिए काव्य में उन्हें कोई स्थान नहीं दिया गया। उस काल में वीरता की बातें सुहाती थी । उस काल की प्रमुख रचनाएं महाकवि चन्द द्वारा रचित पृथ्वीराज रासो, जगनिक कृत परमाल तथा भट्ट केदार की जयचन्द प्रकाश, नरपति नाल्ह की बीसल देव रासो आदि प्रमुख कृतियाँ हैं । भक्ति युग में राधाकृष्ण, राम सीता, शिव पार्वती आदि का इस्तेमाल भक्तों ने अपनी भावनाओं के लिए किया था । इस काल में अनेक उच्च कोटि के ग्रन्थों,

---

1· डा0 प्रतिपाल सिंह - बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य - पृ0- 37

की रचना की गयी । काव्य के क्षेत्र में आध्यात्मिक दृष्टि की प्रधानता पायी जाती है । इस काल में चार धाराएं प्रवाहित हुई उनमें कुछ संत सूफी मतावलम्बी या निर्गुण उपासक थे, कुछ राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा वाले सगुण थे । मुसलमानों के आक्रमणों के पश्चात उन्होंने इस देश में बसने का निर्णय लिया। तेरहवीं शताब्दी से ही एक नयी जाति के बस जाने से नयी राजनीतिक धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई । उनका समाधान हिन्दू और मुसल-मानों में उत्पन्न होने वाले कुछ उदात्त और उदार विचार सम्पन्न अध्यात्म पुरूषों ने किया । इस काल में हिन्दी कविता पूरी तरह सम्पन्न हो चुकी थी। जायसी, सूर, कबीर, तुलसी, रैदास आदि महाकवि भक्ति युग के ही थे । भक्त कवि स्वयं को बुरा, पतित, पंडितों का पिछलगा कहते थे वह केवल विनय के वशीभूत होकर नहीं अपितु यह उनका अत्यन्त संवेदनशील और ईमानदार आत्म-निरीक्षण था । इसी आत्म संघर्ष के कारण कबीर - सूर, जायसी, तुलसी के कृतित्व में बड़प्पन की भावना थी । उनकी रचना स्वान्तःसुखाय, आत्मतोष और आत्म प्रबोधन के लिए है । इस काल का महान ग्रन्थ अवधी भाषा में रचित " राम चरित मानस " है । जिसमें उन्होंने समाज के सन्मुख एक आदर्श की स्थापना की । वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति पूरा सम्मान पर उसके लिए कट्टरता नहीं, सगुण

में आस्था किन्तु निर्गुण- सगुण के अभेद पर बल - सांस्कृतिक संकट के ऐसे सघन समय भी तुलसी जैसी भरपूर व्यवस्था अन्यत्र नहीं मिल सकती । जायसी का पद्मावत भी प्रबन्ध रचना है । इस पर फारसी शैली का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । यह एक लोक परम्परा शैली पर आधारित है । रासो में यदि लोक शैली प्रबल है और मानस में शिष्ट तो पद्मावत लोक से शिष्ट में संक्रमण का साक्ष्य है । लोक परम्परा से जुड़ने के कारण " पद्मावत" का पाठ- क्षेत्र सीमित हो गया है । बोली और शैली की दृष्टि से यह जितना ठेठ है इसकी पहुँच उतनी ही कम है । दूसरी ओर बोली और शैली दोनों में संस्कृत परम्परा से जुड़कर तुलसी का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है । केशव दास की " रामचन्द्रिका " भी भक्ति काल का एक उत्कृष्ट उदाहरण है । केशवदास राजकवि थे । उन्हें " उड़िया " कहा गया है । इसमें छंदों तथा अलंकारों की चमत्कारिता दिखाने के लोभ में कवि ने भावों की सरसता की ओर ध्यान नहीं दिया फलस्वरूप काव्य की स्वाभाविकता, समाप्त हो गयी । काव्य के बाह्य अंगों की प्रधानता के कारण केशव की कविता कहीं - कहीं दुरूह हो गयी है । इस दुरूहता के कारण केशव " कठिन काव्य के प्रेत " कहलाते हैं । वस्तुत: केशव रीतियुग के प्रथम कवि थे ।

रीतिकाल में भक्ति के स्थान पर लौकिक प्रेम का महत्व प्राप्त हुआ। इस काल के कवियों ने भक्ति से प्रेम को पृथक कर दिया । प्रेम के क्षेत्र में दिव्यता

के स्थान पर ऐहिकता ही प्रमुख थी । इस काल में कवि अधिकतर राजाओं के आश्रित थे । ये राजा अत्यन्त विलासी थे और कवियों को आश्रय देना उनके वैभव प्रदर्शन का एक अंग बना । कवियों ने भी इनकी रुचि की तुष्टि के लिए शृंगारी रचनाएं लिखनी प्रारम्भ की । इस काल के कवि रस को ही काव्य की आत्मा मानते थे । इसके साथ उन्होंने अलंकार, शब्द शक्ति, काव्य दोष के विवेचन तथा उसके अनुरूप उदाहरण देकर यह समझाने का प्रयत्न किया कि श्रेष्ठ और निर्दोष काव्य की रचना किस प्रकार की जा सकती है । रीतिकाल में कवियों ने रति और राग की विभिन्न क्रीड़ाओं को अभिव्यंजित करने के लिए राधा- कृष्ण के नाम का उपयोग किया । " आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई नहीं तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है ।" इस कथन से यह साफ जाहिर है कि कवियों ने भगवान के नाम का उपयोग केवल अपनी अश्लील रचनाओं को ढंक देने के लिए किया । अपवाद स्वरूप भूषण ही एक मात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में वीर रस को प्रधानता दी । इस काल में ब्रज भाषा के प्रयोग की बहुलता रही ।

रीति काल तक ब्रजभाषा में मंजते - मंजते इतनी कोमलता, इतनी मिठास, इतना संगीत और इतना रस आ गया था कि जब कवियों ने खड़ी बोली को अपने काव्य का आधार बनाया तो उन्हें काफी विरोध का सामना करना पड़ा किन्तु धीरे - धीरे इसमें काव्य रचना होने लगी । भारतेन्दु युग

में प्रबन्ध काव्य नहीं लिखे गयें क्योंकि इस युग तक रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ सक्रिय थीं । अधिकांश कवि ब्रजभाषा में कवित्त और सवैया आदि प्राचीन छन्दों में राधाकृष्ण. की प्रेम - लीला और वियोग की प्रत्येक दशा का वर्णन करना काव्य को प्रयोजन सिद्धि मानते थे । जो कवि जागरूक थे, वे भी अंग्रेजी शासन पर व्यंग्य करके ही रह जाते थे । इससे आगे बढ़कर उन्होंने न तो किसी महत् चरित्र की सृष्टि की और न किसी महान मूल्यों की स्थापना हेतु प्रबन्ध काव्यों की रचना की । हिन्दी के आधुनिक युग में प्रबन्ध काव्यों की परम्परा का सूत्रपात द्विवेदी युग से ही माना जायेगा। "प्रियप्रवास" निस्सदेह आधुनिक हिन्दी की प्रथम प्रबन्ध कविता है ।

प्रबन्ध काव्य की स्थूल कसौटी पर सफल सिद्ध होने वाला "प्रिय-प्रवास" कृष्ण कथा को नवीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने के कारण खड़ी बोली के प्रबन्ध काव्यों में किसी महत्व का अधिकारी है । इस काव्य में प्रथम बार कृष्ण के मानवीय व्यक्तित्व को महाकाव्यात्मक गरिमा प्रदान की गयी है । " प्रियप्रवास " के पश्चात मैथिली शरण गुप्त का प्रबन्ध " साकेत " भी खड़ी बोली का एक उत्तम उदाहरण है । " साकेत"की कथावस्तु में आधुनिक युग के अनुरूप नवीनताओं का समावेश हुआ है । "साकेत " में गुप्त

जी ने संस्कृत निष्ठ खड़ी बोली का प्रयोग किया है परन्तु उसमें "प्रियप्रवास" के समान सामासिक जटिलता और क्लिष्टता नहीं है । " साकेत " हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि महाकाव्यों में प्रमुख स्थान रखता है ।

महाकवि, कलाकार का सम्वेदन शील हृदय और दार्शनिक का चिन्तन प्रधान मस्तिष्क लेकर अवतरित होता है । जयशंकर "प्रसाद" इस युग के एक ऐसे ही महाकवि थे । उनकी रचनाओं में एक ओर कलाकार की भावुकता मिलती है तो दूसरी ओर मनीषियों जैसी वैचारिक गम्भीरता भी । "कामायनी " उनकी प्रबन्ध रचना है । जो बीसवीं सदी की सर्वश्रेष्ठ कृति है । " कामायनी " में वर्तमान युग में मानव की सार्वभौम समस्या-बुद्धिवाद के आत्यन्तिक प्रभाव के कारण भौतिक सुख की प्राप्ति हेतु अशान्त होकर भटकते रहने का युगानुकूल समाधान प्रस्तुत किया है । "कामायनी " छायावाद की उस चुनौती का उत्तर है । जिसमें यह मान लिया गया था कि गीति-प्रकृति वाले छायावाद में प्रबन्ध काव्य की रचना हो ही नहीं सकती ।

हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों में श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र के "कृष्णायन " का भी प्रमुख स्थान है । यह अवधी भाषा का काव्य है । इसमें

कवि ने राम की ही तरह कृष्ण को लोक रंजक तथा लोक कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत किया है । हिन्दी के आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में कवियों ने पुराण तथा इतिहास की घटनाओं को ज्यों का त्यों चित्रित करना अनिवार्य नहीं समझा क्योंकि कलाकार अपने सृजन के क्षेत्र में सर्वथा स्वतन्त्र हुआ करता है । वह पाराणिक और ऐतिहासिक तथ्यों की आत्मा का सुरक्षित रखकर ऐसे परिवर्तन करने में स्वतन्त्र है जिनसे कृत्ति को अधिक युगानुकूल आर गरिमा -मय बनाने में सहायता मिलती हो । आधुनिक कवियों में यही दृष्टिकोण मिलता है । इसी परिवर्तन के कारण रचना कालजयी कहलाती है ।

आधुनिक जीवन अत्यन्त संघर्षमय और गतिशील है । जीवन के महत्तर मूल्यों पर सोचने विचारने का अवकाश आधुनिक मनुष्य के पास नहीं है । आज का जीवन यांत्रिक हो गया है । मनुष्य आज इतना स्वकेन्द्रित हो गया है कि वह अपने इष्ट की प्राप्ति के लिए उचित अनुचित सब प्रकार के साधनों का उपयोग कर रहा है । उसके सामने धर्म, संस्कृति, नैतिकता, करूणा, प्रेम जैसे शब्द बिल्कुल अर्थहीन है । ऐसी स्थिति में प्रबन्ध काव्यों की रचना न होना अथवा कम होना कोई विस्मय की बात नहीं है । यह विचार उन लेखकों का है जो यह मानते हैं कि आज का जीवन गद्यात्मक हो गया है ।

छायावादोत्तर कविता के रचनात्मक उपक्रम में प्रबन्ध काव्य संरचना की दृष्टि से अनेकानेक प्रश्नचिन्ह खड़े किये जाते रहे हैं। प्रथमत: यह कि समकालीन कवि की अनुभूति एवं संवेदना की सर्वाधिक सार्थक अभिव्यक्ति लघुआकार रचनाओं में ही सम्भव है। द्वितीयत: भाव संवेदना का सातत्य एवं समान स्तरीय निर्वाह प्रबन्धात्मकता में दु:साध्य है। प्रबन्ध रचना में कथा निर्वाह के आग्रह के कारण बहुत सी सामग्री का समावेश करना पड़ता है, जो कि भाव संघटना एवं कलात्मक संयोजन में बाधा उत्पन्न करती है। इसी प्रकार के अन्य प्रश्न प्रस्तुत कर नयी कविता में प्रबन्ध काव्य संरचना की संभावनाओं का अस्वीकार किया गया है। डा० राम दरश मिश्र के मतानुसार - " आज का जीवन { जिसमें सारी पुरानी नैतिक धारणाएं हिल गयी हैं, सारे जीवन मूल्य खो गये हैं और सर्वत्र अराजकता, टूटन, विघटन सा लक्षित होता है। " इन असंगतियों को और भी गहन और व्यापक होने की अनुकूलता प्रदान करता है, कहने का अर्थ यह है कि व्यक्तित्व आज विघटित हो गयी है।"[2] अत: प्रबन्धात्मकता के रूप- संगठन एवं संयोजन में

- -

2. डा० रामदरश मिश्र - हिन्दी कविता : तीन दशक पृ०- 142

भिन्नता होना स्वाभाविक है । साथ ही कोई भी काव्य धारा आविर्भूत होते ही प्रबन्ध काव्य की रचना करे, यह सम्भव नहीं । " छायावादी कविता जब चल रही थी और अपने स्वप्निल और उर्मिल भावनाओं से काव्य रसिकों का मन मोह रही थी; तब क्या सोचा गया था कि वह "कामायनी " जैसा प्रबन्ध देगी ।" [3] डा० श्रीकृष्ण लाल का अभिमत है कि - "स्वातंत्र्योत्तर काल की दृष्टि से परिवर्तन काल है । प्रबन्ध काव्य प्रायः परिवर्तन काल (ट्रान्जिशनल पीरियड) में अधिक मिलते हैं । इस युग में प्राचीन शैली नवीन शैली को अधिकार सौंपती जाती है ।" [4]

कहा जाता है कि वर्तमान युग प्रबन्ध काव्यों का युग नहीं है । कदाचित इसका कारण यह है कि प्रबन्ध काव्यों के पीछे जो मान्यताएं रही हैं वे पूर्ण हो गयी हैं । यानी प्रबन्ध काव्य का पूर्व मान्य स्वरूप आज के युग में मानव की धारणा बदल गयी है । पूर्वमान्य प्रबन्धों में जो पात्र गृहीत हुए हैं वे कुछ स्वीकृत गुणों और दोषों या उनके मिश्रित रूपों के जीवन्त चित्र

---

3. डा० हरिचरण शर्मा, नयी कविता नये धरातल पृ० - 258

4. डा० श्रीकृष्ण लाल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास ।

प्रतीत होते हैं और उन गुणों या दोषों या उनके मिश्रित रूपों का एक श्रृंखलित विकास दिखाया जाता है । दूसरी बात यह है कि वे पात्र समय के विस्तार में फैलते हैं, जहाँ कुछ हरियालियाँ हैं, कुछ शुष्क उपेक्षणीय ऊसर, कुछ मान्य महत्वपूर्ण घटनाएं हैं, तथा महत्वहीन घड़ियाँ और स्थल हैं । पात्र एक महत्वपूर्ण स्थल से दूसरे महत्वपूर्ण स्थल तक दौड़ते रहते हैं । शेष समय और स्थान तो केवल दूरी भरने के लिए होते हैं । अतः देश और काल के विस्तार में दौड़ते हुए भी पात्र पूर्व स्वीकृत जीवन तीर्थों की ही यात्रा करते हैं । वे अपने भीतर की तन्मयता से हर क्षण और हर स्थल को तीर्थ नहीं बना सकते । यह ज्ञातव्य है कि विगत युगों की जीवन दृष्टियाँ, आदर्शवादी मान्यताएं, रसवादी रुचियाँ और व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रतीतियाँ प्रबन्ध काव्य के उपर्युक्त स्वरूप की रचना में सहायक होती रही हैं । नव काव्य -रचनाकारों ने जो प्रबन्ध काव्य दिये हैं वे पारम्परिक अर्थ में प्रबन्ध नहीं हैं । " वस्तुतः नये कवि ने भी अनुभूति और भाव-चिन्तन को ही सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया । समय और अनुभव ने प्रबन्धात्मक रचनाओं के प्रति नये कवि के पूर्वाग्रहों को समाप्त कर दिया । उसने सृजनात्मक स्तर पर यह स्वीकार किया कि स्थूल वर्णनात्मकता और अनावश्यक विस्तार से बचकर प्रबन्ध रचनाओं में युग बोध और यथार्थ के संश्लिष्ट स्वरूप का मार्मिक

चित्रण किया जा सकता है ।"[5] वस्तुत: प्रबन्ध रचना में उसके रूपगत वैशिष्ट्य के फलस्वरूप युगीन सम्वेदना, मूल्यगत संक्रमण, नवनिर्मित मूल्य बोध, युगीन यथार्थ एवं संघर्षशील मानव आस्था समस्त सन्दर्भों को इतने विस्तृत " आयाम में निरूपित करने की सामर्थ्य मात्र प्रबन्ध काव्य रचना में ही सम्भव है । यही कारण है कि रचनाकार चिन्तन की प्रौढ़ावस्था में प्रबन्ध रचना कर सकता ह । प्रत्येक काव्य परम्परा स्थायित्व एवं विचार दर्शन की परिपक्वता के पश्चात ही प्रबन्ध रचना प्रदान करती है । यही कारण ह कि नयी कविता में सफल प्रबन्ध काव्यों की संख्या अधिक नहीं है । क्योंकि नयी कविता अभी वैचारिकता एवं समय की दृष्टि से पूर्ण अनुभवी एवं सम्पन्न नहीं है । उसका कोश अत्यन्त सीमित है ।

आज व्यक्तित्व और समय दोनों के सम्बन्ध में नयी दृष्टियों का विकास हुआ है। मनोविश्लेषण की धारणाओं ने मानव व्यक्ति को समस्त पूर्वमान्य धारणाओं को बदल दिया ह । वह जितना अवचेतन से प्रभावित होता ह उतना चेतन से नहीं और अवचेतन का लोक चेतन के लोक के समान

---

5. डा0 महावीर सिंह चौहान - (सम्पा0) नयी कविता की प्रबन्ध चेतना दीर्घा से उद्धृत ।

कुछ स्पष्ट रेखाओं से निर्मित नहीं होता । वह एक गहन लोक है, जहाँ प्रकाश व अन्धकार की अनगिनत रेखाएं परस्पर सम्बद्ध है । अत: आज के मनुष्य को "अच्छा," "बुरा" या उसके मिश्रित रूप के खाने में डाल कर देखना उचित नहीं है । " वह गुणों या अवगुणों की खान न होकर उस नदी के समान है जो कभी टेढ़ी, कभी सीधी, कभी स्वच्छ, कभी पंकिल, कभी गहरी कभी उथली दिखती है । जो व्यक्ति अभी उदात्त कार्य कर रहा है वही दूसरे क्षण अविश्वसनीय नीचता पर उतर आता है ।"[6] अत: किसी पात्र को अच्छा या बुरा मानकर एक विशेष दिशा में उसका विकास दिखाना सम्भव नहीं है । आज का मनुष्य तो अनेक प्रकार के अन्तर्विरोधों और असंगतियों से ग्रस्त है । आज का जीवन, जिसमें सारी पुरानी नैतिक धारणाएं हिल

---

6. **Now real people are not just good and bad : They are not even simple mixtures in which they balance of virtuous and vicious elements can be readily struck. They are not if modern psychology is right composed of elements, known as qualities at all. A human being, psychology teaches as more like a river than a bundle of qualities ; running now fast, now slow, now clear, now turbid, he presents a different surface at every moment capable at one moments of supreme heroism, he is guilty at another of incredible meannesses.**

- Guide of Modern Thought by - C.E.M. Joad.

गयी हैं, सारे जीवन मूल्य रीत गये हैं और सर्वत्र अराजकता, टूटन, विघटन सा लक्षित होता है, असंगतियों को और भी गहन और व्यापक होने की अनुकूलता प्रदान करता है । तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व आज विघटित हो गया है । अत: प्रबन्ध काव्यों के मूल में अखंड व्यक्तियों को लेकर जो एक सूत्रता दिखाई पड़ती थी वह विच्छिन्न हो गयी है । समय की धारणाएं भी बदल गयी हैं, क्षण वादी दर्शन ने समय की मान्यता को एक नया आयाम दिया है । समय का कोई भी अंश अपने आपमें बड़ा- छोटा प्रभावहीन नहीं होता । वह हमारी गहरी संवेदनाओं से छोटा-बड़ा बनता है । यदि कोई एक छोटा क्षण हमारी गहरी अनुभूति से संपृक्त हो उठा तो वह क्षण पूरे के पूरे समय को एक अर्थ देने में समर्थ है । यदि समय का विशाल हिस्सा हमारी सम्वेदना की तन्मयता से सम्पृक्त हुए बिना ही बीत गया तो व्यर्थ समय विस्तार है जिसकी गणना इतिहास में हो सकती है काव्य में नहीं ।

मनुष्य और उसके मूल्य सापेक्षिक हैं । मनुष्य की कहानी इतिहास है और उसके मूल्यों की कहानी साहित्य । इसी कारण साहित्य व इतिहास परस्पर सम्बद्ध हैं । दोनों के पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता है क्योंकि परिवर्तन के प्रत्येक चक्र में मनुष्य और उसके मूल्य साथ-साथ बदलते

हैं। मनुष्य के जीवन के प्रतिमानों की रक्षा इतिहास करता है साथ ही उन्हीं प्रतिमानों के आधार पर कई बार मार्गदर्शन भी करता है। समय परिवर्तन से मूल्यों में उतार चढ़ाव आता है, जीवन क्रम बदलता है, जीवन बोध बदलता है, जीवन के प्रतिमान बदल जाते हैं और इतिहास तथा साहित्य पुनर्मूल्यांकन और पुनर्सृजन की चर्चा करने लगते हैं। इस प्रकार प्रत्येक युग एक एक नये सृजन को जन्म देता है और तब पुराने मूल्य एवं दृष्टिकोण नष्ट हो जाते हैं तथा इनका इतिहास स्वयं बदल जाता है। स्पष्ट है कि इतिहास मनुष्य की गति का अनुशासक नहीं, मात्र उसके अतीत बोध और आवश्यकता के अनुसार प्रेरणा का आधार बनता है। विकास मान सत्ता में मनुष्य और उसके मूल्यों का ही महत्व सर्वाधिक है, मनुष्य में संचित प्रतिमानों के पर्याय इतिहास का नहीं। हिन्दी साहित्य की धारा अनेक युगों में जन्म लेती, बदलती हुई नवीन रूप में आ सकी है। एक युग का गौरव दूसरे युग में क्रमशः समाप्त हुआ और नयी मर्यादाओं को लेकर दूसरा युग आगे बढ़ा है।

साहित्य की महत्वपूर्ण विधा "महाकाव्य" का निर्माण भी इन्हीं बदलते हुए आयाम से हुआ है। तुलसी के काल में दण्डी और भामह

के प्रतिमान बदल गये हैं । क्योंकि रचनाकारों की रचनाएं स्वान्त: सुखाय हो गयी थी । युग मूल्यों की कोई भी कवि अवहेलना नहीं कर सका । आधुनिक युग में द्विवेदी काल के आदर्श " कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है " में विषय की उदात्तता की गरिमा ने महाकाव्य लिखने की पृष्ठभूमि तैयार की थी । प्रबन्ध काव्यों की रचना में विचारों का तारतम्य महत्वपूर्ण रहा है । प्राचीन काव्यों में चाहे वे रामायण, महाभारत, कुमार सम्भव, रघुवंश हों या रामचन्द्रिका, पद्मावत, रामचरितमानस हो सबसे यही प्रतीत होता है कि कवि जीवन के महत्वपूर्ण अनुभवों को एक विशिष्ट दृष्टि से संयोजित कर जीवन और जगत के सम्बन्ध में एक वैचारिक दृष्टि प्रदान करता है, एक चिन्तनात्मक भूमिका निर्मित करता है । " इस चिन्तनात्मक भूमिका का निर्वाह कृति के निष्कर्ष के रूप में भी होता है, पात्रों के संवादों में व्यक्त विचारों में भी होता है और कवि द्वारा व्यक्त सूक्तियों में भी होता है फिर भी सर्वत्र अनुभव और विचार की सहयात्रा लक्षित नहीं होती । कथा घटनाओं को लेकर बहती रहती है और स्थान - स्थान पर विचारों से जुड़ती रहती आधुनिक काल के आरम्भ में भाव और विचार की धारा कुछ हद तक बहती हुई लक्षित होती है ।"[1]

- -

(7) (पुरानी कविता में) अनेक प्रकार के सामान्य विषयों पर जैसे -बुढ़ापा, विधि विडम्बना, जगत सचाई सार, गोरक्षा, माता का स्नेह, सपूत, कपूत, कुछ दूर तक चलती हुई विचारों और भावों की मिश्रित धारा के रूप में छोटे - छोटे प्रबन्धों या निबन्धों की चाल न थी । इस प्रकार के विषय कुछ उक्ति वैचित्र्य के साथ एक ही पद्य में कहे जाते थे अर्थात् वे मुक्तक की सूक्तियों के रूप में ही होते थे ।

(आचार्य - रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ0- 656)

प्राचीन तरह के काव्य आधुनिक युग में भी लिखे गये जिनमें कथा-तत्व की प्रधानता रही परन्तु उनमें आधुनिक चिन्तन का पुट बना रहा। वैचारिकता की प्रधानता होने से प्राचीन प्रबन्ध काव्य संरचना को नहीं स्वीकार किया गया। महाकाव्य या कथा काव्यों का निर्माण युगीन मूल्यों की आंशिक समष्टि होती है। युग परिवर्तन की अवस्था में जब मनुष्य दोहरी मानसिकता का शिकार हो जाता है और विसंगति तथा भटकाव की स्थिति से गुजरता है तो उसे अपना जीवन यापन का निश्चित मार्ग नहीं सूझता वह समय चेतना के प्रयोग का रहता है। युग के सैद्धान्तिक सूत्र प्रयोग की ही सफलता पर बनते हैं। जब तक यह प्रयोग चलता रहता है। विकास के स्फुट संकेत भी " गीत काव्य " या अन्य विधाओं से सामने आते हैं। रचनाकार को अन्तिम प्रक्रिया तक पहुँचने में अनेक बार आशा निराशा के अन्तर्द्वन्दों से गुजरना पड़ता है। प्रयोग का परिणाम सफलता की सूचना है तथा प्रयोग की प्रक्रिया उस युग का रचनात्मक प्रतिबिम्ब। वैचारिक ऊहापोह के प्रदर्शित करने के लिए कथा मात्र निमित्त बन गयी और उसमें प्रबन्ध कथा रस की प्रधानता नहीं रही। " आत्मजयी", "अंधायुग", "संशय की एक रात", "कुरुक्षेत्र", "एक कंठ विषपायी", आदि प्रबन्धात्मक कृतियाँ अपनी वैचारिक भूमिका के कारण ही पारम्परिक प्रबन्धात्मक कृतियों से अलग दिखायी देती

है और आधुनिक अर्थ में सार्थक है । कथा- काव्यों में प्रयोग तथा इसके परिणाम दोनों प्रकार की बातें आ सकती हैं । उसी रचना को श्रेष्ठ होने का गौरव प्राप्त होता है जिसमें समस्या का समाधान अर्थात् परिणाम मिलता है । कथात्मक रचना मूलत: केन्द्रीय समस्या का ही समाधान है । कथात्मक रचना मूलत: केन्द्रीय समस्या का ही समाधान देती हैं । प्रत्येक रचनाकार एक समस्या का समाधान अपने व्यक्तित्व के अनुरूप सोचता है । अत: इस तथ्य को स्वीकार किया जा सकता है कि कथा काव्यों अथवा प्रबन्ध काव्यों में रचनात्मक स्तर पर किसी न किसी समस्या का समाधान प्राप्त होता है। रचनाकार अनेक मानसिक स्थितियों से गुजरता हुआ जो तथ्य प्राप्त करता है उसी की अभिव्यक्ति काव्य में करता है ।

प्रबन्ध रचना में उसकी स्वरूप विशेषता के कारण युगीन मूल द्वन्द्व एवं तनाव, संघर्षशील मानवीय चेतना की आन्तरिक प्रेरणाओं का, यथार्थ के संश्लिष्ट स्वरूप मूर्त अनुभव बिम्ब के रूप में चित्रण किया जा सकता है । परन्तु मानव जीवन के विस्तृत वर्णन के लिए प्रबन्ध रचना में कथा-निर्वाह हेतु बहुत से तत्त्व इकट्ठा करना अनिवार्य हो जाता है । यह सामग्री कवि के जीवन दर्शन, युग चेतना एवं यथार्थ बोध को परिभाषित करने में सहायक हो सकती है । यही कारण है कि "अज्ञेय" ने अनुभूत जीवन को कविता में चित्रित

करने का प्रयास किया । उन्होंने लिखा कि "सत्य वह सत्य है जिसके साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध हो ।" रागात्मकता का यह आग्रह छायावाद की कविता में भी बढ़ गया था। छायावादयुगीन महत्वपूर्ण रचना "कामायनी" रूप और संवेदनात्मक विशेषताओं के कारण अपनी पूर्ववर्ती प्रबन्ध रचनाओं से भिन्न स्तर पर स्वयं को प्रतिष्ठित करती है । "कामायनी" के प्रबन्धात्मक वैशिष्ट्य के परिभाषित करते हुए जयशंकर प्रसाद ने लिखा - " आज हम सत्य का अर्थ घटना कर लेते हैं, तब भी उसके तिथि क्रम आदि से सन्तुष्ट न होकर मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर कुछ देखना चाहते हैं । उसके मूल में क्या रहस्य है ? आत्मा की अनुभूति, हाँ उसी भाव के रूप ग्रहण की चेष्टा सत्य या घटना बनकर प्रत्यक्ष होती है फिर ये सत्य घटनाएं स्थूल या क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव में परिणत हो जाती है । किन्तु सूक्ष्म अनुभूति या भाव चिन्तन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित रहता है जिसके द्वारा युग युग के पुरुषों की और पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति होती है ।" वस्तुत: नये कवियों ने भी अनुभूति और भाव चिन्तन को ही सत्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है । समय और अनुभव ने प्रबन्धात्मक रचनाओं के प्रति नये कवियों का पूर्वाग्रह समाप्त कर दिया । स्थूल वर्णनात्मकता और अनावश्यक विस्तार से

बचकर प्रबन्ध रचनाओं में युग बोध और यथार्थ के संश्लिष्ट स्वरूप का मार्मिक चित्रण किया जा सकता है ।

क्षणवादी दर्शन और विघटित व्यक्तित्वों वाली धारणा के कारण आधुनिक कवियों में कथा या घटना श्रृंखलित प्रबन्ध- काव्य लिखने का उत्साह कम दृष्टिगोचर होता है । अत: क्षण की धारणा में भी संशोधन हुआ। वर्तमान युग के बिखरे और टूटे सत्यों को लेकर श्रृंखलाबद्ध काव्य लिखना अत्यन्त कठिन है । आज की रचना हमारे उपेक्षित सामान्य दैनिक जीवन और भीतरी व्यक्तित्व के अनेक सत्यों को स्वीकार करके ही चलेगी । दैनिक जीवन की सामान्य पर गहन अनुभूतियों और व्यक्तित्व के भीतरी स्तरों को उजागर करके ही आज की रचना सार्थक हो सकती है । आज के युगीन मूल्य बदल गये हैं । लघुता या सामान्यता को विशिष्टता प्रदान करना ही आज की प्रवृत्ति है । लोकतन्त्र की स्थापना से इस प्रवृत्ति को और भी विकसित होने का बल मिला है । रूढ़ि सामूहिकता टूटने एवं गतिशील सामाजिकता के विकास से व्यक्ति को समादर प्राप्त हुआ है, जिसके कारण व्यक्ति सामाजिक दायित्व नैतिकता या आदर्श का निर्जीव अंश न होकर सजीव इकाई बन गया है । आज के व्यक्ति में स्व और सामाजिकता का अपूर्व मिश्रण है अर्थात् प्रजा और सामान्य

मानवता को शक्ति और सत्ता मिली है । कल के उपेक्षित, अपमानित और महत्व-हीन सामान्य व्यक्तियों को आगे आने का अवसर प्राप्त हुआ है । युग की जो अनेक समस्याएं आती जाती रहती हैं तथा मनुष्य को तोड़ती हैं, जिन पर साधारण मानव विचार नहीं करता, जिसे नियति का अभिशाप मान लेता है वही रचनाकार उसमें तन्मय हो जाता है । समस्याएं अनेक हैं कतिपय व्यापक समस्याओं पर कवियों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं जैसे, युग-बोध, व्यक्तित्व की रक्षा, व्यक्ति और समाज का परस्पर सम्बन्ध, पुरुष और नारी का जीवन क्षेत्र, भावना और बुद्धि का द्वन्द्व, वैज्ञानिक प्रगति और संस्कृति ।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवित रहने का कारण युग एवं परिवेश का बोध है । वह युग चाहे भयावह और विनाशकारी हो या समृद्धि की ओर, व्यक्तित्व के निर्माण में उसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है । वर्तमान परिस्थितियां प्रतिकूल एवं आतंक से परिपूर्ण है। युद्ध की समस्या और समाधान ने विश्व को भ्रमित कर दिया है । रचनाकार स्वयं को इस स्थिति में संवेदना शून्य पाता है क्योंकि उसकी चिन्तन शक्ति और संवेदना शक्ति समस्या के दूरगामी परिणाम प्रस्तुत करती है । इस चेतना से असम्पृक्त होना उसके बस की बात नहीं है । "अंधायुग," "एक कंठ-विषपायी" और "संशय की एक रात" इसी कारण समस्या के एक-एक छोर पर आत्ममंथन करते हैं और समाधान का मार्ग ढूंढते हैं । "अंधायुग" युद्धोपरान्त परिणामों
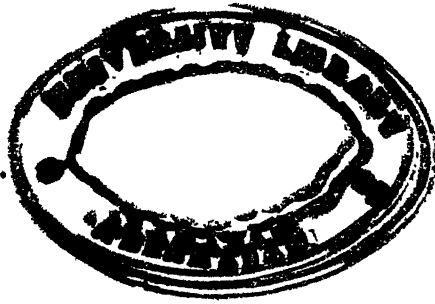
की ओर संकेत करने वाली रचना है । युद्धोत्पत्ति के कारणों का समापन युद्ध के पश्चात् नहीं होता, प्रत्युत, कुण्ठा, निराशा और खंडित मर्यादा का साम्राज्य होता है, और मनुष्यता समाप्त हो जाती है । दो युद्धों ने अपनी निस्सारता प्रकट कर दी है, इतिहास के पुराण युग में भी यही हुआ था । "अंधायुग" के रचनाकार द्वारा उसी पुराकृत को नयी समस्याओं से युक्त कर प्रस्तुत किया गया है । " एक कंठ विषपायी" का पात्र संवेदित उन्हीं ढहते मानव मूल्यों का टूटा हुआ किन्तु जीवित व्यक्ति है । "संशय की एक रात " के राम आज के उस मानव के प्रतीक हैं, जो युद्ध से भागना चाहता है, पर भागने की कामना मात्र मृग-मरीचिका रह जाती है, उसे पुरजन- परिजन युद्ध में ले ही जाते हैं ।

"संशय की एक रात" में उठाया गया प्रश्न दिनकर के मन में भी आया था । दिनकर"कुरुक्षेत्र " में युद्ध की अनिवार्यता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करते हैं । दोनों काव्यों का मूलभूत अंतर यह है कि जहाँ " संशय की एक रात " में युद्ध के पूर्व जिस प्रश्न को सामने रखा गया है वहीं " कुरुक्षेत्र " के युधिष्ठिर युद्धोपरान्त उस प्रश्न पर चिन्तन करते हैं । दोनों में समस्या का समाधान वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर है । युधिष्ठिर और राम युद्ध नहीं चाहते, जबकि दोनों के पुरजन -परिजन युद्ध को अनिवार्य मानते हैं । दोनों का निष्कर्षों में किंचित् भेद यह है कि राम अंत

तक युद्ध का विरोध करते हैं, जब कि युधिष्ठिर समर्पित हो जाते हैं। वस्तुतः "संशय की एक रात" " एक कंठ विषपायी" ,"अंधायुग" युग में व्याप्त युद्ध की समस्या -बोधक रचनाएं हैं। मानव- मूल्यों की खोज युग बोध का दूसरा स्तर है। वर्तमान बुद्धिजीवी व्यक्ति अर्थहीन पुरानी मर्यादाओं को छोड़कर नये सत्य का अन्वेषण करना चाहता है। "अंधायुग " का युयुत्सु और "आत्मजयी" का नचिकेता को अपने पिता द्वारा मृत्यु दण्ड प्राप्त होता है। "नचिकेता" कर्म पर विश्वास करता है, वह नियति के आगे नहीं झुकता। वह वर्तमान अवस्था के सापेक्ष में भविष्य पर दृष्टि रखता है। आज की परिस्थितियों में उठने वाला तीसरा प्रश्न है प्रजातन्त्र की स्थापना और रक्षा " "अंधायुग" के प्रहरी, " एक कंठ विषपायी" का सर्वहत और " संशय की एक रात" के हनुमान साम्राज्य वादी शासन व्यवस्था के विरोधी हैं -

" आप लोग शासक हैं / शासकों के कहीं
रक्त की कमी हुआ करती है।"[8]

द्विवेदी युग में निश्चित आदर्शों और मर्यादाओं पर व्यक्ति को जीने का उपदेश था तथा छायावादी युग में अपने अनुरूप आदर्शों का निर्माण करने की छूट

- -

8 · दुष्यन्त कुमार - एक कंठ विषपायी , पृ0- 113

थी । आधुनिक युग दोनों से भिन्न हैं । उच्च आदर्श एवं मर्यादाएं आज के मनुष्य के लिए अस्तित्व हीन है वह व्यक्तिगत स्वार्थों के दायरे में फंसा हुआ है । वह अविश्वासी संशयी, कुंठाग्रस्त, प्रतिशोधी, युयुत्सु हो गया है । आलोच्य काव्यों में वर्तमान के उन्हीं व्यक्तियों के बिम्ब प्रस्तुत किये गये हैं । अश्वत्थामा वर्ग कुंठा युत हैं । " एक कंठ विषपायी " के शंकर में भी कुंठा की अभिव्यक्ति है । "युयुत्सु " में आज के विभ्रमित आचरणों का प्रस्फुटन हुआ है । "संशय की एक रात" में राम आज के अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित मानव का प्रतिनिधित्व करते हैं । यहाँ अन्तर्द्वन्द्व " युद्ध करें न करें " सम्पूर्ण रचना का आधार है । युगीन मानव अपने मन में अनुभूति को जीने की जिज्ञासा लिए हुए हैं किन्तु सामाजिक मर्यादा वश वह ऐसा कर पाने में असमर्थ है । वह यंत्रवत जीवन जी रहा है । इस स्थिति में मनुष्य का अन्तर्द्वन्द्व उसे परेशान करता है "संशय की एक रात " में राम का व्यक्तित्व भी इसी कोलाहल से परिपूर्ण है । "आत्मजयी" का नचिकेता एक ओर स्वतन्त्र विकास की कामना करता है वहीं दूसरी ओर आत्महत्या की भी सोचता है , यह अनिर्णयी व्यक्तित्व का चिह्न है। "अंधायुग" में युयुत्सु आत्म हत्या कर लेता है ।

रचना के व्यक्ति तथा समाज दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । सापेक्ष जीवन-यापन करना दोनों का प्रधान गुण हैं । महत्वपूर्ण प्रश्न इनके आपसी सम्बन्ध पर

हैं कि व्यक्ति परिवार समाज के किस स्तर तक मनुष्य के सहयोगी हो सकते हैं। तथा कहाँ तक उसकी स्वतन्त्रता में बाधक नहीं है । समस्त विद्वानों तथा चिन्तकों ने इसका जो समाधान दिया था, वह अब मान्य नहीं है । साहित्यिक भूमि में भी प्रगतिवाद, छायावाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद, सभी सांस्कृतिक क्षेत्र में मानव व्यक्तित्व की रक्षा और उसके सामाजिक सम्बन्धों की चर्चा करते हैं। एक ओर प्रगतिवाद मनुष्य की सत्ता को नकारता है तो प्रयोगवाद मनुष्य को समाज निरपेक्ष मानता है । ये स्थितियाँ अतिवादी कहलाती हैं। क्योंकि मनुष्य न तो अराजक प्राणी हैं न ही कारागृह बन्दी । नयी कविता में वादीय आग्रह नहीं है, यही कारण है कि इन रचनाओं में उपेक्षाकृत सन्तुलित जीवन की कल्पना है। "अंधायुग", "संशय की एक रात ", " आत्मजयी" आदि में मनुष्य को स्वयं निर्णय लेने व स्थिति को नियंत्रण में रखने के लिए सामाजिक तथा पारिवारिक उलझनों में फँसा हुआ बताया गया है ।

पुरुष तथा नारी प्रेम एवं परस्पर आकर्षण से एक दूसरे से बंधे हुए हैं । सूत्रों में परिवर्तन होता है परन्तु प्रेम अपरिवर्तनीय है । तुलसी के राम-सीता, साकेत के लक्ष्मण- उर्मिला, सूर के राधा -कृष्ण और रीतिकालीन कवियों ने कृष्ण-राधा

भिन्न - भिन्न समय में परिवर्तित सम्बन्ध प्रणालियों के स्मारक हैं। छायावाद युग से ही इन प्रणालियों में परिवर्तन आने लगा था पर इस काल में नारी कोमलता एवं श्रद्धा का प्रतीक थी। उसे विश्वास पाने का अधिकार था। नवीन कथा काव्यों में इस समस्या को स्पर्श किया है। "कनुप्रिया" में भारती जी ने राधा को कृष्ण की प्रेरणा कहा है। यहाँ राधा कृष्ण के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करती है। उसके स्नेह के अभाव में कृष्ण के प्रत्येक कार्य गतिहीन तथा निरर्थक हैं -

" बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता
तुम्हारे इतिहास का / शब्द - शब्द, शब्द ....
राधा के बिना / सब
रक्त के प्यासे / अर्थहीन शब्द " [1]

कृष्ण के वीतरागी जीवन से परिचित होने पर भी राधा कृष्ण के अनुराग में पूर्णतया डूबी रहती है। " एक कंठ विषपायी", में शंकर सती के मोह में पड़कर उसकी मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पाते। " संशय की एक रात " में राम का अनिश्चयी मन सीता से ही अनुरक्त है जिसे वे बाद में वैयक्तिक भूमिका पर ग्रहण कर लेते हैं। वस्तुतः नारी - पुरूष की समस्या भी वर्तमान में चिन्त्य

---

1. धर्मवीर भारती- कनुप्रिया पृ0- 88

है जिसे काव्य रूप दने के लिए रचनाकार व्याकुल रहता है । वह स्वाभाविक वासना से परे प्रेम को वायवी रूप देने का प्रयत्न करता है ।

भावना तथा बुद्धि परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं इनका विभाजन प्रमाणिक नहीं है । प्राचीन साहित्य को क्रमशः दैवी प्रेरणा, सहज उच्छ्वास, रसवादी और आनन्दवादी रचना कहा गया है । उस समय का साहित्य समाज से अधिक सम्पृक्त नहीं था । समाज और साहित्य के सम्बन्धों की चर्चा तत्कालीन समय में नहीं हुआ करती थी । वर्तमान परिस्थितियों में साहित्यकार समाज सापेक्ष है जबकि पूर्व में वह आदर्शोन्मुख था । उसके ऊपर समाज के कतिपय दायित्व है । जिनके समाधान के लिए उसे चिन्तन की ओर जाना पड़ता है । चिन्तन की आवश्यकता प्रश्नों की आवृत्ति और तर्कों के दायरे को बुद्धि का कार्य समझा जाता है । यह विचार भ्रान्तिमान है । यह समस्या साहित्यकार के दायित्व से सम्बन्ध रखती है और रचनाकार के व्यक्तित्व को निरन्तर कष्ट देती रहती है । साहित्य कार के मन में बुद्धि और भावना के लिए अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है इसीलिए वह अपने दायित्वों के निर्वाह की व्याकुलता में निमग्न रहता है ।

आधुनिक कथा- काव्यों में इस प्रश्न का हल निकाला है वे सृजन प्रक्रिया

में किसी दिव्य और मानवोपरि सत्ता का निषेध करते हैं तथा मानवीय धरातल पर साहित्य चिन्तन को रखते हैं। इन काव्यों में रचनाकार का जीवन-दर्शन देखा जा सकता है। इसी प्रक्रिया में बुद्धि और भावना या कोरी भावुकता का द्वन्द्व अपने आप तिरोहित हो जाता है। ये दोनों तत्व कवि की प्रक्रिया में निरन्तर आदान प्रदान करते हैं। उनका संतुलन ही जीवन का श्रेष्ठ मार्ग है। "कामायनी-कार" ने भी इन दोनों के सन्तुलन से अपने जीवन दर्शन का निर्माण किया था। " एक कंठ विषपायी " में दुष्यन्त कुमार का कथन -

> " चिन्तन की दिशा
> या समस्या को समाधान देने के लिए
> थोड़ी तटस्थ और वस्तुपरक दृष्टि की
> अपेक्षा करता है विवेक दृष्टि की [10]

संशय की एक रात " में पुरजन - परिजनों के बीच राम के निष्कर्ष, अंधायुग में विसंगतियों, विकृतियों और विषमताओं के बीच मानव की संभावनाओं पर

- -

10· दुष्यन्त कुमार - " एक कंठ विषपायी " पृ0- 62

चिन्तन तथा " आत्मजयी" में वेदान्ती एवं अस्तित्व वादी भूमिकाएं तथा नचिकेता के निष्कर्ष साहित्यकार के जीवन-दर्शन के पर्याप्त ज्ञापक हैं ।

परम्पराओं को तोड़ते हुए नवीन विश्वास और आस्थाओं की स्थापना करते हुए सत्यता का ज्ञापन ही विज्ञान कहलाताहै । इतिहास, सभ्यता एवं संस्कृति का पुन: परीक्षण और प्राप्त परिणामों की परिधि की विज्ञान की देन है । गिन्सबर्ग ने बड़ी क्षमता के साथ तीन शताब्दी की प्रगति और उसके सिद्धान्तों का पुनर्परीक्षण करने के बाद घोषणा की कि विवेक पर आधारित मानववादी आग्रह ही प्रगति की मूल प्रेरणा है और विवेक सम्पन्न सामाजिक - नैतिकता ही मूल मर्यादा हो सकती है । मनुष्य की प्रगति का यह सूत्र वैज्ञानिक है, इसे ही प्रगति वादी चिन्तक, ईसाई चिन्तक, ईसा धर्म, गांधी, विनोबा, सर्वोदय और अरविन्द मनुष्य की भविष्योन्मुखी चेतना कहते हैं । वर्तमान काल में प्रबुद्ध चेतनाएं तो विज्ञान की इस उपलब्धि पर आश्वस्त हैं, किन्तु सामान्य जन तक उसकी प्रषणीयता, सहानुभूति और संवेदना के साथ नहीं की जा सकी । रचनाकार इसी कार्य को अपनी वाणी और लेखनी के महत्वपूर्ण अंकों और शब्दों में भरता है । विज्ञान को संस्कृति को रचनाकार दो रूपों में स्पष्ट करता है, रचनात्मक उपयोग में या विध्वंसात्मक कार्यों में दुरुपयोग/जीवन की तपस्या और साधना में तपकर अभीष्ट सत्य को प्राप्त करना ही वैज्ञानिक का लक्ष्य है जिसे राजनीति ने

अभिशप्त कर दिया है । रचनाकार का आशय विज्ञान के सर्जक की अनुभूति से साधारणीकरण करना है, दूसरे पक्ष का निरूपण उसके परिणामों की भयावहता को प्रस्तुत करने के लिए एवं उससे घृणा करने के लिए करता है ।

"अंधायुग" के रचनाकार के अनुसार युद्ध विनाशक है । युद्धों की लपेट में श्रेष्ठ संस्कृति की कल्पना ही असंभव है । मानव जीवन की अनिश्चितता का कारण अणुयुद्ध है जो कि विज्ञान की देन है । विज्ञान एक ओर भौतिक समृद्धि का द्वार खोलता है परन्तु उसका दूसरा पक्ष मानसिक शान्ति अभी भी बन्द है । इसके लिए आवश्यक है कि विज्ञान का रचनात्मक उपयोग हो और मनुष्य जीवन के लिए तटस्थ और वस्तुपरक हो, जीवन को सहज ही जीना और उसे ऊपर उठाना उसका लक्ष्य हो । " आत्मजयी" का नचिकेता इसी जीवन दृष्टि की तलाश करता है -

" स्वयं अदृष्ट
इसी माया वस्तु को
बार - बार धारण करूँ, इसी भोग सामग्री को ग्रहण करूँ
इनसे छूटा रहकर ।" [1]

1• कुंवर नारायण - " आत्मजयी " पृ0 - 106

आधुनिक युग के सभी कथा - काव्यों में विज्ञान की संस्कृति की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है । प्रत्येक रचनाकार अपने जीवन मूल्यों की संगति में जिस जीवन दर्शन का निर्माण कर सका है और प्रगति के लिए जिस प्रकार वैयक्तिक एवं सामाजिक व्यवस्था की कल्पना उसने की है उन्हें कथाकाव्यों में व्यक्त कर सका है । इनके पास सभी स्वीकृत समस्याओं की चतुर्दिक दृष्टियाँ थी, अभिशाप और वरदान दोनों को युग की प्रयोगशाला में उन्होंने देखा है उनकी प्रतीति की है । इन कवियों या अन्य कवियों से कथा - काव्य के क्षेत्र में अभी विशद सम्भावनाएं है, क्योंकि अभी किसी रचनाकार ने नये मानव मूल्यों की स्थापना के लिए कोई निश्चित समाधान प्रस्तुत नहीं किया है । युग बोध होने के पश्चात भी युग से युगेतर वे नहीं हो सके हैं ।

xxxxxxxxxxx

अध्याय - 3

छायावादोत्तर प्रबन्धकाव्यों में भाषा एवं संवेदना का स्वरूप

प्रबन्ध काव्य अपने युग का आईना होते हैं। इनके माध्यम से युग के द्वन्द्व और तनाव का, संघर्षमयी मानवीय चेतना की आंतरिक प्रेरणाओं और सरोकारों का, युगीन यथार्थ के संश्लिष्ट स्वरूप, नवनिर्मित मूल्याबोध और व्यक्ति मन की तीव्र प्रश्नाकुलताओं का मूर्त रूप में चित्रण किया जा सकता है। मानवीय सन्दर्भों को इतने विस्तृत आयाम में निरूपित करने की सामर्थ्य मात्र प्रबन्ध काव्य रचना में ही सम्भव है। प्रत्येक काव्य परम्परा स्थायित्व एवं विचार दर्शन की परिपक्वता के पश्चात ही प्रबन्ध रचना प्रदान करती है यही कारण है कि नयी कविता में सफल प्रबन्ध काव्यों की संख्या कम है। नयी कविता के प्रबन्ध काव्यों में महाकाव्य जैसी गरिमा तथा आधुनिक नाटक की तीव्र संवेदनात्मकता व्याप्त है जो कवि की असाधारण शक्ति सम्पन्नता व सूक्ष्म बोध का परिचायक है। समस्त प्रबन्ध रचनाओं में पुराण कथाओं को ही आधार बनाकर उनके माध्यम से आधुनिक मानव की मनः स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। नयी कविता को प्रबन्ध काव्यों में नाटक और काव्य के सम्मिलित शिल्प का प्रणयन किया है।

प्रस्तुत अध्याय में धर्मवीर भारती कृत "अंधायुग" और "कनुप्रिया" नरेश मेहता कृत "संशय की एक रात" कुंवर नारायण कृत "आत्मजयी", दुष्यंत कुमार कृत "एक कंठ विषपायी" विनय कृत "एक पुरूष और "जगदीश गुप्त" कृत "शम्बूक" तथा रामधारी सिंह "दिनकर" कृत "उर्वशी" के भाषिक-संवेदनात्मक पक्ष को प्रस्तुत किया गया है।

"आत्मजयी" की संवेदना

"आत्मजयी" काव्य चिन्तन की विशिष्ट मुद्राओं से युक्त कुंवर नारायण की एक आधुनिक रचना है। यह रचना अपनी विषय वस्तु की शाश्वत और आधुनिक सन्दर्भ को प्रस्तुत करने वाली पौराणिकता के योग से नये प्रबन्ध काव्यों में अपना एक स्थान बनाती है। "आत्मजयी" एक ऐसी कृति है जो विख्यात कथा-वस्तु पर आधारित होने के बावजूद भी चिरंतनता और समसामायिकता, दोनों ही धरातलों को एक साथ स्पर्श करती है। कवि ने इन सूत्रों का सामजंस्य बैठाने के लिए बड़ी कुशलता का परिचय दिया है। इसीलिए जहाँ "आत्मजयी" को एक ओर हम छायावादी रहस्य-वादी कुहासे में घिरा पाते हैं वहीं दूसरी ओर गीता- उपनिषद् अथवा नई कविता और अस्तित्व वाद आदि के घेरों को तोड़ते हुए, अपने निजी स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाने के प्रयास में संलग्न भी देखते हैं। यह कृति उस गति-रोध को तोड़ने की दिशा में एक प्रयास है, जिसमें सामान्य रूप से हिन्दी कविता और व्यापक रूप से हमारी राष्ट्रीय चेतना वर्तमान शती के सातवें दशक में उलझ कर हतप्रभ रह गयी। "आत्मजयी" नामक कृति अपने रचनाकार की नहीं, अपितु कलाकार मात्र की इस जीवन दृष्टि का परिचय देती है कि चाहे वह मृत्यु हो या आत्म हत्या, जीवन और सृजन की प्रक्रिया ठीक इन्हीं

बिन्दुओं से निःसृत हो सकती है । जिस युग में " पुराने " का रूपान्तरण हो रहा हो, मूल्य चुक गये हों, जीवन में विसंगति और विडम्बना का भयावह चेहरा उभर पड़ा हो, उस युग में मृत्यु के बाद की स्थिति को समझना -समझाना अपेक्षित लगता है । अतः भावुकता से दूर होकर विचार की ठोस भूमिका पर आधारित जीवन की सार्थक स्थिति की तलाश ही " आत्मजयी " का मूल मन्तव्य है ।

इस कृति में उठाई गयी समस्या एक विचारशील व्यक्ति की समस्या है जो जीवन के सार्थक अन्तः इतिहास को मूल से समझना चाहता है । जिज्ञासु नचिकेता आदिम प्रश्नों को वृहत्तर जीवन परिप्रेक्ष्य में अनुभवात्मक धरातल पर टटोलता है । जीवन तथा मृत्यु से खुला साक्षात्कार करता हुआ वह जीवन की सीमित विसंगति को महसूस करता है पर निराश नहीं है । आस्थावान काव्य नायक सुख - दुख नहीं जीता है, बल्कि वह एक विशिष्ट और अद्वितीय अनुभव का जीवन जीने का प्रयास करता है । इस जीवन में " कंकुओं " से ऊपर उठने का अनिवार्य प्रण है, जीवन के चरम लक्ष्य को तलाशने का अनथक प्रयास । इसी दृष्टि से अभिभूत -आक्रान्त नचिकेता जीवन के चिन्तन मूल्यों को खोजना चाहता है । भौतिक ऐश्वर्य की कामना से वितर अमरत्व की आकांक्षा की प्रबलता ही उसके अन्तर्व्यक्तित्व की अनुगूंज है। ऐसा अमरत्व जिसे सम्मानित

करके मानवता सम्मानित हो आत्मा के धरातल पर झुककर नचिकेता को ऐसा लगता है कि वर्तमान के/ विघटन ने मानव के युगों के संचय को अस्तव्यस्त कर बिखरा दिया है और नया मानव उसे पाने की कामना में अभी खाली हाथ है किन्तु वह हताश न होकर, अपनी शक्ति की असीम सम्भावनाओं पर विश्वास करता हुआ गतिशील है ।

इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि " आत्मजयी " युगान्तरकारी रचना है अथवा इससे सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र प्रभावित हुआ । पर यह तथ्य स्वयं में ही महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय मनोदशा के एक विशेष दौर में इस रचना ने बुद्धि-जीवी वर्ग को आकर्षित किया । यद्यपि 1965 तक " नई कविता " का आन्दोलन शिथिल पड़ चुका था और तथाकथित " साठोत्तरी कविता " की चर्चा प्रबल थी - तथापि " आत्मजयी " वस्तुत: " नई कविता " की ही निजी कृति मानी जा सकती है । वह लगभग उन सभी गुण दोषों से युक्त है जो " नई कविता" के नित्य लक्षण समझे जाते रहे हैं । इस कृति में उठायी गयी समस्या जीवन और उसके मूल्यों के प्रति है । कवि ने कहा है कि नचिकेता में वर्तमान युग की संवेदना है, वास्तव में यह आत्म - अनात्म का संघर्ष तो अनादि है, यह जितना आधुनिक है उतना ही अतीत और भविष्य का भी है । "आत्मजयी के विकास

में भारतीय वेदान्त दर्शन एवं अस्तित्ववाद के तत्व जुड़ गये हैं । युग जीवन की विसंगति, विघटन , अनिश्चय और अनास्था के बीच कवि का आत्म-तत्व अर्गल उपदेश न होकर यथार्थ जीवन में कर्म का सन्देश है, वर्तमान के प्रति आस्था देने वाला है और भविष्य की कल्पना देता है । आस्थावान काव्य - नायक सुख - दुख की उपेक्षा एक विशिष्ट और अद्वितीय अनुभव का जीवन जीता है । कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि - " आत्मजयी में उठायी गयी समस्या मुख्यत: एक विचारशील व्यक्ति की समस्या है - केवल ऐसे प्राणी की समस्या नहीं जो दैनिक आवश्यकताओं के आगे नहीं सोचता है, या नहीं सोच पाता । कथानक का नायक नचिकेता मात्र सुखों को अस्वीकार करता है । तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति भर ही उसके लिए केवल सुखी जीना काफी नहीं सार्थक जीना जरूरी है । यह जिज्ञासा ही उसे साधारण प्राणी से विशिष्ट उन मनुष्यों की कोटि में रखती है है जिन्होंने सत्य की खोज में अपने हित को गौण माना, कायिक जीवन को स्वप्न समझा और जिन्होंने ऐन्द्रिय सुखों के आधार पर ही जीवन से समझौता नहीं किया बल्कि उस चरम लक्ष्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया जो उन्हें पाने के योग्य लगा ।"[1] इसी दृष्टि से अभिभूत आक्रान्त

---

1. कुंवर नारायण - आत्मजयी , भूमिका से उद्धृत ।

नचिकेता जीवन के चिरन्तर मूल्यों को खोजना चाहता है। भौतिक ऐश्वर्य की कामना से विरत अमरत्व की आकांक्षा की प्रबलता ही उसके अन्तर्व्यक्तित्व की अंमुगूंज है। ऐसा अमरत्व जिसे सम्मानित कर के मानवता सम्मानित हो। आत्मा के धरातल पर जुड़कर नचिकेता को ऐसा लगता है कि वर्तमान के विघटन ने मानव के युगों के संचय को अस्तव्यस्त कर बिखरा दिया है तथा मानव खाली हाथ इसे पाने की कामना करता है। किन्तु वह हताश न होकर, अपनी शक्ति की असीम सम्भावनाओं पर विश्वास करता हुआ गतिशील है।

"आत्मजयी" कठोपनिषद् से गृहीत इस पौराणिक कथा को कवि ने आधुनिक सन्दर्भों में नया अर्थ दिया है। नचिकेता का कथानक हिन्दू धर्म से न जुड़कर शुद्ध पौराणिक कथा के रूप में ही शेष रह गया है, इसीलिए उसे नये सन्दर्भों और नये अर्थों से सम्पृक्त करने में कवि को कोई कठिनाई अनुभव नहीं हुई। कथा का पुराना आवरण उतरकर उसमें से चिन्तन के नये अंकुर फूट सके हैं। एक क्षीण कथा सूत्र कवि के चिन्तन को अनुस्यूत करने के लिए आया है। परन्तु कृति उस परिधि तक स्वतन्त्र है जहाँ तक कथा की मूल प्रकृति न विकृत हो। अज्ञेय जी ने कहा है कि - "पौराणिक चरित्र ~~ऐतिहासिक चरित्र~~ नहीं

होते । उनके ऊपर जो प्रतीकत्व आरोपित हो जाता है, वह वास्तव में एक जाति के गहन विश्वासों आदर्शों और वासनाओं का प्रतिरूप होता है ।[2] दिक्कत तब होती है जब हम उन कथाओं को अपने धार्मिक विश्वासों से जड़ीभूत करके इतिहास कथाएं मान लेते हैं । हनुमान, राम या अन्य पात्रों के साथ इतिहास सत्य को जोड़कर लगभग स्थिर कर दिया गया है । जो व्यक्ति अपने सर्जन के रचनात्मक सन्दर्भों में इन्हें एक सीमा के बाद जोड़ता-तोड़ता है । वह बहुत बड़ा खतरा उठाता है । नचिकेता की कथा पौराणिक बन कर ही रह गयी थी । अतः यही सोच कर कुंवर नारायण ने इसका चयन किया जिसमें आधुनिक जीवन के सन्दर्भों को व्यक्त करने की विशेष क्षमता है । इस पुरा-कथा पर साहित्य में बहुत कम लिखा गया है । वस्तुतः यह अद्भुत महत्व की कथा अभी तक उपेक्षित ही पड़ी थी जिस पर कवि का ध्यान गया - " नचिकेता का प्रसंग इस दृष्टि से मुझे विशेष उपयुक्त लगा कि वह मुख्यतः धार्मिक क्षेत्रों का न होकर दार्शनिक क्षेत्र का ही रहा, जहाँ वैचारिक स्वतन्त्रता के लिए अधिक गुंजाइश है । दूसरे, नचिकेता पर बाद में जो थोड़ा बहुत साहित्य लिखा भी गया है . उसकी ऐसी सशक्त परम्परा नहीं है जो उसे फिर कोई नया साहित्यिक रूप देने में बाधक हो, न अब तक इस आख्यान के पुराकथात्मक पक्ष को ही इस प्रकार लिया गया है कि वह आज के मनुष्य की जटिल मनःस्थितियों को बेहतर

अज्ञेय - विवेक के रंग पृ0- 109

अभिव्यक्ति दे सके । इसीलिए मैंने आत्मजयी के धार्मिक या दार्शनिक पक्ष की विशेष चिन्ता न करके उन मानवीय अनुभवों पर अधिक दबाव डाला है जिनसे आज का मनुष्य भी गुजर रहा है । और जिनका नचिकेता मुझे एक महत्वपूर्ण प्रतीक लगा ।"[3]

"आत्मजयी" मूलतः आधुनिक चेतना का काव्य है । इसमें कथा स्वल्प है और जिसमें कोई घटना न होकर चिन्तन है। ऐसा प्रतीत होता है कि " आत्मजयी " के भिन्न -भिन्न खण्ड आधुनिक चिन्तन के भिन्न - भिन्न आयाम हैं अर्थात् आधुनिक जीवन के कुछ सन्दर्भों को लेकर उन व्यक्त किये गये विचारों के अलग - अलग टुकड़े यहाँ से वहाँ तक बिखरे हैं । कवि ने विशेष रूप से नचिकेता के आख्यान को अपने काव्य का माध्यम बनाया क्योंकि वे नये चिन्तन से उद्दीप्त होकर भी जीवन को एक लम्बी परम्परा में देखना चाहते हैं । आज जिन प्रश्नों को और उनसे सम्बन्ध विचारों को लोग महज पश्चिम से जोड़कर चुप हो जाते है उन्हें कवि भारतीय जीवन और उसके दर्शन से जोड़ना चाहता है । कवि के अनुसार यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितना जीवन तथा मृत्यु सम्बन्धी मनुष्य का अनुभव पुराना है । परन्तु इस अनुभव को पौराणिक सन्दर्भ में रखते समय यह चिन्ता बराबर रही कि कहीं हिन्दी की रूढ़-आध्यात्मिक शब्दावली अनुभव की सच्चाई पर इस तरह न हावी हो जाए कि आत्मजयी को एक आधुनिक काव्य के रूप में पहचानना ही कठिन हो । कुंवर नारायण ने आधुनिक

- -

कुंवर नारायण : आत्मजयी "भूमिका " से उद्धृत

व्यक्ति को मानसिक अवस्थाओं के सन्दर्भ में ही उपनिषद ,यम, नचिकेता, आत्मा, मृत्यु, ब्रह्मा आदि रूढ़ शब्दों के प्रयोग का साहस किया है । कथा के पौराणिक बंध को काटकर प्रतीकात्मक रूप दिया है परन्तु कहीं - कहीं कथा अस्पष्ट हो गयी है । जिससे " आत्मजयी " तथा " कठोपनिषद " के श्लोकों में बुनियादी अन्तर आ गया है । नचिकेता वाजश्रवा का पुत्र है । वह अपने पिता से धर्म कर्म सम्बन्धित मतभेदों से अत्यन्त खिन्न है । वह स्वयं को पानी में डुबोकर आत्म हत्या करने के लिए विवश है ।"कठोपनिषद " में वह मरणोपरान्त यमराज के पास जाता है लेकिन यमराज के न मिलने पर तीन दिन तक भूखा प्यासा रहकर उनकी प्रतीक्षा करता है । ब्राह्मण अतिथि अग्नि रूप होकर घरों में प्रवेश करता है । अतः उसकी शान्ति के लिए अर्घ्य पाद्य रूप जल का दान करने के लिए यमराज से कहा गया है -

" वैश्वानर प्रविशत्यतिथि ब्राह्मणो-गृहान् ।
तस्यैतां शान्ति कुर्वन्ति हर वैस्वतोदकम् ।"[4]

यम नचिकेता को तीन वर देता है - प्रथम: - वाजश्रवा का क्रोध शान्त हो । द्वितीय - यज्ञों की नचिकेताग्नि । तृतीय - मृत्यु के रहस्य का उद्घाटन । "आत्मजयी " का नचिकेता एक विचारशील विचार करता है।

- -

4· कठोपनिषद - श्लोक 1: 1-7

"कठोपनिषद " के नचिकेता में यह बात नहीं है । साथ ही "आत्मजयी " का नचिकेता निराश होकर व यम से साक्षात्कार करके भी जीवन के प्रति आस्था-वादी दृष्टिकोण लिये है । " कठोपनिषद " में उसे शाप मिलता है "मृत्युवे त्वां ददामि ।" जबकि " आत्मजयी " में वह एक प्रकार से जीवन की सार्थकता का वरदान पाता है । कवि ने अपने अनेक प्रश्नों -उपप्रश्नों का माध्यम नचिकेता को बनाया है । नचिकेता के अन्दर एक वृहद् जिज्ञासा है और वही उसे सार्थक जीवन के लिए प्रेरित करती है । वह सत्यान्वेषी है - भौतिक सुखों को नकारने वाला तथा चरम सत्य को पाने का अभिलाषी ।

कवि ने " कठोपनिषद् " की इस कथा को अपने अनुकूल ढाला है । "आत्मजयी " में नचिकेता मरता नहीं है बल्कि आत्म हत्या करने के प्रयत्न में मूर्छितावस्था में जल से बाहर निकाल लिया जाता है । इस अचेतावस्था में ही वह स्वप्न देखता है तथा यम से साक्षात्कार करता है । यह प्रसंग उचित जान पड़ता है क्योंकि मनोवैज्ञानिकों की खोजों का निष्कर्ष है कि अचेतावस्था में भी अवचेतन के कार्य व्यापार रुकते नहीं है । अवचेतन मन में नाटक लगातार होता रहता है । यह नाटक चेतन मन के नाटक से प्रबल और प्रभाव में गहरा होता है । यही नाटक नचिकेता पर " हावी " है । वह आरम्भ से ही

जिज्ञासु था कि मृत्यु के उपरान्त क्या होता है । अतिशय चिन्तनशील व्यक्ति अन्तर्मुखी होकर जब घुटन महसूस करने लगता है तब उसे आत्म हत्या के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं सूझता । ऐसी आत्म हत्या भी पाप नहीं है क्योंकि नचिकेता का यह प्रयत्न अकारण बोखलाहट का परिणाम नही है उसके पीछे तर्क का ठोस आधार है । नचिकेता के प्रश्न पिता की मान्यताओं का उल्लंघन करते हैं - इसलिए वह पिता की दृष्टि से विद्रोही है, विधर्मी है । जिन परिस्थितियों में वह जिन्दा है उन्हें समझना चाहता है और पिता से कहता है -

"मुझे भी त्याग कर
मुझसे श्रेष्ठतर कुछ मांगो ।"[5]

उसका बारम्बार आग्रह वाजश्रवा के क्रोध को भड़का देता है विषाद के चरम क्षण में नचिकेता वह वज्र वाक्य सुनता है : "मृत्यवे त्वां ददामि ।"निराशा के इस एकांकी क्षण में नचिकेता " आत्मा को व्यय करके रीत जाने " के बोझिल अहसास से त्रस्त हो जाता है । वह उस दुविधा के सहारेनही रह सकता जो न मृत्यु है न जीवन बल्कि एक बड़ा छल है । कहाँ जाऊँ ? किसे पाऊँ ? -जैसे प्रश्न उसे बेचैन किये है । अन्तत: निराशा की चरम अवस्था उसे आत्मघात की ओर उन्मुख करती है । वह वास्तव में मरता नहीं है मरने से पहले ही पानी से बाहर निकाल लिया जाता है लेकिन अचेतावस्था में । इसलिए अचेतावस्था में वह स्वप्न

5• आत्मजयी - पृ0 - 13

देखता है - यम से साक्षात्कार । जिज्ञासु नचिकेता का यमराज से आग्रह है कि " वही विमूढ़ व्यर्थ जीवन फिर ?" यह उसे स्वीकार्य नहीं है । इस " छीनाझपटी", "दुनियादारी" में उसे विश्वास नहीं है और वह चाहता है-

" मिल सके अगर तो

एक दृष्टि चाहिए मुझे -

जीवन बच सके

अँधेरा हो जाने से - बस ।" [6]

अन्ततः नचिकेता ने " अडिग ज्ञान का वरण किया " और जाना कि " केवल शरीर के भागों को दोहराने से पूर्णता नहीं मिलती ।" नचिकेता की आँखों में " अक्षय जीवन की ललक " देखकर उसे " आत्म शक्ति " और "आत्मा की स्वायत्तता" का बोध देकर यमराज उसे मृत्यु-मुख से प्रमुक्त कर देते हैं -

"मैं तुझको जीवन फिर से वापस देता हूँ ।·····

तू यही समझ कर जी

तुझको फिर मुझ तक वापस आना है ।

तू मेरा है ।" [7]

- -

6· आत्मजयी पृ0 - 68

7· आत्मजयी - पृ0 - 81

"कठोपनिषद " का आत्मविद नचिकेता यम से उपदेश पाकर रागादि तथा मृत्यु बंधन से मुक्त हो गया था -

" ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूहि मृत्यु ।"[8]

"आत्मजयी " का " मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्" नचिकेता स्वप्न से जागने पर "आत्मविद " होता है फिर क्रमशः सृष्टिबोध, सौन्दर्य बोध, शांति बोध, और मुक्ति बोध का अधिकारी बनता है । कृति के इस अन्तिम अंश में "कठोपनिषद के आख्यान से आगे विस्तार है । मृत्यु तक पहुँचकर, जीवन की ओर लौटे नचिकेता का अनुभव है :-

" इस विभ्रम से विशिष्ट
एक और दुनिया है
केवल निर्माता की
जिसमें हम बार बार नये जन्म लेते हैं
झुठलाएं जीवन को फिर साबित करते हैं
कोरे भविष्यों कोसंस्कार देते हैं ।"[9]

- -

8· कठोपनिषद, द्वितीय अध्याय, तृतीय वल्ली, 18 श्लोक ।

9· आत्मजयी - पृ0 - 12

"कठोपनिषद " में सर्वथा अनुपस्थित " स्वप्न" का उल्लेख "आत्मजयी" में हुआ है ।

कवि ने कहा है कि मैंने " आत्मजयी " में पहले और तीसरे वरदान के आधार पर ही जीवन सम्बन्धी कुछ धारणाओं पर विचार किया है । अर्थात् "आत्मजयी " विचार काव्य है । इसमें दो प्रश्न महत्व के प्रतीत होते हैं - मृत्यु और अस्तित्व वादी चेतना का । प्राय: मृत्यु को निराशा वादी नियति के रूप में स्वीकारा गया है, किन्तु कुंवर नारायण ने इसे दूसरे ही बिन्दु पर प्रस्तुत किया है । कवि का दृष्टिकोण यह रहा है कि मृत्यु का दर्शन या उसके सम्बन्ध में चिन्तन करने से आवश्यक नहीं कि निराशा ही उत्पन्न हो - कोई अन्य दृष्टिकोण भी उठ सकता है । मृत्यु की अनिवार्यता तो स्वयंसिद्ध है, किन्तु मृत्यु ही तो जीवनदायिनी है । नचिकेता मृत्यु की भयंकरता का केवल अनुभव करता है । वह स्वयं को काल को दे देता है इसलिए वह काल का स्वर सुनता है । काल ही सत्य है वही चिरंतन है, हम स्वयं को काल को देकर ही काल पर विजय प्राप्त करते हैं, मृत्यु को पहचान कर ही जीवन सार्थक बनाने का प्रयत्न करते हैं । यह सत्य है कि जीवन की पूर्णानुभूति के लिए किसी ऐसे मूल्य के लिए जीवन आवश्यक हो जाता है जो व्यक्ति यह संकेत ही मृत को जीने का नया अर्थ समझा सकता है । मृत्यु से डरने वाले या उसे न पहचानने वाले अपने

निजी जीवन को सुख-सुविधा से पालने मे लगे होते हैं। नचिकेता अपने पिता के इसी सुख-सुविधा पूर्ण जीवन को अस्वीकार कर एक सत्य खोजी मार्ग अपनाता है जिसमें आत्म हत्या का प्रयास भी हैं, निराशा की चरम स्थिति भीहैकिन्तु उसी बिन्दु से जीवन की सार्थकता की गहरी तड़प की उत्पत्ति भी है -

" विश्वासों से / या किसी विचित्र तर्क से ही
जीने को कोई अर्थ दिया जा सकता है
इतना विराट / इतना सुन्दर / इतना असह्य
जो शायद केवल मृत्यु तले
संदिग्ध क्षणों के बीच जिया जा सकता है।
यदि पीना ही हो जहर
उसे दो तरह से पिया जा सकता है
डरते डरते / मरने से पहले ही मरकर।
या उसी चरम भय से कोई अन्धा बल पा
जीवन से भी ऊपर उठकर . . . .।"[10]

निःसन्देह जन्म जीवन, अस्तित्व और मृत्यु की चिंताए मनुष्य की

10· आत्मजयी,

आदिम चिन्ताओं में से रही है और भारतीय चिन्तनधारा की सर्वमान्य विशेषता यही है कि उसने सदैव अपने आपको वास्तविक जीवन के साथ संयुक्त रखा है । उन्नीसवीं शताब्दी के महान रहस्यवादी दार्शनिक शोपेन हावर का यह मत द्रष्टव्य है :-

" उपनिषदों के प्रत्येक वाक्य से गहन, मौलिक और उदात्त विचार उदित होते हैं और सभी कुछ उच्च, पवित्र एवं गंभीर भावना से व्याप्त है । समस्त विश्व में अन्य कोई अध्ययन इतना हितकर और उन्नयनकारी नहीं है जितने उपनिषद / वे उच्चतम प्रज्ञा की सृष्टि है । कभी न कभी वे मानव मात्र के विश्वास बनेंगी ।"[1]

अतः " आत्मजयी " की रचना ठीक " उपनिषद " की भूमि पर नहीं हो सकती थी । चेतना, शिल्प, अवधारणा आदि सभी स्तरों पर आत्मजयी को भिन्न होना ही था, अन्यथा पिष्टपेषण मात्र बनकर रह जाता । न उसमें संस्कृत भाषा की प्रवहमानता सम्भव थी, न महर्षियों की अन्तर्भेदी दृष्टि और न कालजयी चिन्तन की गरिमा ही । उपनिषदों में भावनाओं को स्फुरित एवं आत्मा को उद्बुद्ध करने वाली अपूर्व भाषिक क्षमता है । उनके हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद इसका सम्यक् परिचय नहीं दे सकते , क्योंकि वे इन गुणों से बहुधा शून्य

1. ब्लूम फील्ड : " रेलिजन आफ दि वेद " पृ0 - 55

ही है । " आत्मजयी " जैसी सर्जनात्मक कृति अवश्य इस दिशा में कुछ प्रयत्नशील हो सकती थी, पर " उपनिषद " के चिन्तन मनन अथवा विवरण को रूपांतरित करने के प्रयास ने " आत्मजयी " को प्राय: शुष्क और सपाट ही बनाया है । यह कृति उन्हीं स्तरों और स्थलों पर उभर उठ सकी है, जहाँ कवि ने मूल इतिवृत्त को झकझोर -तोड़कर, इसे दृढ़ता- पूर्वक पुराणेत्तर सन्दर्भ दिया है ।

चूँकि आत्मजयी प्रतीकात्मक रचना है, अत: इसमें प्रयुक्त पात्र- प्रतीकों पर ही कथा का मूल विन्दु टिका है । नचिकेता तथा वाजश्रवा के बीच का बढ़ता हुआ संघर्ष, नवीन तथा प्राचीन पीढ़ी के मध्य बढ़ता हुआ संघर्ष कहा जा सकता । "नचिकेता " प्रारम्भ में एक परम्पराद्रोही के रूप सामने आता है । वह उस नई पीढ़ी का प्रतीक है जिसमें शाश्वत प्रश्नों के प्रति बैचेनी है और वह उनको अनुचरित मान कर आगे बढ़ने को तत्पर नहीं है । अत: पुरानी पीढ़ी से असहमति के प्रयत्न में तथा पिता द्वारा अपने सिद्धान्तों पर अटल रहने के क्रम नये पुराने का झगड़ा खड़ा हो गया है । नचिकेता विद्रोही प्रतीत होता है क्योंकि उसके प्रश्न पिता की मान्यताओं का उल्लंघन करते हैं तथा वह नई दृष्टि और नये जीवन बोध का पक्षधर बनने के कारण रीति की अपेक्षा तर्क से काम लेता है -

"मेरे पिता / तुम और तुम्हारी दुनिया

एक दूसरे की थकी हुई प्रतिक्रिया में युगों में रूद,

बासी - सी लगती है । सीमित कुछ लोगों तक

तरसायी सी लगती जीवन की अतुल राशि ।

कार्यक्रम, आय-व्यय , रीति - नीति -

सिद्ध नहीं विकृत स्वभावों से निष्काषित

जीने से पहले ही बीती सी लगती है। " [12]

प्रश्नों को धुंधले अस्पष्ट उत्तर से उसे, ऊब होती है । नया जीवन बोध को समझने के लिए समस्याओं के सार्वकालिक, सार्वभौमिक समाधान निकालने होंगे, जो हमारे वर्तमान से सम्बद्ध हो । नचिकेता रूढ़ न बनकर तर्क और विवेक से बात को समझना चाहता है । जहाँ तर्क से , विवेक से सत्य की तलाश होगी, वहाँ असहमति होना स्वाभाविक ही है । पुरानी अन्धविश्वासी पीढ़ी इस पर क्रुद्ध होगी और असहमति प्रकट करने वाले को विद्रोही भी कहेगी । ठहरे हुए जल में दरार डालना कठिन है । तभी ठहरे हुए जीवन मूल्यों के प्रतीक वाजश्रवा से नचिकेता कहता है -

"रहस्यमय कानाफूसियाँ/ पेचीदी मंत्रजाप या गुप्त मंत्रणाएं

यद दान - या अज्ञात वधिकों से कोई अशुभ समझौता

- -

11· आत्मजयी :-:पृ0- 15- 16

पिता/ ये सब कैसे संकेत हैं जो आश्वस्त नहीं करते

ये कैसी स्तुतियाँ हैं, जिनसे पाखण्ड की गंध आती है ?

गलत जीने से / सही बातें गलत हो जाती है ।

सचाइयाँ झूठ लगती / अच्छाइयाँ गुनाह/ धर्म पाप हो जाता

ईश्वर आततायी, / प्यार रोग बन जाता- लोभ भयावह ....."[13]

इसीलिए नचिकेता जीवन को सही सच्चे सन्दर्भों में समझ कर ठीक जीवन जीना चाहता है । जीवन में बाह्य छल से भरा पाखण्ड व्यवस्था को नष्ट कर देता है । धर्म की आड में किया जाने वाला पापपूर्ण कृत्य मानव को विधर्मी बनाता है । नचिकेता विचारशील होने के कारण वह रूढ़ि के चक्रव्यूह का भेदन तर्क, विवेक और ज्ञान के स्तर पर करना चाहता है । यही कारण है कि आज की नयी पीढ़ी जो भविष्य बोध से वलीयत है, अतीत को ढोना नहीं चाहती, को प्रतीकित करता है । उसकी इस चेतना का परिचायक उसका यह कथन है -

"और तुम हमारी ओर - हम जो अभी आने वाले हैं -

संदेह से देखते हो अपना संचय

छोड़ जाने से पहले, क्योंकि हम उसे

तुम्हारे अनुकरण से वृहत्तर कोई विशिष्टता देना चाहते हैं ।"[14]

13· आत्मजयी , पृ० - 6-7

14· आत्मजयी , पृ० - 5

नचिकेता जीवन का पूरा " स्थिति बोध " सजगताओर सतर्कता से चाहता है । उसके चरित्र में " अकेलापन " है । वह स्वयं को अकेला समझता है और यह कटु सत्य भी जानता है कि मृत्यु में आदमी का भागीदार कोई नहीं है । यह एकान्त विवशता कितनी व्यथा पूर्ण है । यह नश्वरता ही मानव की नियति है। भौतिकवादी दृष्टिकोण और आत्मिक दृष्टिकोण की बात भूमिका में भी स्पष्ट की है - " नचिकेता और वाजश्रवा की असहमति तथा वाजश्रवा का क्रोध में नचिकेता को मृत्यु को दे देना न केवल नई और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक है बल्कि उस वस्तुपरक वैदिक तथा आत्मपरक उपनिषत्कालीन दृष्टिकोणों का भी प्रतीक है जिनका एक रूप हम आज के जीवन में भी पाते हैं । एक ओर दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती हुई हमारी भौतिक उन्नति, दूसरी ओर आत्मिक स्तर पर वह घोर असंयम जो इस भौतिक प्रगति को अपने ही लिए अभिशाप बनाए दे रहा है । वैदिक कालीन मनुष्य भी आज की तरह, यद्यपि आज से कहीं अधिक सीमित परिवेश में प्राकृतिक शक्तियों को यज्ञादि द्वारा अपने अनुकूल रखना चाहता था । उसका दृष्टि-कोण मूलत: वस्तुवादी था जिसकी प्रतिक्रिया में ही उपनिषत्कालीन अध्यात्म का विकास हुआ । परोक्ष रूप से मेरे मन में यह साम्य भी था कि वाजश्रवा वैदिक कालीन वस्तुवादी दृष्टिकोण का प्रतीक है और नचिकेता उपनिषत्कालीन आत्मा पक्ष का प्रतीक । [15]

15· कुंवर नारायण, आत्मजयी, भूमिका से उद्धृत ।

भौतिक ठहराव से सन्तुष्ट वाजश्रवा से नचिकेता को गहरी कुढ़न होती है । उसका समस्त विद्रोह उस वस्तुवादी दृष्टिकोण से है जो मृत्यु के आगे उसे सांत्वना नहीं दे पाता है । उपनिषद वेदों से भिन्न दृष्टिकोण अपनाते हैं । जीवन का सच्चा सुख स्वर्ग की अपेक्षा मोक्ष मानते थे । अतएव भारतीय दर्शन में एक महान तार्किक अनुभूत्यात्मक आधार को तर्क के साथ गृहीत किया गया है । जिसमें मृत्योपरान्त भी जीवन को समझने का प्रयास है । नचिकेता के " विषाद" में अस्तित्ववादी चिन्तन का रस पाकर ही काव्य आगे बढ़ा है । वह अमर जीवन मूल्यों की तलाश में निकल पड़ता है । उसके पास तर्क ही तर्क है - विश्वास ढ़ह गया है और रह गयी है केवल अपने अस्तित्व को बनाए रखने की चिन्ता । वास्तव में अपने लिए अर्थ खोजने की चिन्ता अस्तित्व वादी है । पहले अपने अस्तित्व की अनुभूति और तदनन्तर अर्थ पाने का आत्मसंघर्ष - यही व्यवहारिक दर्शन है । भारतीय सन्दर्भ में आत्मबोध परमात्म बोध बन जाता है और अस्तित्व वादी होने से वह आत्मबोध ही रह जाता है । नचिकेता के सामने अस्तित्व की सार्थकता का प्रश्न स्पष्ट उपस्थित है :-

"अस्तित्व एक घातक तर्क भी हो सकता है

एक पाशविक भावना भी - इस तरह

कि युद्ध और कलह जरूरी लगे,

यदि यथार्थ है मृत्यु भी

तो मृत्यु ही यथार्थ हो जा सकती है

इस तरह कि वह जीवन पर छा जावे

और हम उसे रोज के व्यवहार में बोले, दिखाएं फैलाएं

एक स्तर पर

विद्वेष, क्रूरता, हिंसा, बेइमानी

सब कुछ इतना सम्भव है कि स्वाभाविक लगे।"[16]

यह अस्तित्ववादी दृष्टि है जिसकी प्रारम्भिक स्थिति मनुष्य की निस्सहायता में निहित है। मानव जीवन का विषम क्षण मृत्यु है। नचिकेता आरम्भ में परम्परा युक्त "जीवन मूल्यों का विरोध जितना निर्भय होकर करता है, उतना निःशंक वह वाजश्रवा का क्रोध व्यक्त हो जाने के बाद नहीं रह पाता। वाजश्रवा के उस क्रोध भरे कथन में निहित यह जीवन क्रम और आयोजन को मृत्युमूलक मानता है - यह कहकर कि -"मेरी आस्था को बल दो - कहते ही / तुम्हारा हाथ ऊपर उठता है- एक वधओर।"[17] तो इसका उत्तर वाजश्रवा के पास बिल्कुल स्पष्ट है :- मैं तुम्हें भी मृत्यु को देता हूँ। इस नाटकीय बिन्दु पर पहुँच कर हम तेजस्वी नचिकेता को सहसा हतप्रभ हुआ पाते हैं। "उपनिषद " में तो यह प्रसंग नितांत भिन्न पौराणिक

---

16. आत्मजयी, पृ०-7

17. आत्मजयी, पृ०-8

या मिथकीय सन्दर्भ में आगे बढ़ता है, किन्तु " आत्मजयी" में यह नाटकीय संकटारम्भ अपने मूलसंस्कृत वाक्य को सुरक्षित रखते हुए भी, तुरन्त कथा की आगामी स्थितियों का उद्‌घाटन नहीं करता, अपितु एक विस्तृत अन्तर्द्वन्द्व को हमारे सम्मुख खोलता है। कवि ने इस कथन को वास्तविकता की परिधि से हटाकर, कुछ इस रूप में रखा है, मानों वाजश्रवा ने यह वाक्य सचमुच कहा हो न हो, मानों यह स्वयं नचिकेता के ही अति संवेदनशील चित्त की एक प्रतिध्वनि हो। मूल कथा को यह मोड़ दे देना सम्भवतः उसकी घटनात्मकता या बहिर्नाटकीयता को गौण बनाकर, उसमें चिन्तन या दार्शनिकता के तत्वों का समावेश करने के लिए कवि को अनिवार्य प्रतीत हुआ होगा। इसीलिए " वाजश्रवा " खण्ड में ये पंक्तियाँ आती हैं -

"बाहर नहीं है संघर्ष यह।
द्वन्द्व, प्रतिद्वन्द्व
घात, प्रतिघात ....
कहीं अन्दर है।"[18]

नचिकेता स्वयं को इस भाव से मुक्त नहीं कर पाता कि वह एक "अशुभ"

- -

18· आत्मजयी, पृ० - 14

उपस्थिति " है। उसका यह कथन उसके आगामी कृत्य का "पूर्वाभास" जैसा है। यह उसके मन में जटिल होती जा रही। इस ग्रन्थि का पूर्व परिचय देता है कि पिता की आत्मघाती नीतियों का सम्पूर्ण निषेध करने के लिए नचिकेता के सम्मुख अन्ततः एक ही मार्ग शेष बचता है और वह है " आत्महत्या करना। आगामी खण्ड " नचिकेता का विषाद " में नचिकेता का अन्तर्मंथन बढ़ता ही जाता है। खण्ड का आरम्भ एक विचित्र स्वप्न से होता है, जिसमें नचिकेता स्वयं को समुद्र में फेंके गये एक शिशु की भाँति पाता है। वह शिशु प्रलय के झकोरों में तैरते - तैरते युवक बन जाता है और डूबने से बचने के लिए मन्दिर में स्थापित एक देवमूर्ति का सहारा लेता है। अन्त में वह मूर्ति के कंधों पर पाँव रखकर खड़ा हो जाता है मानों " अपने विश्वासों के कंधों पर खड़ा हुआ जीवन का एक हताश बिन्दु हो।[19]

नचिकेता का यह स्वप्न एक तरह का " नाइट - मेयर " अर्थात् दुःस्वप्न है, जिसके बीच में ही उसकी नींद टूट जाती है और वह पुनः अपने वर्तमान एवं अस्तित्व के प्रति चिन्तनरत होता है। " प्रलोभन " खण्ड में काव्य - नायक के सम्मुख अपने अन्तर्द्वन्द्व से मुक्ति पाने का एक विकल्प प्रस्तुत होता है, और वह है - प्रीति- जो मानों उसकी कामना पूर्ति का एक अन्य पथ उसके लिए खोलती है।

---

19. आत्मजयी, पृ० 27

वह उसकी ओर बड़ी तीव्र गति से बढ़ता है । प्रेम भी उसे एक स्तर पर उसी पाशविकता, ऐतिहासिकता, एवं वस्तुवाद का प्रतिरूप ज्ञात पड़ता है, जिसके विरोध का उसने संकल्प किया था । निश्चय ही मानव प्रीति में शक्ति है, किन्तु वासना उसे संकुचित बनाती है और प्रेम को रिक्त करती सी प्रतीत होती है । अपनी तत्कालीन मानसिक स्थिति में नचिकेता को प्रीति का यह पक्ष और भी प्रताड़ित करता है इसलिए वह शरीर सुख को भी राज सुख का ही एक अन्य रूप मानकर, जीवन से अपने आपको जोड़ने वाले इस अन्तिम विकल्प को भी त्याग देना चाहता है । यह भाव यशोधरा के प्रति सत्यान्वेषी, गौतम बुद्ध की प्रतिक्रिया जैसा भाव है । फलत: नचिकेता चाहता है -

" इन वेदनाओं की तहों तक
मुझको उतरने दो
नहीं - ये विश्वास अस्वीकार
केवल सरलताएं ? अभी
तो अग्राह्य ।
कोमल आश्वासन - कठिनतम संदेह ।" [20]

20· आत्मजयी , पृ० - 34

इस प्रकार राजपाट, पिता के संरक्षण और प्रिया के आश्वासन जैसे सभी जीवनाधारों से वंचित हो जाने पर, नचिकेता अपने अस्तित्व की समस्या का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने को विवश होता है। इसी विन्दु पर हम उसे "मैं क्या हूँ।" शीर्षक खण्ड में पाते है। ऐसा नहीं जान पड़ता कि वह बिल्कुल अकेला है, क्योंकि " अनुभव करता हूँ इन सबके पीछे / कहीं कोई वृहत्तर योजना / जिसमें / मानों किसी अज्ञात हितैषी का हाथ है।"[21] यह " अज्ञात हितैषी" ही संभवत: " पूर्वाभास" खण्ड में उल्लिखित " अस्पष्ट ईश्वर " है। इस खण्ड में, आगे चलकर, वह अज्ञात हितैषी भी मानों नचिकेता का साथ छोड़ देता है, क्योंकि हितैषी जिस जीवन के लिए हितकर हो सकता था, वह जीवन भी अब नचिकेता का अपना नहीं रहा। " आत्म हत्या का प्रसंग " खण्ड में नचिकेता का मानसिक विक्षोभ चरम सीमा पर पहुँच जाता है। उसके सम्मुख आत्म हत्या के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचता। इसके पश्चात उसे कोई भय नहीं व्यापता-अन्तिम अंश में कवि सूचित करता है -

"सहसा नचिकेता को
समय का आभास जाता रहा
अन्तिम क्षणों में, बस,
जल का हल्का, सा कोलाहल
. . . ।"

21·आत्मजयी, पृ0- 35

कानों में आता रहा ।"[22]

इसके अनन्तर, "वाजश्रवा" नामक छोटे से खण्ड में नचिकेता की मृत्यु की आंकाक्षा से पीड़ित वाजश्रवा की व्यथा की संक्षिप्त चित्रण है । उसकी इस ग्लानि का भी किंचित आभास मिलता है । कि वह स्वयं अपने पुत्र की मृत्यु का कारण बना है । उसे प्रतीत होता है ।-

" जैसे मर्मान्तक एक चीख दीवारों तक में गड़ जाय ।
जैसे सदैव के लिए स्याह परदा दर्पण पर पड़ जाय ।"[23]

परन्तु वाजश्रवा वस्तुवादी है और सम्भवतः इसीलिए कर्मठ और व्यवहारिक भी, अतः " सदैव के लिए स्याह परदा " पड़ जाने की अपनी आशंका के बावजूद वह नचिकेता के उपचार में प्रवृत्त हो जाता है । तथापि कवि ने वाजश्रवा के इस प्रयत्न शील पक्षपर यहाँ इस खण्ड में कोई प्रकाश डालना उचित नहीं समझा है । "यम" खण्ड विशेष रूप से मार्मिक है । क्योंकि स्थूल - सूक्ष्म के बीच तरल भाव से आलोड़ित कथा सूत्र को कवि ने इस खण्ड में असंदिग्धरूप से सूक्ष्म के साथ जोड़ दिया । यम को नचिकेता " खंडित छाया ", "लुंज-पुंज आकृति " "साकार एक

- -

22· आत्मजयी , पृ0 - 45

23· आत्मजयी , पृ0 - 46

बीतापन" आदि कितने ही भयावह रूपों में अपने सम्मुख पाता है । परन्तु एक आभास मिलता है कि आत्महत्या का प्रयास वास्तविकता न होकर नचिकेता की मनो-यात्रा का ही एक अंधकार पूर्ण पड़ाव था -

" ऐसा तो नहीं कहीं यह सब
मेरे ही मन में छिपा चोर
मेरा भय हो ?
कोई विषाक्त मानसिक रोग
अपना विकार जिसको मैंने ही उगला हो ।"[24]

इसी प्रकार उसके मन में यह प्रश्न भी उठता है कि जिसे उसने पिता का यह प्रश्न भी उठता है कि कल्पना हो । मनोविज्ञान शास्त्री मानते हैं कि मनोरोगों के उपचार की प्रक्रिया उसी क्षण से आरम्भ हो जाती है जब रोगी अपनी मानसिक ग्रन्थियों के मूल को देखता है । उसके बाद गाठें धीरे - धीरे खुलने लगती है । "आत्मजयी " के इस अंश में मनो विदलन के चरमोत्कर्षपर पहुँचे हुए नचिकेता पर भी यही बात लागू होती है । अपने विषय में इस तथ्य से अवगत होते ही नचिकेता की यात्रा प्रारम्भ होती है । ऐन्द्रिक आभासों से जीवन कृतार्थ नहीं होता है ।

- -

24· आत्मजयी " पृ0 - 62

सांसारिक वस्तुओं के आकर्षण से आत्मा को बंधन मिलता है । दुनियादारी का यह घातक रूप उसे अप्रिय है । सांसारिक विडम्बनाओं से उसमें यथार्थ दृष्टि का उदय होता है -

"हम जीते आपा - धापी और दबावों में,
हम चाहें जितना पायें, कम ही लगता है
कुछ ऐसी रखी है तरकीब स्वभावों में ।

यह दुनियां यह भविष्य / तुमको सादर वापस ।
मिल सके अगर तो / एक दृष्टि चाहिए मुझे -
जीवन बच सके / अंधेरा हो जाने से, - बस ।" [25]

नचिकेता जीवन के ज्ञान का वरण करता हुआ मौन में डूब जाता है । जीवन उसे दिव्य शक्ति, अनवरत खोज अनथक प्रयास, मुक्तिबोध प्रतीत होता है। "मुक्तिबोध" वस्तुतः एक निरन्तर गतिशील, आवर्तन- विवर्तन युक्त प्रक्रिया है । जिस प्रकार मृत्यु का उसी प्रकार मुक्ति का भी बोध व्यक्ति को बार बार करना पड़ता है । इसीलिए आत्मजयी की अन्तिम पंक्तियां अत्यन्त

- -

25· आत्मजयी, पृ० - 68

सारगर्भित है :-

"क्योंकि इनके पूर्व - निश्चित परिणामों में

घटित होकर भी मरा नहीं

बार बार अक्षुण्ण लौट आया हूँ।

क्योंकि इन समाधानों के बीच

चौंक - चौंक कर पूछता रहा हूँ

जीवन क्या है ?

मृत्यु क्यों ?

मुक्ति कैसे ?

ईश्वर कहाँ ?"[26]

इस प्रकार नचिकेता सूक्ष्मतम " मानवीय तत्वों की खोज में लीन मानव चेतना के संस्कार का प्रतीक " सिद्ध होता है। "जर्जरित सभ्यता के इस युग में" अनेक विरोधाभास, असंगतियाँ और विकृतियाँ है। युग जीवन से संपृक्त नचिकेता इनका संवेदन गहराई से करता है। नचिकेता समसामयिकता के भाव- बोध के गहनतम स्तरों को ही खुलापन नहीं देता है। वरन् उसमें इस युग की जटिल-विराट

- -

26· आत्मजयी , पृ० - 100

समस्याओं के प्रति भी साहसिक जागरूकता है । चुक गये जीवन मूल्यों का भी उसे अहसास है तथा मानवीय वस्तुतः सारे जीवन का मौलिक भाव-बोध प्रस्तुत करता है । इसी स्थिति में प्राचीन मूल्यों का विपर्यय भी दिखायी देता है। नचिकेता जीवन से विरोध नहीं करता है, अपितु उसका विरोध उस वस्तुवादी दृष्टि कोण से है जो मृत्यु के समक्ष कोई सन्तोष जनक हल नहीं दे पाता है । इस प्रकार नचिकेता जीवन के प्रति असम्मान व्यक्त नहीं करता है । बल्कि उसकी सार्थकता के बिन्दुओं की ओर कदम बढ़ाना चाहता है । यदि ऐसा न होता तो वह बाद में जीवन कैसे स्वीकार कर पाता ? वह एक अस्तित्ववादी पात्र है जो अनेक त्रासद सन्दर्भों व विसंगतियों में भी जीवित रहता है । मृत्यु का साक्षात्कार कर जीवन की ओर लौटना इस बात का प्रमाण है कि वह अस्तित्व वादी चेतना का वाहक है । यद्यपि भारतीय दर्शन औरअस्तित्ववाद को मिलने का प्रयास या समानान्तर चलाने का उपक्रम कुंवर नारायण ने किया है, किन्तु यह संभव नहीं हो सका है क्योंकि दोनों में अंतर है । भारतीय दर्शन में मृत्यु को शांति प्रदायिनी मानकर जीवन की समाप्ति समझा गया है जबकि अस्तित्व वादी दर्शन में मृत्यु जीवन प्रदायनी है - विवेकशील मानव के अस्तित्व को प्रमाणित करने वाली स्थिति है । मृत्यु -बोध ही मानव को जीवित रहने

की प्रेरणा दे सकता है - "आत्मजयी " का नचिकेता इसी प्रकार का पात्र है। वह मृत्यु को निराशा का प्रतीक नहीं मानता, अपितु जीवन को नया अर्थ देने वाली जीवन्त चेतना मानता है । "आत्मजयी " में जिस सार्थक जीने की बात कही गयी है वह भी अस्तित्ववादी चेतना का ही परिणाम है । सार्थक जीवन का तात्पर्य ही यह है कि मृत्यु के प्रति सतर्क रहकर जीवन में प्रवेश करना और हर परिस्थिति में अपने व्यक्ति -स्वातंत्र्य और अस्तित्व को प्रमाणित करना ।

संवेदात्मक स्तरों पर कृति मानवीय मूल्यों को वृहत्तर आयामों में प्रतिष्ठित करती है । नयी कविता की लगभग सभी प्रवृत्तियों को किसी न किसी रूप में आत्मसात करने के कारण ही यह चर्चित कृति है । "यह एक चिन्तन प्रधान काव्य है इसलिए इसमें परिस्थितियों, प्रसंगों और व्यापारों की ऊष्मा गति और स्पंदन के स्थान पर एक ठंडी चिंतनशीलता है । इसके बिम्ब मूलतः बौद्धिक है ' वे जीवन से सीधे उठाए गये प्रतीतनही होते, जहाँ वे जीवन से गये हैं वहाँ वे भी व्यापार या प्रसंग से विच्छिन्न होने के कारण और नचिकेता के एक विशेष प्रकार की वैचारिक अकुलाहट मात्र से जुड़े होने के कारण हमारे भीतर कोई जीवन नहीं उभारते, जीवन का बोधउभारते हैं । इसलिए अपने आपमें अर्थात् अलग - अलग बिन्दुओं पर ये बिम्ब जीवन के बहुत ताजे और गहरे अनुभवों से से स्पंदित दिखाई पड़ते हैं किन्तु नचिकेता की मानसिक चिन्तना के सन्दर्भ

से जुड़कर आपस में उलझ जाते हैं और स्थिर हो जाते हैं, इसलिए "आत्मजयी" जीवन के बीच लगाता हुआ भी दुरूह है ।"[27] आधुनिक जीवन के नये सन्दर्भों को बौद्धिक जागरूकता में प्रस्तुत करना ही कवि को इष्ट रहा है । यह बौद्धिक जागरूकता आज के जीवन गुंथी वैज्ञानिकता का अंग रही है । नचिकेता का चिंतन इसी विवेक जन्य वैज्ञानिकता का परिणाम है जो कृति में बौद्धिक बिम्बों के ही द्वारा ही व्यक्त किया गया है । कवि का बौद्धिक आधार कृति के कार्य व्यापारों में संम्पृक्त होकर ही उभरा है जिससे उसकी संगति भी सिद्ध होती है। बौद्धिक आधार की स्थिति पर नयी सर्जना है जो कहते है कि बुद्धि के बढ़ते वैभव के साथ मानव -ह्रास हुआ है । मैं ऐसा नहीं मानता - नहीं मान सकता - मेरी प्रतिज्ञा ही इस परिणाम को असम्भव बना देती है, क्योंकि मेरे निकट नीति ज्ञान विवेक स्वयं बुद्धि का वैभव है । मैं यही कहूँगा कि साहित्य की यह नयी प्रवृत्ति नैतिक शिथिलता या नैतिक ह्रास की नहीं नैतिक बोध की परिपक्वता की सूचक है ।"[28] इस दृष्टिकोण से देखने से आत्मजयी का बौद्धिक आधार स्पष्ट हो जाता है और उसका नैतिक बोध भी अपनी विशिष्ट सार्थकता दिखाई

- -

27· डा० राम दरश मिश्र - आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक सन्दर्भ पृ० - 180

28· " अज्ञेय " आलोचना - अंक - 9, पृ० - 131

देता है ।

परन्तु मूल प्रश्न यह उठता है कि आत्मजयी की मूल संवेदना क्या है? तथा आत्मजयी क्या वस्तुतः आत्मजयी है इस विवेचन के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि " आत्मजयी " विसंगतियों के बीच संगति व अनास्था के बीच आस्था की पुनर्प्राप्ति की कहानी नचिकेता के माध्यम से घटित और पल्लवित होती है । कृति का मूल प्रतिपाद्य यह है कि जीवन में सुखोपलब्धि सत्य नहीं- सार्थकोपलब्धि सत्य है । वैयक्तिक सुख सुविधाओं के लिए जीना जीवन का चरम लक्ष्य नहीं हो सकता है और विचार-शील मानव के लिए तो कदापि नहीं । पूर्णानुभव के निमित्त किसी वृहद् मूल्य का अन्वेषण आवश्यक है जो पार्थिव ऐश्वर्यों की भूमिका को पार करता हुआ अपना अस्तित्व प्रमाणित करे व्यक्ति स्वातन्त्र्य को निरूपित करे । ऐसा प्रतीत होता है कि " सार्थक " शब्द का प्रयोग कवि ने जान-कर किया है । वस्तुतः "सार्थक जीवन" शब्द का तात्पर्य आज के सन्दर्भ में व्यक्ति स्वातन्त्र्य और अस्तित्व के प्रति जागरूकता से है । वर्तमान में मनुष्य जीवन की सार्थकता ही इस बात में समझना है कि वह भीड़ में भी पहचान लिया जाय, स्वातन्त्र्य उसकी प्रमुख चेतना हो और दूसरे लोग उसके अस्तित्व को स्वीकारें । तभी उसका जीवन सार्थक है । यही नचिकेता के माध्यम

कवि ने कहने का प्रयत्न किया है । कवि ने नचिकेता की अचेतावस्था में ही यम से उसका साक्षात्कार कराया है अर्थात् वह अचेतावस्था में स्वप्न देखता है । यदि हम यह माने कि अचेतावस्था का मनोविज्ञान वही होता है जो "आत्मजयी" में दिखाया गया है तो क्या अचेतावस्था में व्यक्ति चिन्तन की इतनी गहरी और श्रृंखलित बातें सोच सकता है । यदि इसेमात्र स्वप्न माना जाये तब भी समस्या यथावत बनी रहती है । स्वप्न तो अचेतन मन के असम्बद्ध प्रतीक होते हैं । स्वप्न के माध्यम से एक सुश्रृंखलित विचार प्रवाहनही चल सकता । उसमें आत्मा और ज्ञात बोध की बात भी नहीं हो सकती । स्वप्नांत के बाद वाले अंश तो ऐसे लगते हैं जैसे नचिकेता को स्वप्न में कोई एक संश्लिष्ट जीवन- बोध न प्राप्त होकर अलग अलग सृष्टि बोध ,सौन्दर्य बोध, मुक्ति बोधप्राप्त हुआ हो ।

नचिकेता " आत्मजयी " इस अर्थ में है कि वह मृत्यु का सही अनुभव करके जीवन को जीत लेता है तथा अपने अस्तित्व को प्रमाणित कर देता है । साथ ही निराशा विसंगतियों और विकल्पों को विजित करके व्यक्ति -स्वातन्त्र्य को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार व्यक्तित्व के प्रति जागरूकता और अस्तित्व की सार्थकता की अनुभूति ही उसे शांति लाभ की ओर ले जाती है । मृत्यु चिन्तन जो नई पीढी की विशेषता है , नचिकेता के माध्यम से व्यक्त हुआ है । "मृत्यु"

जो निराशा की प्रेरिका है, इस काव्य में स्वस्थ मूल्यों की ओर बढ़ने का प्रस्थान बिन्दु है । "आत्मजयी " नाम में भी इस स्वस्थ दृष्टि का उन्मेष है । कुंवर नारायण का प्रतिपाद्य यह है कि निराशा, विसंगति, घुटन और थका देने वाली स्थितियों में भी आज का मनुष्य हताश नहीं है तभी तो उसमें एक अच्छी तलाश के साथ जीने की भावना मौजूद है । यह आधुनिक संवेदना है जिसे परम्परा से जोड़ने का प्रयत्न किया गया है । ठीक उसी प्रकार जैसे उपनिषद् और अस्तित्व-वाद को मिलाने का साहस कवि ने किया है । छायावादोत्तर सर्जना में यह कृति जटिल तथा दुरूह होते हुए भी चिन्तन की बड़ी उपलब्धि है । यह शरीर पर आत्मा की, नश्वर पर अविनश्वर की, मृत्यु पर जीवन की विजय का उद्घोष है । इसमें अनास्था, कुंठा, हताश भावना और आत्म-हत्या सम्बन्धी मूल्यों को झूठा और खोखला सिद्ध कर दिया गया है । सार्त्र और कामू के दर्शन की तुलना में इसमें भारतीय अध्यात्म-वाद की श्रेष्ठता स्वीकार की गयी ।

xxxxxxxx

उर्वशी

रामधारी सिंह "दिनकर"

दिनकर आधुनिक युग के सिद्ध काव्य शिल्पी हैं । उन्होंने शास्त्रीय एवं प्रचलित मानों को आधार बनाकर तथा ऐतिहासिकता एवं पौराणिकता का पुट देकर अनेक काव्यों का प्रणयन किया है । उनकी काव्य धारा नगराज हिमायल से प्रवाहित होने वाली पुनीत भागीरथी की भाँति भारतीय संस्कृति के कूलों को सिंचित करती हुई जीवन के महासागर में विलीन हो गयी है । कवि ने पुराकालीन ऐतिहासिक गौरव गरिमा से लेकर अद्यतन भारत के इतिहास की स्निग्ध चाँदनी में विहार किया है । उनके विचारों में उत्तेजना है, वाणी में अदम्य पौरूष एवं ओज है । तो नव्य के प्रति सुष्ठु चाह भी है । वे युग चिन्तक थे । इतिहास से दिव्यतर समाधान एकत्र करके सम्प्रति युग की समस्याओं का निराकरण करने में दिनकर प्रवीण थे ।

हिन्दी महाकाव्य - सृजन परम्परा के अन्तर्गत " उर्वशी " का प्रकाशन एक अभूतपूर्व घटना है ।"उर्वशी" दिनकर की एक बहुचर्चित नाट्य काव्योपलब्धि है । इस सर्वोत्तम कृति को राष्ट्र के सर्वोच्च पुरस्कार ज्ञानपीठ से सम्मानित होने का गौरव प्राप्त हुआ । यह एक ऐसी अद्भुत कृति है जिसने राष्ट्रभाषा हिन्दी

को गौरव प्राप्त हुआ । यह एक ऐसी अद्भुत कृति है जिसने राष्ट्रभाषा हिन्दी को गौरव प्रदान कर समालोचकों, मनीषियों और दार्शनिकों से भूरि- भूरि प्रशंसा प्राप्त की है वहीं इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया भी हुई है । सन् 1961 में प्रकाशित यह ग्रन्थ कवि की काव्य विकास क्रम से उद्भूत किसी एक प्रवृत्ति की देन नहीं है , अपितु समष्टि रूप से उनकी सम्पूर्ण काव्य प्रवृत्तियों का श्रेष्ठ समन्वय है । जहाँ आलोचकों ने इसकी गणना "दशाब्द " (1961-71) की सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्य कृतियों " में की है वहीं कुछ आलोचकों को इसमें कुल मिलाकर " अनावश्यक और अर्गल की मात्रा अधिक दिखाई देती है । विद्वानों ने इसके बारे में यहाँ तक कहा न भूतो न भविष्यति । "उर्वशी " में श्रृंगार की सघनता है इसी कारण इसे दार्शनिक रचना भी कहा गया है । कवि के समक्ष काम और प्रेम की समस्या थी और दर्शन एवं मनोविज्ञान के द्वारा इस समस्या का उद्घाटन " उर्वशी " के कवि का उद्देश्य रहा है ।

" उर्वशी " का प्रकाशन कामायनी के पश्चात की सबसे महत्वपूर्ण घटना है । " उर्वशी " महाकाव्य ने आधुनिक हिन्दी काव्य की "अध्यात्म - प्रबन्धत्रयी " में विशिष्ट स्थान बनाया है वह निर्विवाद है ।

भाव-भूमि काम ही है तथा स्त्री एवं पुरुष उसके दो प्रमुख ध्रुव हैं। यह ज्ञात होना आवश्यक है कि उर्वशी-कार को काम का कौन सा रूप स्वीकार्य है तथा वह काम के दो विपरीत ध्रुवों (स्त्री/पुरुष) को किस प्रकार और किस स्वरूप में एक रूप एक भाव में ध्यान मग्न कर उत्ताप लहरों में बांधने में समर्थ हुए हैं ? यही उर्वशी की की विषय वस्तु है। उर्वशी की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसकी रचना का इतिवृत्तात्मक आधार वैदिक पुराख्यान होते हुए भी उसमें वर्तमान युगीन जीवन की चेतना का महाघोष है। दिनकर जी वर्तमान के वैतालिक हैं। प्रेरणा उन्हें वर्तमान से मिलती है परन्तु इतिहास और परम्परा का मोह के कारण वे अतीत का अंचल छोड़ने में असमर्थ रहते हैं।

दिनकर जी का कथन है, " महाकाव्य तभी लिखा जाता है जब युग की अनेक धाराएं वेग से बहती हुई किसी महा-समुद्र में मिलना चाहती हैं। जब ऐसी अनेक धाराएं वेगवती प्रवाह में होती हैं तभी महाकाव्य की रचना का समय आता है और जो कवि उनके महामिलन के लिए सागर का निर्माण कर सकता है, वही महाकाव्य लिखने का अधिकारी होता है। महाकाव्य की रचना मनुष्य को विकल करने वाली अनेक भाव धाराओं के बीच सामंजस्य लाने का प्रयास है महाकाव्य की रचना समय के परस्पर विरोधी प्रश्नों के समाधान की चेष्टा है जब परम्परा

से आने वाले महान प्रश्नों और भावों की अनुभूति में परिवर्तन होता है तब मनुष्य का संस्कार भी परिवर्तित होने लगता है तथा इस परिवर्तित संस्कार को चित्रित करने के लिए महाकाव्य लिखे जाते हैं।"[1] इस महाकाव्य में कवि ने उर्वशी तथा पुरूरवा के प्राचीन आख्यान को एक नये अर्थ से जोड़ना चाहा है। पुरूरवा और उर्वशी अलग - अलग तरह की प्यास लेकर एक दूसरे के करीब आए हैं। पुरूरवा धरती-पुत्र है और उर्वशी देवलोक से उतरी हुई नारी है वह सहज निश्चित भाव से धरती का सुख भोगना चाहती है। पुरूरवा के भीतर देवत्व की तृषा है इसलिए मर्त्यलोक के नाना सुखों में वह व्याकुल और विषण्ण है।

वस्तुतः पुरूरवा और उर्वशी का प्रेमाख्यानक अत्यन्त प्राचीन है। इसकी कथा ऋग्वेद, ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणों में उल्लिखित है। ऋग्वेद में पुरूरवा ऋषि एवं उर्वशी देवता है। इनकी कथा सर्वप्रथम मत्स्य पुराण में व्यवस्थित रीति से वर्णित हुई है। इसके अनुसार पुरूरवा इन्द्र के मित्र थे। एक बार केशी दैत्य से उन्होंने उर्वशी की रक्षा की जिससे वह उन पर मुग्ध हो गयी। पद्म पुराण के अनुसार उर्वशी की उत्पत्ति कामदेव के उरू से मानी

- -

1· दिनकर - अर्द्ध नारीश्वर पृ० - 46

है । जिसे गन्धमादन पर्वत पर विष्णु की तपस्या भंग करने के लिए कामदेव ने निकाला था । इसी प्रकार दूसरी धारणा यह रही कि उर्वशी नारायण के ऊरू से निकली है । "उर्वशी " नाम की यही अन्वर्थता है - " उरून् महतोऽपि अश्नुते दया प्नोति वशी करोति, इति उर्वशी ।" व्याडि का भी यह मत है - "उर्वशी तु हरेः सव्यमूरू भित्वा विनिर्गता" अर्थात् नारायण के ऊरू का भेदन करके निकलने से वह अप्सरा उर्वशी कहलाई । इस तरह समुद्र मंथन और " भागवत " वर्णित नर नारायण के तपश्चरण की कथा से भी उर्वशी का सम्बन्ध जोड़ा जाता है । कवि कालीदास ने पुरूरवा उर्वशी के वैदिक - पौराणिक प्रेमाख्यानक में अपनी मौलिक नाट्यमति के माध्यम से आमूल परिवर्तन किया तथा कथानक का ऐसा उपबृंहण किया कि सम्पूर्ण प्रेम कथा उनकी मौलिक कथा सी लगती है । कालिदास ने पुरूरवा तथा उर्वशी की सनातन कथा को अपनी नाट्य एवं काव्य प्रतिभा के माध्यम से अद्भुत रूप में प्रस्तुत किया है । दिनकर जी ने अपने काव्य में कथा का मूल रूप कवि कुल गुरू कालीदास की " विक्रमोर्वशीयम् " से ग्रहण किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने महर्षि अरविन्द की उर्वशी" से भी प्रेरणा ली है । अरविन्द जी वर्तमान युग के श्रेष्ठ तत्व चिन्तक थे । उन्होंने उर्वशी को जीवन-ज्योति के रूप में स्वीकार किया है जिसके विलुप्त हो जाने से पुरूरवा विक्षिप्त हो जाते हैं । वह

हिमालय की उपत्यका में जाकर निःश्रेयस का अन्वेषण करता है ।

योगिराज अरविन्द की उर्वशी का पुरूरवा के साथ विलास अलौकिक है । वे अंग संज्ञा से पार शाश्वत अलौकिक रस ग्रहण करते हैं । उनकी उर्वशी रहस्य चिन्तन से परिपूर्ण है ।

इसी प्रकार रवीन्द्र नाथ ठाकुर की " उर्वशी " पर भी विचार कर लेना चाहिए । दिनकर की उर्वशी में जगत और जीवन का स्पन्दन अधिक है साथ ही अप्सराओं की स्वर्गीयता भी । वह विश्वप्रिया का प्रतीक होने के साथ एक व्यक्ति की प्रिया भी है जो गर्भ धारण कर माँ बनती है । इस तरह वह सविशेष और निर्विशेष, सांसारिक और स्वर्गीय - दोनों है । किन्तु ठाकुर की " उर्वशी " स्वर्गीया है, अप्सरा और विश्वप्रिया है । वह निर्विशेष एवं अमूर्त है । वह सबकी है इसलिए किसी की नहीं है ।"[2] रवीन्द्र की उर्वशी विशेषणों से युक्त है । वह नन्दनवासिनी, सुन्दरी, रूपसी, अवगुण्ठिता, अकुण्ठिता, कुन्दशुभ्रनग्नकांतिमयी, सुरेन्द्रवन्दिता, अभिनंदिता, अनन्तयौवना, पूर्णप्रस्फुटिता, विलोल हिल्लोल, असंवृत्ता अबन्धना, अपूर्व शोभना उर्वशी है । वह माता, कन्या, वधू आदि सभी सम्बन्धों से परे मात्र सौन्दर्य राशि है । विराट की निरपेक्ष सौन्दर्यानुभूति है -

- -

2· सं० - सावित्री सिन्हा - दिनकर लेख डा० नगेन्द्र पृ० - ख

"नह माता, नह कन्या, नह वधू, सुन्दरी रूपसी,

हे नन्दन वासी उर्वशी ।"

वह तो स्वयम्भू सौन्दर्य है अपने आप से उत्थित है

"वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि

कबे तुमि फुटिले उर्वशी ।"

परन्तु दिनकर की उर्वशी कुछ विशेषणों की - निबिड़स्तननता, मुष्टि मध्यमा, मदिरलोचना और काम ललिता - उर्वशी होकर भी मर्त्यलोक के राजा पुरूरवा की प्राणप्रिया है, देह की गठन खोकर पयस्विनी बनने वाली माँ है । उनकी उर्वशी जगद्बोध और अध्यात्म बोध - दोनों ही दृष्टियों से पूर्ण है । दिनकर ने लिखा है - - "उर्वशी काव्य में एक स्थल पर रवीन्द्रनाथ की "पतिता " कविता की छाया पड़ी है किन्तु जहाँ तक उर्वशी की मूल कल्पना का प्रश्न है वह रवीन्द्र की उर्वशी से उतनी भी प्रभावित नहीं है, जितना प्रभाव रवीन्द्र की उर्वशी पर स्पिन वर्ग का आँका जा सकता है । रवीन्द्रनाथ ने उर्वशी पर कोई खण्ड काव्य नहीं लिखा उनकी उर्वशी स्फुट लिरिकल काव्य है और उसकी तुलना मेरी उर्वशी के केवल एक उदगार से की जा सकती है ।"[3] दिनकर ने परम्परागत उर्वशी पुरूरवा की कथा को

- -

3· दिनकर , - रश्मिलोक - पृ० - ज

देखा एवं परखा है । अपनी काव्य प्रतिभा तथा सूझ के माध्यम से दिनकर ने कथा में अनेक मौलिक उद्भावनाएं की है । परम्परागत कथा को नव्य वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए दिनकर ने उसमें अनेक नूतन प्रकरण जोड़े हैं । काव्य का प्रारम्भ सूत्र-धार और नटी के सजीव वार्तालाप द्वारा होता है । जब वे बसन्त श्री का मसृण - -स्निग्धकौमुदी का आनन्द लूट रहे थे, तभी आकाश से अप्सराएं आधुनिकाओं की प्रतीक बन गयी है । इनकी वार्ता के माध्यम से दिनकर ने अप्सरालोक से धरित्री को श्रेष्ठ तथा उत्तम सिद्ध किया । इसी अंक में आधुनिका नारियों की आलोचना की गयी हैं । मातृत्व की महिमा का गुणानुवाद भी दिनकर की नूतन उपलब्धि है । यह प्रकरण कथारम्भ में महत्वपूर्ण योगदान देने के साथ - साथ प्राचीन भारतीय संस्कृति का स्मरण कराता है ।

गर्भ भार ढोने से नारी की यौवन दीप्ति फीकी हो जाती है । तन शिथिल हो जाता है, दान में यौवन गल जाता है । प्रेमी मनुष्य प्रथम ग्रास में ही मानवी के यौवन को दीप्ति को निगल जाता है । प्रणय और समर्पण की, मातृत्व के बोझ ढोने की यह आलोचना कवि की कथा में मौलिक उद्भावना है -

"जहाँ प्रेम राक्षसी भूख से क्षण - क्षण अकुलाता है,
प्रथम ग्रास में हो यौवन की ज्योति निगल जाता है ।

धर देता है भग्न रूप को दाहक आलिंगन से,

छवि को प्रभाहीन कर देता ताप- तप्त, चुम्बन से,

पतझर का उपमान बना देता वाटिका हरी को,

और घूमता रहता फिर सुन्दरता की ठठरी को ।

इसी देव की बाँहों में झुलसेंगी अब परियाँ भी,

यौवन को कर भस्म बनेंगी माता अप्सरियाँ भी ।"[4]

भारतीय संस्कृति में सर्वत्र मातृत्व की महत्ता प्रतिपादित की गयी है । यहाँ माँ को महान माना गया है और उसकी वंदना की है । प्रथम अंक में कवि ने अप्सरा मेनका के माध्यम से मातृत्व की महिमा का बखान किया है । सत्य है कि नारी मातृत्व धारण करने पर शरीर की दिव्य गठन खो देती है, रूप का वासनात्मक ज्वार उतर जाता है परन्तु पयस्विनी बनते ही उसकी असीमता का बोध होने लगता है -

"गलती है हिमशिला सत्य है गठन देह की खोकर

पर, हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर ?

- -

4· दिनकर " उर्वशी " - पृ० - 17

युवा जननि को देख शान्ति कैसी मन में जगती है ।
रूपमति भी सखी ! मुझे तो वही त्रिया लगती है ,
जो गोदी में लिये क्षीरमुख शिशु को सुला रही हो
अथवा खड़ी प्रसन्न पुत्र का पलना झुला रही हो ।"[5]

इस प्रकार "उर्वशी " के प्रथम अंक में विभिन्न पात्रों के द्वारा वर्णित घटनाओं तथा उनकी विचार धाराओं में उसके प्रतिपाद्य के दो प्रमुख सूत्रों की स्थापना होती है । एक ओर अतीन्द्रियताजन्य जड़ता से उबी हुई चेतना पार्थिव श्रृंगार की आग को सहने के लिए तैयार होती है ओर दूसरी ओर "मानवी " के मातृत्व की पवित्र गरिमा की स्थापना होती है जिसका पलड़ा आगे चलकर उर्वशी की प्रणय - भावना से भारी हो जाता है ओर जिसके द्वारा कवि परोक्ष रूप से मातृत्व को नारी जीवन की चरम सार्थकता के रूप में घोषित करता है ।

द्वितीय अंक की कथा में भारतीय पत्नीत्व की आँसू - भरी मर्यादा ओर गीली गरिमा की कहानी है । इसमें ओशीनरी, मदनिका ओर निपुणिका के माध्यम से पुरूष मनोविज्ञान का व्यापक विश्लेषण किया गया है । प्राचीन कथा में यह प्रकरण दिनकर की मौलिकता का परिचायक है । पुरूरवा को उर्वशी प्रमद- वन में अचानक

5· उर्वशी - पृ0 - 17

लता -तरु के मध्य पूर्णिमा के विधु की भाँति उदित हुई सी दिखाई पड़ी । अधीर महाराज ने उसे देखा और आकुल-व्याकुल अधीर भाव से दौड़कर उसे गोद में उठा लिया । प्रणयिनी अप्सरा, जो धरती पर प्रणय मधु का पान करने आयी थी, विक्रमी पुरूरवा के विशाल वक्ष में समा गयी । मिलन का यह मनोवैज्ञानिक चित्र दिनकर की कलात्मक प्रतिभा की मौलिक देन है -

"महाराज ने देखा उर्वशी को अधीर अकुला कर,
बाहों में भर लिया दौड़ गोदी में उसे उठाकर ।
समा गयी उर बीच अप्सरा सुख - सम्भार -लता सी,
पर्वत के पंखों में सिमटी गिरिमल्लिका -लता - सी ।"[6]

प्रीति जब प्रथम - प्रथम बार जगती है तो नारी पुरूष को दुर्लभ रत्नकण लगती है । वह किसी दुर्लभ स्वप्न प्रतीत होती है तथा अति रम्य लगता है । नारी के लिए यह गौरवमय क्षण है, जब विक्रमी पुरूष उसके चरणों में शान्त भाव से विश्राम पाता है । नारी मुख को देखकर घोर अनिर्वचनीय सुख का वह अनुभव करता है । क्षण - क्षण रोमाकुलित होता रहता है । प्रणय की सान्द्रता का यही वह दुर्लभ क्षण है, जब नारी जिस वस्तु की भी कामना करती है, उसे वह उपलब्ध हो जाती है ।

6· उर्वशी - पृ0 - 30

पुरुष मनोविज्ञान का यह दुर्लभ चित्रण उर्वशी में दिनकर की मनोविज्ञान सम्मत मौलिक चिन्तन का परिचायक है -

" यही लग्न है, वह जब नारी जो चाहे वह पा ले,
उडुओं की मेखला, कौमुदी का दुकूल मँगवा ले
रँगवा ले उँगलियाँ पदों की ऊषा के जावक से,
सजवा ले आरती पूर्णिमा के विधु के पावक से।"[7]

पुण्योद्वेलन के क्षणों में पुरुष नारी का अगाध विश्वास करता है। उसके अन्तःकरण में कुछ भी गोपन नहीं रह पाता। वह अपना अन्तःकरण नारी के सामने खोल देता है। नारी के चरणों पर उसका सारा संचित तप, मान-ज्ञान, अभिमान अर्पित हो उठता है। उद्वेलित पुरुष रमणी से कुछ भी छिपा नहीं पाता है -

" तपोनिष्ठ नर का संचित तप और ज्ञान ज्ञानी का,
मननशील का मान, गर्व गर्वीले, अभिमानी का,
सब चढ़ जाते भेंट सहज ही, प्रमदा के चरणों पर,
कुछ भी बचा नहीं पाता नारी से उद्वेलित नर।"[8]

- -

7· दिनकर - उर्वशी, पृ० - 33

8· उर्वशी, पृ० - 33

उर्वशी के प्रथम दो अंकों की श्रृंगार चेतना भारतीयपरिवेश और आदर्शों के बीच पल्लवित हुई है । पत्नीत्व की परिभाषा और मातृत्व के गौरव की स्थापना पूर्णतः भारतीय है । उर्वशी और पुरुरवा अक्षय सनातन नर और नारी माने जा सकते हैं, क्योंकि उनमें वह आदर्शजन्य पार्थक्य नहीं है जो विभिन्न देशों और विश्व के भूभागों की सांस्कृतिक, नैतिक तथा अन्य मूल्यों की विभिन्नता के कारण अनिवार्य हो जाता है । उनका प्रेम तो प्रवृत्तिजन्य हैऔर प्रवृत्तियों का रूप विश्वजनीन, सार्वकालिक और सार्वभौम होता है ।

तृतीय अंक में उर्वशी व पुरुरवा की कामतुष्टि का लोकोत्तर रूप दिनकर की मौलिकता की देन है । परिरम्भण पाश में बंधे हुए प्रेमी, परस्पर एक दूसरे का अतिक्रमण करके किसी ऐसे लोक में पहुंचना चाहते हैं, जो किरणोज्ज्वल और वायवीय है । तृतीय अंक में भारतीय पृष्ठभूमि प्रायः पूर्णरूप से हट जाती है । पुरुरवा व उर्वशी प्रतीक मात्र प्रतीत होते हैं । तृतीय अंक " उर्वशी " का प्राणतत्व माना गया है ।" इसी अंक में " उर्वशी " के मुख्य प्रतिपाद्य का विवेचन - विश्लेषण हुआ है । रतिभाव अथवा काम तत्व मानव जीवन की सबसे प्रबल वृति है । उसी के सूक्ष्म -प्रबल ,कोमल- कठोर,तरल - प्रगाद, मोहक - पोड़क, उद्वेगकर और सुख कर, दाहक और शीतल,मृण्मय और चिन्मय, अनेक रूपों का " उर्वशी" में अत्यन्त मनोरम

चित्रण है और सबसे अधिक आकर्षण है प्रेम की उस चिर अतृप्ति का चित्रण है जो भोग से त्याग और त्याग से भोग अथवा रूप से अरूप और अरूप से रूप की ओर भटकती हुई मिलन तथा विरह में समान रूप से व्याप्त रहती है।"[9] इस अंक का आरम्भ गंध मादन पर्वत के रूमानी वातावरण में होता है और आरम्भ में ही उर्वशी सहज मानवी के रूप में आती है। रतिभाव के विकास की प्रारम्भिक स्थितियाँ मनोवैज्ञानिक स्पर्श से आरम्भ होती है। " इन्द्रियों के माध्यम से अतीन्द्रिय धरातल का स्पर्श यही प्रेम की आध्यात्मिक महिमा है।"[10]

" वह निरभ्र आकाश जहाँ की निर्विकल्प सुषमा में,
न तो पुरुष में पुरुष, न तुम नारी केवल नारी हो,
दोनों है प्रतिमान किसी एक ही मूल सत्ता के,
देह बुद्धि से परे, नहीं जो नर अथवा नारी है।"[11]

" कला, सुरुचि, सौन्दर्य बोध और प्रेम इनका जन्म जैव धरातल पर होता है, किन्तु सार्थकता इनकी तब सिद्ध होती है जब वे ऊपर उठकर आत्मा के धरातल का

9• सं० गोपाल कृष्ण कौल - लेख डा० नगेन्द्र -"अन्तर्मन्थन का काव्य उर्वशी- दिनकर सृष्टि और दृष्टि पृ० - 23।
10• दिनकर , उर्वशी - भूमिका पृ० - "ग"
11• उर्वशी , पृ० - 6।

स्पर्श करते है । "[12] प्रेम के भूतल से ऊपर भूतलोत्तर होने की शक्ति होती है, रूप के भीतर डूब कर अरूप का संधान करने की प्रेरणा होती है।"[13] तृतीय सर्ग में इन सभी कथनों का प्रमाण उर्वशी एवं "पुरूरवा के प्रणय प्रकरण में मिल जाता है ।

"देह प्रेम की जन्म - भूमि है, पर, उसके विचरण की
सारी लीला - भूमि नहीं सीमित है रुचिर त्वचा तक
यह सीमा प्रसरित है मन के गहन , गुह्य लोकों में,
जहाँ रूप की लिपि अरूप की छवि आँका करती है,
और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी - मुख मण्डल में
किसी दिव्य, अव्यक्त कमल को नमस्कार करता है ।"[14]

रूको पान करने दो शीतलता शतपत्र कमल की
एक सघन क्षण में समेटने दो विस्तार समय का
एक पुष्प में भर त्रिकाल की सुरभि सूंघ लेने दो ।"[15]

12· उर्वशी , पृ० - ब

13· उर्वशी , पृ० - ड०

14· उर्वशी , पृ० - 60

कामजन्य द्वन्द्वों का समाधान और निराकरण रागों की मैत्री, स्वीकृति और समन्वय आसक्तियों के बीच अनासक्त होने में तथा स्पृहाओं को भोगते हुए भी निस्पृह और निर्लिप्त होने में है । यह बात ध्यान रखने योग्य है कि वर्तमान युग को कामजन्य उलझनों से मूल प्रेरणा प्राप्त करने पर भी दिनकर का दृष्टिकोण एकांगी हो गया है, वे समस्या को केवल पुरुष के दृष्टिकोण से एक सीमित क्षेत्र और रूढ़िवादी परम्परा में रखकर ही देख सकते हैं, जिसके अनुसार नारी प्रवृत्तियों की एक बंडलमात्र रह गयी है, सार्वभौमिक स्तर पर मृण्मयी भावनाओं के उद्रेक और चिन्मयी बुद्धि के विवेक के द्वन्द्व से आज की नारी भी पुरुष के समान ही ग्रस्त है । परन्तु शायद प्रतीक की परिसीमा के कारण ही " उर्वशी का कवि अपनी नायिका को मस्तिष्क और बुद्धि का वरदान नहीं दे सका ।

दिनकर की मौलिक उद्भावना की दृष्टि से चतुर्थ अंक का अपना वैशिष्ट्य है । इस अंक में प्रकृति और परमेश्वर की एकानुभूति तथा सन्यास और प्रेम के बीच संतुलन की स्थापना का परिचय महर्षि च्यवन के माध्यम से दिया जाता है जिनके व्यक्तित्व में काम की स्वच्छ- सुस्थिर और शीतल धारा का प्रकाश चित्रित किया है । महर्षि च्यवन का स्मरण पुराणों में बड़े पुनीत सन्दर्भ में हुआ है । तपस्या के धनी महामहिमा समन्वित ब्रह्मविद ऋषि च्यवन द्वारा नारी की अभ्यर्थना करवा

कर दिनकर ने नारी जाति का मान ऊँचा किया है । तपस्यारत ऋषि के लोचन सुकन्या कौतुक वश उन्मोचित कर देती है । मुनि का कोपानल धधक उठता है परन्तु सामने मदिर दृगी कन्या को देख वह पुण्य लालिमा में परिवर्तित हो जाता है । वे अपने सामने श्री सदृश्य सुन्दरी को देखकर उनसे पूछते हैं कि -

"कहाँ मिला यह रूप, देखते ही जिसको पावक की
दाहकता मिट गयी, स्थाणु में पत्ते निकल रहे हैं ?
वरण करोगी मुझे ? तुम्हारे लिये जरा को तज कर
शुभे । तपस्या के बल से यौवन में ग्रहण करूँगा
प्रौढ़, मेघ, पादप नवीन, मदकल, किशोर कुंजर - सा ।" [16]

च्यवन के माध्यम से दिनकर ने नारी जाति को अद्भुत सम्मान दिया है और कथानक में अपना मौलिक चिन्तन परक योगदान किया है । च्यवन के द्वारा नारी को तप: सिद्ध भूमा का पर्याय कहलाना दिनकर की बौद्धिकता एवं हार्दिकता तथा मौलिकता का प्रतिफल है । नारी की प्राप्ति तापस के लिए तपच्युति होती है । परन्तु च्यवन ने सुकन्या से कहा कि तुम्हारे साथ परिणय से मेरा तपोभंग नहीं

- -

16· उर्वशी, पृ० - 108

होगा । महर्षि कर्दम ने भी तो अपनी तपस्या की पूर्ति के बाद ईश्वर से वरदान स्वरूप कामिनी की याचना की थी ।

"डरो नहीं, यह तपोभंग च्युति नहीं, सिद्धि मेरी है ।
पहले भी जब हुआ पूर्ण कटु तप महर्षि कर्दम का,
स्वर्गनिही ऋषि ने वर में नारी मनोज्ञ माँगी थी ।
सो तुम सम्मुख खड़ी तपस्या के फल की आभा -सी
अब होगा क्या अपर स्वर्ग, जिसका संधान करूँ मैं ?
हरि प्रसन्न यदि नहीं, सिद्धि बन कर तुम क्यों आई हो ? [17]

उर्वशी और पुरुरवा के उन्मादक प्रेम के स्थान पर सुकन्या तथा च्यवन का गार्हस्थिक समतल प्रेम है जो पत्नीत्व की गरिमा और गम्भीरता को ही नारी जीवन की सार्थकता के रूप में स्वीकार करता है -

" शिखर - शिखर उड़ने में, जाने कौन प्रमोद लहर है,
किन्तु एक तरु से लग सारी आयु बिता देने में
जो प्रफुल्ल, घन, गहन शान्ति है, वह क्या कभी मिलेगी
नये नये फूलों पर नित उड़ती फिरने वाली को ?"

- -

17· उर्वशी , पृ0 - 108

पुरूरवा तथा उर्वशी के परम्परागत कथानक में नव्य -कथाप्रसंग की दृष्टि से पंचम अंक पुरूरवा का स्वप्न प्रकरण अत्यन्त मौलिक कवि उद्‌भावना का उदाहरण है । उस प्रकरण में नाटकीयता एवं अभिनेयता है । कौतुहल वृत्ति उसके श्रवण मात्र से जागृत हो उठती है । महाराज के मुखमण्डल पर चिन्ता देखकर सभा-सदों, प्रधानामात्य, राजपंडित, उर्वशी को आश्चर्य होता है कि उन्होंने ऐसा कौन सा घटना भरा स्वप्न देखा, जिसके कारण उनका धैर्य शील अन्त:करण उद्वेलित हो उठा। राज पंडित विश्वमना को स्वप्न फल की स्वयं की ही गणना पर विश्वास नहीं होता क्योंकि स्वप्न फल का आधार ही दृष्टिगत नहीं होता । स्वप्न में च्यवनाश्रम एवं वहाँ प्रत्यंचा पर बाण संधान करते हुए बालक का विवरण सुनते ही उर्वशी भ्रमित हो उठती है । पुरूरवा के स्वप्न का बहुत ही ललित - नाटकीय वर्णन किया गया है -

" बड़ी विलक्षण बात । देव ने ऐसा क्या देखा है,
जिससे जागृति और स्वप्न की दूरी बिला रही है,
परछाईं पड़ रही, अनागत की आगत के मुख पर,
मुंदी हुई पोथी भविष्य की उन्मीलित लगती है ।"[18]

- -

18. उर्वशी, पृ0 - 130

" देखा सारे प्रतिष्ठानपुर में कलकल छाया है ,

लोग कहीं से एक नव्य तरु - पादप ले आए हैं ।

और रोप कर उसे सामने, वहाँ बार्हस्य प्रांगण में

सींच रहे हैं बड़ी प्रीति, चिन्ताकुल आतुरता में । "[19]

* * * *

एकाकी नि:संग भटकता हुआ विपिन निर्जन में

जा पहुँचा मैं वहाँ, जहाँ पर वसुंधरा बहती है,

च्यवनाश्रम के पास, पुलोमा की दृगम्बुधारा - सी ।"[20]

* * * *

और पास ही एक दिव्य बालक प्रशान्त बैठा था

प्रत्यंचा माँजते वीर-कर -शोभी किसी धनुष की

हाय कहूँ क्या, वह कुमार कितना सुभव्य लगता था।"[21]

सम्पूर्ण स्वप्न प्रकरण उर्वशी की पुरा कथा परम्परा में मुकुटमणि की भाँति दिव्य प्रकाश विकीर्ण करता है । यह प्रकरण कृति की भावी घटनाओं पर प्रकाश

19· उर्वशी, पृ0 - 132

20· वही, पृ0 - 137

21· वही, पृ0 - 131

डालता है ।

पुत्र प्राप्ति के उपरान्त काव्य में पुरूरवा का हर्षोल्लास देखते ही बनता है जिसका अभाव उसे पलपल सालता है । उसे विश्वास ही नहीं होता कि वह पुत्रवान है -

" पुत्र ! अरे मैं पुत्रवान हूँ, घोषित करो नगर में,
जो हो जहाँ वहीं से मेरे निकट उसे आने दो
द्वार खोल दो कोष भवन का, कह दो पौर जनों से,
जितना भी चाहे सुवर्ण आकर ले जा सकते हैं ।
ऐल वंश के महामंच पर नया सूर्य निकला है ।"[22]

" उर्वशी " काव्य में पुरूरवा के बल विक्रम का सुभव्य परिचय पंचम अंक में उपलब्ध होता है । पौरुष, दिनकर का मूल स्वर है। ओज उनकी वाणी में सर्वत्र भूषण सदृश्य दृष्टिगत होता है । उनका ऊर्ध्व पौरुष उर्वशी के स्वर्ग गमन पर भरत शाप प्रकरण श्रवण कर उद्दीप्त होता है | क्षात्र तेज जागता है और पुरूरवा देवराज पर, देवपुर पर आक्रमण करने हेतु उद्यत हो उठते हैं । यह प्रसंग दिनकर का

- -

22· उर्वशी, पृ० - 132

नितान्त मौलिक है । जिनके भुज-विक्रम से देवराज इन्द्र निर्भय रहते हैं, जिसकी पराक्रम-गाथा देव-दनुज महासमर में विजय के माध्यम से यशोमंडित हो चुकी हो, जिसके कोप से दानवेन्द्र परिचित हों, उन्हीं की प्रेयसी स्वर्ग चली जाय, और वे विरही हो जाय, यह पुरुरवा को स्वीकार नहीं है । उत्तेजित एवं कुपित पुरुरवा अपना धनुष माँगते हैं, विकराल सैन्य बल से सुर - पुर में शत्रु रूप में जाने को उद्यत हैं -

" देवों को मेरे निमित्त, बस इतनी ही ममता थी ।
लाओं मेरा धनुष, सजाओं गगन जयी स्यन्दन को,
सखा नहीं, बन शत्रु स्वर्गपुर मुझे आज जाना है ।
और दिखाना है दाहकता किसकी अधिक प्रबल है,
भरत शाप की या पुरुरवा के प्रचंड बाणों की ।"[23]

तभी नेपथ्य से आवाज आती है । चन्द्र कुल का प्रारब्ध और पुरुरवा का संचित प्रताप उसे सावधान करता है, पुण्य तूलिका और लोह विशिखों से आत्म-जीवन के ओजस्वी आख्यान लिखने से सावधान करता है, अन्तर्मन को जगाकर उससे

23· दिनकर - उर्वशी, पृ० - 141

मनःशान्ति की दिशा का संकेत पूछने का और अपने मन के महागगन में असीम उड्डयन भरने का आदेश देता है -

"जहाँ क्रिया कामिनी नहीं, छाया है परम विभा की
जहाँ प्रेम कामना नहीं प्रार्थना, निदिध्यासन है ।" [24]

पुरुरवा इस अनंत आहवान को सुनकर अपना किरीट पुत्र के मस्तक पर रखकर सन्यास ले लेता है । औशीनरी पुत्र को अपना लेती है । वह शोकाकुल हो जाती है । उन्हें सुकन्या आश्वासन देती है कि " वैराग्योन्मुख पुरुष " बंधनहीं सकता । औशीनरी को पश्चाताप है कि वह क्यों "त्रपात्रस्त " बनी रही, पुरुष को वह भावभय आहार क्यों न दे सकी जिसकी उसे अपार क्षुधा थी । प्रियतम को वह सुरभि देने से क्यों चूक गयी जिसकी उसे सबसे अधिक तृष्णा थी । वह कहती है -

"रही समेट अलंकार क्यों लज्जामयी वधु सी ।
बिखर पड़ी क्यों नहीं कुट्टमित , चकित, ललित ,लीला में ?
बरस गयी क्यों नहीं घेरे सारा अस्तित्व दयित का
में प्रसन्न, उद्दाम तरंगित, मदिर मेघमाला सी ।" [25]

- -

24· उर्वशी, पृ0 - 151

25· वही, पृ0 - 166

सुकन्या उसे समझाती है और नारी के इतिहास में अगणित जीवन की गाथा बताकर वार्तालाप समाप्त करती है ।

"त्यागमयी हम कभी नहीं रुकती हैं अधिक समय तक
इतिहासों की आग बुझाकर भी उनके पृष्ठों में ।" [26]

" उर्वशी " की कथावस्तु में एक और विशेषता है । उर्वशी के मिलन के क्षणों में पुरूरवा निरन्तर निष्काम कामभोग का कथन करते हैं । बाहों में रूपराशि उर्वशी को बांधे, अंग संगा के पार चले जाते हैं । काम के माध्यम भूतल के ऊपर उठकर भूतरोत्तर आनन्द का अनुभव करना चाहते हैं । प्राय: उर्वशी उनकी गोद में पड़ी हुई युवती नारी से प्रार्थना की पुनीत कविता की भांति दिखाई पड़ने लगती है । वे शरीर से उर्वशी को अंकलीन किये, मन से कहीं अपर लोक में खो जाते हैं । उर्वशी के स्वर्ग गमन के उपरान्त वे क्षण भर का भी वियोग नहीं झेल पाते । उनके जीवन का न चिन्तन, निष्काम काम-दर्शन, प्रेयसी के वियोग में क्षण मात्र में ही मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है और वे तत्क्षण सन्यास ग्रहण कर लेते हैं । प्रकारान्तर से उनका प्रणयी रूप ही प्रधान बना रहता है । ऐसा प्रणयी जो प्रिया से वियुक्त होकर क्षण भर भी सुखी नहीं रह सकता है ।

- -

26· उर्वशी, पृ० - 166

पंचम अंक में कथा सूत्र पूर्णतः सुकन्या और औशीनरी के अधीन है । औशीनरी विश्रृंखलित गृहस्थ जीवन का प्रतीक है । तापस प्रिया सुकन्या अपने महर्षि पति से परम प्रसन्न एवं तुष्ट है । च्यवन प्रिया माँ नहीं बना सकी हैं फिर भी उर्वशी के पुत्र का पोषण करके परम आनन्दित हैं । उनका जीवन संतुष्ट गृहस्थ का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है । औशीनरी प्रतिष्ठानपुर की राजमहिषी हैं । वह भी मातृत्व धारण नहीं कर सकी । पुरूरवा जैसा परम विक्रमी पुरूष उन्हें स्नेह एवं मातृत्व प्रदान नहीं कर सका । वे आजीवन पूजा उपासनारत रही परन्तु अतृप्त तथा अपने से ही असंतुष्ट ,किन्तु पति से असन्तोष के विषय में एक भी शब्द न कहने वाली रमणी बनी रही । पुरूरवा सब कुछ भोग कर भी रिक्त और औशीनरी सब कुछ खोकर भी पूर्ण है । औशीनरी एवं सुकन्या नारी जीवन के दो छोर हैं - एक आश्रम की पर्णशाला में नन्दन कानन उतार लाई है, दूसरी राजभवन एवं प्रमद वन में भी काँटों की सेज पर शयन करती है । सुकन्या औशीनरी की तुलना में पुरूष मन को अधिक समझती है वह औशीनरी को पुरूष मनोविज्ञान से परिचित कराती है । वह पुरूष की परिसीमाओं के प्रति सावधान और अपने दायित्वों तथा कर्तव्य कर्म की ओर से जागरूक हैं । उसे ज्ञात है कि चट्टानों और पहाड़ों से टक्कर लेने वाला दुर्जेय, भीम, विक्रान्त पुरूष भी अपने मन की तरंग और तृष्णा

के सामने हार जाता है । संसार की समस्याओं को हल करने वाला पुरुष स्वयं की उलझनों से निकल सकने में असमर्थ होता है इसलिए गृहस्थ नारी को सजग होकर पुरुष की आवश्यकताओं और अभावों को ध्यान रखकर उनकी पूर्ति करना चाहिए-

" इसीलिए, दायित्व गहन दुस्तर गृहस्था नारी का
क्षण - क्षण सजग अनिद्र दृष्टि देखना उसे होता है,
अभी कहाँ है व्यथा ? समर से लौटे हुए पुरुष को
कहाँ लगी है प्यास, प्राण में काँटे कहाँ चुभे हैं ?" [27]

दोनों रमणियों को एक मात्र अभिलाषा यह है कि यदि उन्हें पुरुष के निर्माण का अवसर मिले तो वे ऐसे पुरुष का निर्माण करेंगी जो कोमल, स्निग्ध, कृपालु, ममत्वशील, चारु, नारी के ममत्व को समझने वाला, उनके अश्रु पोंछने वाला, बलशाली तथा मन से नवनीतवत होगा । इतिहास जिसकी पौरुष गाथा नहीं बस कोमल मसृण, सान्द्र स्निग्ध प्रणय गाथा अपने पृष्ठों पर अंकित करेगा -

- -

27· दिनकर ,उर्वशी, पृ0 - 143

"किन्तु कभी यदि हमें मिला निर्बाध सुयोग सृजन का,
हम होकर निष्पक्ष सुकोमल ऐसा पुरुष रचेंगी,
कोलाहल, कर्कश निनाद में भी जो श्रवण करेगा
कातर, मौन पुकार दूर पर खड़ी हुई करुणा की,
और बिना ही कहे समझ लेगा, आँखों में,
मूक व्यथा की कसक आँसुओं की निस्तब्ध गिरा को ।"[28]

औशीनरी को यह नव्य मानव निर्माण का स्वप्न मधुर एवं स्वर्णिम लगता है । वह स्वयं तो अपने भाग्य का सुख - दुख भोग चली, अब आगे की नारियों के लिये कामना करती है कि वे उज्ज्वल उदार स्निग्ध भविष्य की भोक्ता बने -

"कितना मधुर स्वप्न ! कैसी कल्पना चारु महिमा की !
नारी का स्वर्णिम भविष्य, जाने वह अभी कहाँ है !
हम तो चली भोग उसको, जो सुख - दुख हमें बदा था ।
मिले अधिक उज्जवल, उदार युग आगे की ललना को ।"[29]

- -

28· उर्वशी, पृ0 - 160

20· उर्वशी, पृ0 - 160

दिनकर जी ओज और श्रृंगार के कवि हैं। वे अपने काव्य में इन दोनों भावों को समान अनुपात से दिखाते हैं। प्रत्येक संस्कृति और रचनात्मक प्रतिभा के विकास के विद्रोह, विवेक और रोमान्स ------------------ ये तीन ऐतिहासिक भाग होते हैं। कवि दिनकर सर्वत्र ही वीरता तथा भोग की बात करते हुए प्रतीत होते हैं। वास्तव में जीवन को रण क्षेत्र मानने वाले व्यक्ति युद्ध और विलास में दो स्थितियाँ नहीं देख सकते। उनके लिए दोनों ही स्थितियों में एक मध्यवर्ती समान सूत्र सदा विद्यमान रहता है। यह मध्यवर्ती सूत्र दिनकर के काव्य में " अनल " कहा जा सकता है। दिनकर ने काव्य रचना का प्रारम्भ विद्रोह से किया। " हुंकार " लिखकर वे जहाँ एक ओर क्षुब्ध हृदय को उन्मुक्त रूप से गर्जना करने देते हैं वहीं दूसरी ओर " रसवन्ती " लिखकर उद्दाम श्रृंगार की अभिव्यक्ति करते हैं। " कुरुक्षेत्र " की रचना करके कवि ने अपनी हुंकार " में गर्जित भावना को संतुलित कर उसका जीवन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। "कुरुक्षेत्र " में ही कर्म, ज्ञान व भक्ति (निवृत्ति) मुख्य विषयवस्तु का रूप धर कर आए। इस क्षेत्र में कवि के ऊपर " लोकमान्य तिलक " और " भगवद्गीता " का प्रबल प्रभाव है। दिनकर में प्रणय श्रृंगार, आध्यात्मिक जिज्ञासा एवं बांधव भाव ये तीनों ही आरम्भ से विद्यमान रहे हैं तथा इनका उत्तरोत्तर विकास भी हुआ है। अब ~~आवश्यकता थी श्रृंगार की उद्दामता और विपर्यस्तता को व्यवस्थित करने की~~ - - "उर्वशी" इसी अभाव की पूर्ति करती है। श्रृंगार की सघनता के कारण इसे दार्शनिक रचना भी कहा जाता है। दार्शनिकता आत्मा, परमात्मा की निवृत्ति मूलक संगति

का ही नाम नहीं है, वह मानव की प्रवृत्ति गत घनीभूत पीड़ा, तल्लीनता और निष्ठा का पर्याय है । इसी अर्थ में काम की अन्तर्मुखी निष्ठा को "कामाध्यात्म" कहते हैं ।

उर्वशी" का दर्शन पक्ष है प्रेम और ईश्वर, जैव और धरातल को परस्पर मिलाना वैसे तो यह एक शाश्वत प्रश्न है जो इस युग के मूलभूत प्रश्नों से जुड़ता नहीं दिखता । " उर्वशी " में भी युग बोध को उभारा गया है परन्तु वहीं जहाँ कवि क्षणवादी दृष्टि से जीवन सत्यों की महत्ता स्वीकारता है और आधुनिक मनोविज्ञान की उपलब्धियों का उपयोग करता है वहाँ वह निश्चय ही अपने युग से जुड़ जाता है । शुद्ध रूप में " उर्वशी " प्रेम और सौन्दर्य का काव्य है । कवि ने प्रेम की छवियों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर पहनाना है । प्रेम भी निर्विकल्प की अवस्था नहीं है इसकी धारा में जीवन दर्शन सम्बन्धी अन्य छोटी छोटी धाराएं आकर मिल जाती है । कवि श्री दिनकर के अनुसार " शुद्ध काव्य की साधना ज्यों-ज्यों बढ़ी, कविता की कला अधिक से अधिक वैयक्तिक होती गयी । प्रतीक वाद का वृक्ष अपने मौसम के बाद भी फूलता रहा उसके बाद चित्रवाद अभिव्यंजनावाद, और सुर्रियालिज्म के आन्दोलन उठे । मनोविज्ञान का प्रभाव कविता पर वैसे भी पड़ता आ रहा था किन्तु सुर्रियालिज्म ने और भी उस प्रभाव को सघन बना दिया । इन सभी आन्दोलनों

का सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि कवि की चेतना अतुलनीय और अद्वितीय मानी जाने लगी, जो ऊपर से खण्डित और असम्बद्ध थी, यद्यपि उसका पूर्वापर सम्बन्ध नीचे, अथवा बहुत नीचे कहीं मनोविज्ञान की भूमि पर जोड़ा जा सकता था ।"[30] दिनकर कृत उर्वशी का आधार, मनोविज्ञान सम्मत चिन्तन है । : सिगमंड फ्रायड, युंग, एडलर तथा हैवलाक एलिस का प्रभाव दिनकर पर पड़ा है । मनोविज्ञान इस युग की सार्थक उपलब्धियों में विशेष महत्त्व रखता है । मनोविज्ञान काम को वर्ज्य- गर्हित एवं हेय नहीं मानता । प्राउस्ट ने कहा था कि, " प्रेम चाहे जैसे व्यक्तियों में हो, वह शारीरिक थरथराहट के अलावा एक अलौकिक सुख का भी आभास देता है, जो शरीर से उत्पन्न होने पर भी शारीरिक सुखों से भिन्न है ।" "उर्वशी का रचना समय वह है जब ललित कला, उपयोगी कला से बहुत दूर हो गयी है ।·····आज काम का उपयोगी पक्ष गौण तथा ललित पक्ष प्रधान हो गया है ।[31] दिनकर प्राउस्ट की विचार धारा का समर्थन करते हैं । उनका कथन है कि " उर्वशी किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए नहीं, प्रेम की अतल गहराई का अनुसंधान करने के लिए लिखी गयी है।"[32]

- -

30· दिनकर - आधुनिक बोध - पृ0 - 57

31· दिनकर - रश्मि लोक - पृ0 - ङ· ।

32· दिनकर - रश्मि लोक - पृ0 - छ ।

उर्वशी का मूल स्वर "कामाध्यात्म " का है । इसे कामाध्यात्म की कविता भी कहा गया है ।[33] जहाँ तक विषयवस्तु तथा प्रतिपाद्य का प्रश्न है डा० नगेन्द्र ने उसे " अन्तर्मंथन का काव्य" कहा है । यथार्थ में उनका मन्तव्य काम से है । अत: इसकी समीक्षा करना अधिक श्रेयस्कर होगा । कवि ने स्वयं काम को धर्म के समान फलदायी कहा है । वास्तव में काम को लेकर आदि काल से संघर्ष चलता रहा है । भक्ति काल में काम को अध्यात्म का बाधक, बताया गया है । दिनकर जी के शब्दों में," इसे ﴾काम ﴿ अपदस्थ करने की जितनी भी चेष्टा की जाय, वह बार - बार सिंहासन पर आ बैठता है । शास्त्र और नैतिकता के प्रहरी उसे बांधने की जो तैयारी करते हैं, उस पर सेक्स का देवता जोर से मुस्कराता है, मानों वह यह कह रहा हो कि इतने बंधन तो मैं तोड़ चुका , देखूं इस बार तुम कैसी कड़ियां तैयार करते हो ।"[34] दिनकर का कामाध्यात्म बहुत कुछ तन्त्रमार्गियों के योग से मिलता है । तन्त्रमार्ग के अनुसार साधक गृहस्थ होकर भी सिद्ध हो सकता है । उनके अनुसार नर - नारी का मिलन सामान्य नर - नारी से भिन्न तत्व है जिसमें लैंगिक भेदों का आरोप नहीं किया जा सकता । "उर्वशी " का पुरुरवा भी

- -

33. विजेन्द्र नारायण सिंह, " उर्वशी, कामाध्यात्म की कविता ﴾सं० डा०वचनदेव कुमार ﴿

34. दिनकर - उर्वशी , भूमिका

यही कहता है -

" वह निरभ्र आकाश जहाँ की निर्विकल्प सुषमा में

न तो पुरूष मैं पुरूष न तुम नारी केवल नारी हो

दोनों है प्रतिमान किसी एक ही मूल सत्ता के

देह बुद्धि से परे नहीं जो नर अथवा नारी है ।"[35]

वस्तुत: पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने काम को मानव जीवन का मूल आधार माना है उनके मतानुसार जीवनपर्यन्त मनुष्य की सभी क्रियाएं मनुष्य के मन में निहित काम भाव से ही संचालित होती है । फ्रायड की भाँति दिनकर भी काम को ही परम पुरूषार्थ मानते हैं । उनके मतानुसार जीवन की गति धर्म से नहीं, अपितु काम से है । पंत जी को लिखे पत्र की निम्नलिखित पंक्तियाँ "उर्वशी " की रचना के पीछे काम की इसी भूमि का निर्वाह करती है -

" भूतल पर डाले स्वर्ण जाल, है बीत रहा यह काम काल ।

जो पुण्यलिप्त आहत द्युति है, यह उसी काम युग की कृति है ।"[36]

35· दिनकर उर्वशी पृ0 - 63

36· दिनकर - मुक्तितिलक - पृ0 - 56

उन्होंने उर्वशी " की भूमिका में लिखा है - " प्रश्नों के उत्तर, रोगों के समाधान मनुष्यों के नेता दिया करते हैं। कविता की भूमि केवल दर्द को जानती है, केवल बेचैनी को जानती है, केवल वासना की लहर और रुधिर के उत्ताप को पहचानती है।"[37] सम्भवतः दिनकर ने इस ओर इंगित करना चाहा है कि "उर्वशी" की रचना किसी उद्देश्य को लेकर नहीं हुई। परन्तु रचनाकार ने भूमिका के अन्त में प्रेरणा के विषय को " अकथनीय विषय " कहकर सब स्पष्ट कर दिया है। "उर्वशी " का प्रतिपाद्य प्रेम एवं काम है। इसीलिए वे कहते हैं - " मनोविज्ञान जिस साधन का संकेत देने लगा है, वह वैराग्य नहीं, रागों से मैत्री का संकेत है, वह निषेध नहीं, स्वीकृति और समन्वय का संकेत है, वह संघर्ष नहीं, सहज, स्वच्छ, प्राकृतिक जीवन की साधना है। देवता वह नहीं, जो सब कुछ को पीठ देकर, सबसे भाग रहा है, देवता वह है जो सारी आसक्तियों के बीच अनासक्त है सारी स्पृहाओं को भोगते हुए भी निस्पृह और निर्लिप्त है।"[38] अतः यह स्पष्ट है कि " उर्वशी " की मुख्य भावभूमि काम ही है तथा स्त्री व पुरुष उसके प्रमुख दो ध्रुवों (स्त्री पुरुष) को किस प्रकार और किस स्वरूप में एक रूप एक भाव में ध्यान मग्न

- -

37· दिनकर - उर्वशी, भूमिका पृ0 -ज.

38· उर्वशी, भूमिका पृ0 - 5

कर उत्ताप लहरों में बाँधने में समर्थ हुए हैं ? यही "उर्वशी" की विषय-वस्तु है। इस प्रसंग में दिनकर की लिखी निम्न पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं - " रूप साकार कवित्त है, और सौन्दर्य की लहर दर्शन की लहर से मिलती जुलती है। नारी मुस्कराती है तब दृष्य और अदृष्य के बीच सेतु बन जाता है। मन में कल्पना का जहाँ भी कोई कक्ष है, उसके दरवाजे पर एक नारी है। जीवन में रस की जहाँ भी कोई धारा बहती है, उसके उत्स पर किसी रमणी का लाल - लाल पाँव है।"[39] स्पष्ट है कि वे कामानन्द को केवल कायिक सुख नहीं मानते, अपितु अलौकिक आनन्द मानते हैं। इसी तथ्य को "उर्वशी" में भी व्यक्त किया गया है -

"यह अतिक्रान्ति वियोग नहीं, आलिंगित नर नारी का,
देह धर्म से परे अन्तरात्मा तक उठ जाना है।

× × × × ×

ले जाना है यह समूल नगपति के तुंग शिखर पर
और शक्तिदायिनी शिवा प्रत्येक प्रणयिनी नारी।"[40]

39· दिनकर - उजली आग, पृ0 - 23

40· दिनकर, उर्वशी, पृ0 - 61

वे मृण्मय प्रणय को चिन्मय प्रणय में परिवर्तित देखना चाहते हैं। रूप से अरूप और भोग से त्याग में प्रणय की सार्थकता आंकते हैं। यहां काम और अध्यात्म को पृथक-पृथक समझना "उर्वशी " को समझने के लिए उचित होगा। वस्तुतः काम मानव मन में उठने वाली वह उत्ताप लहर है जो समस्त जन मानस को अंकृत कर देती है। इसका वेग ही मनुष्य की समस्त क्रिया व प्रक्रियाओं का कारक है। वह मानव मात्र को काल के तनाव से दूर रखता है। तनाव का कारण उदात्त काम है, तथा उसकी परिणति निष्काम, निर्विघ्न एकान्त मनःस्थिति जिसकी दर्शन को तलाश है। "मनुष्य के पास शक्ति का जो स्रोत है, उसे ही काम कहते हैं, इसके बूते पर आदमी खेतों में हल जोतता है, फलक पर तूलिकाओं द्वारा रंग उड़ेलता है और मोक्ष एवं परमात्मा की ओर उन्मुख होता है। काम की शक्ति दुर्लभ शक्ति है, जीवन में जहां भी रस का स्रोत है वहां काम की माया का ही प्रसार है।"[41] यथार्थ यह है कि काम ही अपने बृहद् अर्थ में जीवन है, सूक्ष्म अर्थ में यही प्रणय है। दर्शन में यही प्रकृति और परमेश्वर का मिलन है, जहां न समय है न साकार, जहां बिन्दु और व्योम सभी एक है। आध्यात्म आत्म चिन्तन है, जिसे हम दूसरे शब्दों में दर्शन कहते हैं। दर्शन वह मार्ग है जो कि दुख, ध्वंस और

- -

41· डा० विजेन्द्र नारायण सिंह, ज्योत्सना, दिनकर विशेषांक सन् 1974

सुखानुभूति के मार्ग का अन्वेषण करता आगे चलता है । वह काम का विध्वंसक रूप नहीं अपितु व्यक्ति को व्यक्ति से मिलाता है, मोक्ष का सोपान है । काम अध्यात्म के नाम पर त्याज्य नहीं क्योंकि वही स्वयं में आत्म ज्योति भी है, आत्मा की शक्ति है । अतः ये दोनों एक दूसरे के सहगामी है इस तथ्य की पुष्टि दिनकर की निम्न पंक्तियों में होती है -

"यह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है, पाकर जिसे त्वचा की
नींद टूट जाती, रोमों में दीपक बल उठते हैं ?
वह आलिंगन अन्धकार है, जिसमें बँध जाने पर
हम प्रकाश के महासिन्धु में उतराने लगते हैं ?
और कहोगे तिमिर शूल उस चुम्बन को भी जिससे,
जड़ता की ग्रन्थियाँ निखिल तन मन की खुल जाती है ? [42]

"उर्वशी " में दिनकर का चिन्तन व्यक्त हुआ है । उनका कथन है, " श्रेष्ठ कविता किसी न किसी अर्थ में धार्मिक होती है । [43] धर्म एक ऐसा विषय है जिसकी व्याख्या चिन्तन के माध्यम से ही सम्भव है । भारतीय चिन्तन में

42· दिनकर-उर्वशी, पृ० - 45

43· दिनकर, आधुनिक बोध , पृ० - 29

विचारों की प्रचुरता और विविधता विद्यमान है । दर्शन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसे भारतीय चिन्तन ने संस्पर्शित न किया हो ।

"उर्वशी " केवल उद्वेल यौवन एवं रूपाकर्षण के वायवीय लोक का काव्य नहीं है वरन् वह चिरन्तन नर - नारी के सम्बन्धों का भी आख्यान है । इस काव्य में वर्तमान युग की नारियों के दायित्व- विहीन स्वच्छन्द भोग का संकेत दिया गया है । मेक्सिको के विख्यात कवि आक्टेमियो पाँच ने लिखा है," प्रत्येक कविता अपने युग का अवक्षेप है (Every poem is a persipitete of pure time)"[44]

"उर्वशी " का चिन्तन एक विशेष दिशा में उन्मुख है । उसमें नवीनता का सम्मोहन है स्वच्छन्दता का इन्द्रजाल है । उसमें प्रेम प्रकृति और नारीमूर्ति का चिन्तन रस है जो सहृदय को अनिवार्य आनन्द के सागर में डुबो देता है । अलौकिक सुख का आभास देता है, प्रेम की अतीन्द्रियता इस कृति में अनेक स्थलों

44· डा० वचन देव कुमार : उर्वशी : विचार और विश्लेषण , पृ० - 165

पर ध्वनित होती है । दिनकर ने प्रेम में अध्यात्म की निस्सीमता का चित्रण करके उसका महामात्य वर्धन किया है । कवि सम्पूर्ण कृतियों में अनल ही एक मात्र बिन्दु बन कर आया है । "उर्वशी" इसी अनल को जगाना चाहती है, और पुरूरवा इसी जागी हुई अनल को उच्च से उच्चतर स्थिति की ओर ले जाना चाहता है । इस प्रकार अनल का सूत्र सारी कथा-वस्तु में एक सा ही चल रहा है । कवि इसके प्रति सदा प्रबुद्ध रहा है । वह जीवन और धर्म दोनों में ही इस अनल की ज्योति और ज्वाला को जागृत देखना चाहता है । अनल का दाह भी कवि को प्रिय है तथा प्रकाश भी । दाह के बिना प्रकाश की सत्ता नहीं और प्रकाश के बिना दाह व्यर्थ है । जीवन केवल उत्तेजना या वासना के ज्वार का ही नाम नहीं है । वह तो सागर का विस्तार भी है । उसकी गहराई भी उसका ज्वार भी, और उस सा शान्त भी । इसीलिए अनल के दोनों ही रूप जीवन की वास्तविकता के प्रतिनिधि हैं । कवि ने इस काव्य में इसी अनल को जीवन का एकमात्र आधार स्वीकार किया है । नर और नारी के विवेचित सम्बन्ध भी इसी सूत्र पर टिके हुए हैं । कामवृत्ति को फ्रायड ने समस्त मानव व्यवहारों का स्रोत माना है । लेकिन भारतीय दर्शन ने उसे विनाश का द्योतक कहा है । लेकिन गीता का प्रयोजन निष्काम कर्म से है न कि सौहार्द्र से । इस दृष्टि से यदि दिनकर के काव्यों का अध्ययन

किया जाय तो सौन्दर्यानुभूति हमें " प्रण - भंग" में ही दृष्टि गत होती है ।,
पूर्णत्व उसे उर्वशी में मिला है । " उर्वशी" में वय: क्रम के कारण उसकी किरणों में
वह प्रखरता नहीं, उनकी गति अन्तर्मन की ओर उन्मुख है । " उर्वशी " समाज का
नहीं वरन् स्वयं का अन्तर्मंथन करती है । इनका प्रक्षेपण भी आत्मसुखानुभूति का ही
बना है । "कुरुक्षेत्र " में विचार प्रवाह बहिर्मुखी तथा "उर्वशी" में विचार पूर्णरूपेण
अन्तर्मुखी है । " कुरुक्षेत्र " में जहाँ दिनकर अहम् समाज के दुख ध्वंस में लीन था,
वहीं उनका अहम् "उर्वशी" में स्वयं क्लान्त, शान्ति की खोज में अपने हृदय के अथाह
सागर में डूबा आत्मानंद की खोज में उर्वशी के उर में आध्यात्मिक पृष्ठभूमि की
खोज में है । दिनकर का व्यक्तित्व जो " कुरुक्षेत्र " में भीष्म था. "उर्वशी " का
द्वन्द्व ग्रस्त दार्शनिक पुरुरवा है, जो उर्वशी के अंग में पड़ा उससे आलिंगन किये भी
विचारों से कहीं दूर निकल जाता है । उसके विचार निवृत्तिमूलक हैं, कर्म प्रधान
नहीं ।

इस प्रकार दिनकर के व्यक्तित्व के गुणों की स्पष्ट छाया उनके प्रबन्ध
काव्यों में उनके पात्रों के प्रतीक रूप में लक्षित होती है, जिसमें उन्होंने काम, क्रोध,
आवेग, करुणा, दया, माया , पाप, पुण्य, हिंसा, अहिंसा, प्रवृत्ति, निवृत्ति, आदि
भावों और संवेगों को यथास्थान स्पष्ट रूप में आने दिया है तथा उनके पात्रों के

भाव और भाषा किसी न किसी रूप में उनके स्वयं की ही मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके प्रबन्ध काव्यों में कर्ण उनके मानवता वाद का, भीष्म आक्रोश का तथा पुरूरवा द्वन्द्व का प्रतीक है। और उर्वशी नारी - भावों का प्रतिपादन करती है। अन्त में पुरूरवा में ही दिनकर के पौरुष के समाहित होने के लक्षण पूर्णत्व को प्राप्त करते है। उर्वशी में काम चेतना का मनोवैज्ञानिक एवं जीव शास्त्रीय पक्ष विलक्षण रूप से चित्रित हुआ है। रूपकत्व की दृष्टि से भी इसका स्वरूप भास्वर है। अनेक दृष्टियों से यह मणिकुट्टिम काव्य का श्रेष्ठतम उदाहरण है। अतः उर्वशी काव्य को आधुनिक युग का एक उत्कृष्ट महाकाव्य कहा जा सकता है। इस विषय में मतभेद हो सकते हैं कि इसे कौन सा स्थान हिन्दी साहित्य में दिया जाय। पर इस विषय में संदेह का अवकाश नहीं है कि इसका यह स्थान किसी भी रूप में दूसरे दर्जे का नहीं है। हिन्दी के अग्रगण्य काव्यों में इसका भी स्थान है। इसे नाट्य काव्य में सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। "उर्वशी " में अतीत वर्तमान एवं भविष्य के समन्वय के साथ - साथ विचार, भाव एवं भाषा का ऐसा प्रौढ़- प्रकर्ष है कि यह निरवधि काल तक वसुधा पर अपनी विजय केतु फहराती रहेगी।

xxxxxx

" एक कंठ विषपायी "

नयी कविता की प्रबन्ध रचनाओं में पौराणिक कथानकों को आधार बनाकर वर्तमान युग के मूल्यों को रेखांकित किया गया है। समसामयिक परिस्थितियों से परिचित कवि का यह कर्तव्य होता है कि वह रचना में अपने समय की घटनाओं, विचार धाराओं दर्शन तथा समस्याओं का स्पर्श करें ताकि उसका सृजन समय की धारा के साथ अपना अस्तित्व बनाए रख सके। "एक कंठ विषपायी " दुष्यन्त कुमार कृत ऐसी ही सशक्तरचना है जो मिथकीय आधार रखते हुए भी सामयिक परिवेश को प्रस्तुत करती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध में हुए मानवता के पतन से कवि का संवेदनशील ह्रदय कांप उठा जिसके फलस्वरूप युद्ध की समस्या को किसी न किसी प्रसंग से उठाकर इन कवियों ने अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।"अंधायुग" "संशय की एक रात " महा प्रस्थान आदि अन्य प्रबन्धों की भाँति "एक कंठ विषपायी " में भी युद्ध की विभीषिका तथा हानि को स्थान दिया है। भारत की राजनीति में चीनी आक्रमण की अहम् भूमिका है। इस युद्ध ने हमारा मोह भंग कर पंचशील सत्य, अहिंसा और शान्ति के आदर्शों के सामने प्रश्नचिन्ह लगाया वहीं देश के नेताओं तथा प्रजातन्त्र के लिए एक जबरदस्त चुनौती भी प्रस्तुत की। यह

रचना चीनी आक्रमण के बाद की है । इसमें ब्रह्मा को हमारे राष्ट्र के नेता के प्रतीक रूप में दिखाया गया है जो आदर्शों का आवरण ओढ़े है तथा युद्ध के पक्ष में निर्णय लेने में असमर्थ है । कवि का मूल उद्देश्य हमारी जर्जरित सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं, ह्रासोन्मुखी जीवन मूल्यों एवं रुग्ण मनोवृत्तियों का चित्रण करना है । वास्तव में युद्ध अपने में घृणित है परन्तु जब राष्ट्रीय सुरक्षा और कल्याण की भावना इसमें निहित हो तो इसकी चुनौती को स्वीकार करना चाहिए ।

" एक कंठ विषपायी "," अंधायुग " की परम्परा की अगली कड़ी है । चिन्तन, घटनात्मक स्थितियाँ तथा पात्रों की दृष्टि से इन दोनों रचनाओं में काफी साम्य है दोनों ही रचनाओं में युद्ध के औचित्य पर विचार किया गया है परन्तु मूल प्रतिपाद्य की दृष्टि से दोनों रचनाओं में अन्तर है । "अंधायुग" की मूल समस्या युद्ध के औचित्य की समस्या है , जबकि " एक कंठ विषपायी" में प्राचीन तथा नवीन परम्पराओं एवं मूल्यों के संघर्ष को मूल समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है । महाभारत युद्ध कौरव-पांडव- कुल के विनाश के रूप में ही नहीं, वरन् एक पूरे युग की (द्वापर युग) की समाप्ति के रूप में घटित हुआ था । पुराणों के अनुसार शिव तथा देवताओं का संघर्ष विष्णु के प्रयत्नों

से टल गया था । वास्तव में दुष्यन्त कुमार ने युद्ध की समस्या के प्रस्तुतीकरण के लिए जिस कथा का चयन किया है उसमें प्रतीकात्मक अर्थ योजना की सम्भावनाएं महाभारतीय कथा से कम है । इसकी कथा का आधा बाह्य से अधिक आन्तरिक है । अन्तर्जीवन की प्रधानता के कारण ही इसमें घटनाओं से ज्यादा मनोभावों पर बल है - शंकर, ब्रह्मा, सर्वहत सभी इस बल को प्रकट करते हैं । इन्हीं के मन की उथल पुथल का अंकन करता हुआ तथा दक्ष के मन के आंतरिक संघर्ष को वाणी देता हुआ रचनाकार सभी पेचीदा समस्याओं को सामने रखता चला गया है । कवि का मूल उद्देश्य हमारी जर्जरित सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं ह्रासोन्मुखी जीवन मूल्यों एवं रुग्ण मनोवृत्तियों का चित्रण करना है । कृति की सृजनात्मक प्रेरणा के सम्बन्ध में दूधनाथ सिंह का यह मत उल्लेखनीय है कि - किसी भी समाज के गर्भ में नये परिवर्तन जब जन्म लेते हैं तो सतत विकास शील सत्य और प्रमाण परम्परित मानव धर्म मर्यादाओं के विरोध में आ खड़े होते हैं । इन नये सत्यों और नये सामाजिक मूल्यों को स्वीकारना प्राचीन मर्यादाओं के पोषकों और संरक्षकों के लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है । वे अक्सर परम्पराओं के शव को अपने कंधों पर उठाये हुए अर्ध- विक्षेप और प्रति-हिंसा में उगती हुई दुनिया को नष्ट समाज अपनी नयी शक्ति से अत्यन्त विनम्रता पूर्वक अपने कंधों से यह शव उतार देता है तो उन्हें भी इस नये सत्य का आलोक प्रभावित और आच्छादित कर देता है । एक पौराणिक कथा

के माध्यम से उसी सत्य का अत्यन्त काव्यात्मक दर्शन, अत्यन्त लयात्मक भाषा और संवेगों के माध्यम से दुष्यन्त कुमार का यह नाटक हमें कराता है ।"[1] सम्पूर्ण रचना के मूल में यही संघर्ष है ।

प्रस्तुत रचना में जहाँ जीवन की विद्रूप " और विकृत स्थितियों का चित्रण हुआ है वहीं जीवन के चिरन्तन मूल्यों की महत्ता प्रतिपादित की गयी है । मर्यादा, न्याय, सत्य आदि इनमें प्रमुख हैं । विष्णु के मुख से कवि ने कहलाया भी है कि -

" धीरज रखो
न्याय करूँगा
चाहे शंकर मेरे कितने निकट मित्र हों
चाहे ब्रह्मा जी मेरे कितने अभिन्न हों
मैं अपना मत सत्य के पक्ष में दूँगा ।"[2]

सम्पूर्ण कथा वस्तु चार अंकों में विभाजित है । प्रथम अंक में दक्ष और वीरणी, उसकी पत्नी का वार्तालाप है । दक्ष ने अपने घर में यज्ञ का आयोजन

- -

1·बल्भीमराज गोरे - हिन्दी के बहुचर्चित काव्य नये सन्दर्भ, पृ0 - 48

2·एक कंठ विषपायी " - पृ0 - 117

किया है । वस्तुत: " एक कंठ विषपायी " में प्रस्तुत मूल्य संघर्ष की समस्या की पृष्ठभूमि में स्वातन्त्र्योत्तर भारत में उत्पन्न मूल्यगत संक्रमण की स्थितियाँ हैं । प्राचीन और नवीन , प्रत्येक युग में परम्परा और प्र-योग का द्वन्द्व प्रत्येक युग में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है, लेकिन बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के राजनीतिक, सामाजिक तथा मानसिक जगत में घटित होने वाले त्वरित परिवर्तनों के कारण प्राचीन मूल्य और मर्यादाएं अत्यन्त तेजी से निरर्थक एवं अनुपयोगी सिद्ध होने लगी थी । अत: इनके कारण समाज में दो वर्ग बन गये थे । एक ओर बुजुर्ग या पुरानी पीढ़ी थी जो परम्पराओं से चिपटी रहना चाहती थी, दूसरी ओर युवा पीढ़ी थी जो अर्न्तवाह्य जगत की जटिल स्थितियों के मध्य नवीन मूल्यों के लिए छटपटा रही थी । इस रचना में यही दो पीढ़ियों के संघर्ष को दक्ष एवं शिव के माध्यम से व्यक्त किया गया है । शिव ने पार्वती से विवाह करके परम्परा को खण्डित किया था । पुरानी परम्परा के प्रतिनिधि दक्ष इस खण्डन को सहन नहीं कर पाते हैं तथा अपने घर में आयोजित अश्वमेध यज्ञ में शिव को निमंत्रण न देकर उन्हें अपमानित करना चाहते हैं -

"शंकर ।

शंकर ।।,

वह जिसने घर की परम्परा तोड़ी है

वह जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है,

जिसके कारण

मेरा माथा नीचा है सारे समाज में

मेरे ही घर अतिथि के रूप में आए ।"[3]

सती बिना निमंत्रण के ही दक्ष के घर पहुंच जाती है परन्तु वहां पति-अपमान से क्रुद्ध होकर अतिथियों को अपशब्द कहती है । "दक्ष" इससे उत्तेजित हो जाते हैं । वातावरण में तनाव आ जाता है । "सती" यज्ञ में शंकर की अवहेलना के विरुद्ध उन्हें सर्वोच्च स्थान देने के लिए आग्रह करती है, जिसे दक्ष अस्वीकार कर देते हैं -

" .... तो सुन लो

मेरे दृढ़ निश्चय है

मेरे आयोजन में

शंकर का कोई स्थान न होगा

यही नहीं

युग युग तक

3·एक कंठ विषपायी, पृ0 - 11

युग युग तक

किसी यज्ञ अथवा आयोजन में

उसको निमंत्रण तक न जाएगा ।"[4]

"सती" इस असह्य अपमान के कारण यज्ञाग्नि में स्वयं को भस्म कर देती है । यहाँ कवि का मूल आशय सत्ता पर व्यंग्य करना है । राजमद में लिप्त शासन व्यक्ति के अस्तित्व एवं स्वातन्त्र्य बोध को तिरस्कृत कर सभी मर्यादाओं को भूल जाता है ।

" सती दाह " के पश्चात सारा यज्ञ " स्थल " शिव जी के गणों द्वारा ध्वस्त कर दिया जाता है । द्वितीय अंक में ब्रह्मा, विष्णु इन्द्र तथा वरुण आदि एकत्र होते हैं । इसी अंक में सर्वहत नाम का एक नया पात्र भी अवतरित होता है । वह दक्ष का भृत्य है तथा सारी घटनाओं का सहज भोक्ता है । इसके माध्यम से प्रजा की मनःस्थिति का सही विश्लेषण कवि ने कराया है आज प्रजा के शासकों के भय और अनेक प्रकार की विसंगतियों के मध्य अपना जीवन गुजार रही है । वह व्यंग्य पूर्ण भाषा में विध्वस्त नगर की मार्मिक स्थिति का वर्णन करता है -

- -

4. एक कंठ विषपायी " - पृ0 12

" कौन कहता

यहाँ कुछ भी नहीं है शेष

यहाँ शेष हो तो है सब कुछ

देखो ..... ।

सारे नगर में ताजा

जमा हुआ रक्त है

और सड़ी हुई लाशें हैं

मुड़ी हुई हड्डियाँ हैं

क्षत विक्षत तन हैं

और उन पर भिन्नाते हुए

चीलें और गिद्धों के झुण्ड

और मक्खियाँ हैं ।"[5]

देव आक्रमण करना चाहते हैं परन्तु ब्रह्मा रोक देते हैं । उनका मत है कि युद्ध लौकिक परम्परा की विकृति का फल है । परन्तु इन्द्र इसे देवों का अपमान मानते हैं तथा शंकर को दण्डित करना चाहते हैं । शिव को कवि ने

5· एक कंठ विषपायी " - पृ० - 45

दो रूपों में प्रस्तुत किया है । एक प्रतिहिंसा की ज्वाला में दग्ध तथा दूसरा विष पीने वाले कैलाशपति के रूप में । वे सहज मानवीय पीड़ा से ओतप्रोत हैं तथा विक्षुब्ध होकर सती के शव को लादे हुए घूम रहे हैं । परम्परा भंजक शिव परम्परा - पोषक बनकर सती की शव का (जो परम्परा का प्रतीक है) मोह त्याग नहीं पाते हैं । निर्जीव शव अपनी सड़ांध से वातावरण को दूषित करता है । रूढ, जर्जरित तथा मृत परम्पराएं भी मृत शव की तरह समाज में सड़ांध उत्पन्न करती है । इस वास्तविकता को तथा शिव जैसे महान -चरित्र के इस अन्तर्विरोधी की ओर इन्द्र और वरूण संकेत करते हैं -

" नये सत्य से जोड़ नहीं पाये वे खुद को
शव के कारण

शिव शंकर यह शव कब त्यागेंगे
भूमि सात होगी कब वह दुर्गन्ध की जिससे सारा वातावरण
ग्रस्त है ।

कब उस शव का सार ग्रहण कर

- -

उस मिट्टी की पृष्ठभूमि पर

नये अंकुर उभर आयेंगे ।"[6]

शिव का मोहाविष्ट रूप सामान्य मानव के अन्तर्द्वन्द्व के निकट है । प्रेयसी - वियोग की गहन पीड़ा के क्षणों में उन्हें क्या मिला ?

" देवत्व और आदर्शों का परिधान ओढ

मैंने क्या पाया ....?

निर्वासन ।

प्रेयसि - वियोग ।

हर परम्परा के मरने का विष

मुझे मिला,

हर सूत्रपात का श्रेय

ले गये और लोग

मैं ऊब चुका हूँ

इस महिमा मंडित छल से ....।"[7]

6· एक कंठ विषपायी " पृ० - 120

7· वही पृ० - 69

चतुर्थ अंक में शिव को आक्रमणकारी व क्रूर घोषित कर आत्म रक्षण हेतु इन्द्र युद्ध के पक्षधर हैं। विरोधी को संविधान, नियम और नैतिकता की दुहाई देकर पछाड़ना आज की राजनीति का एक हथियार है। इन्द्र तथा कुबेर आदि अपनी रक्षा के लिए ब्रह्मा तथा विष्णु को उकसाना चाहते हैं तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों की दुहाई देकर शंकर को दण्ड दिलवाना चाहते हैं। इसके पीछे कोई मूल्य दृष्टि अथवा सिद्धान्त नहीं वरन् अपनी स्वार्थ लिप्सा और छल की राजनीति है इन्द्र का यह कथन उनकी असलियत को उजागर करता है -

" मैं तो यहाँ तक कहूँगा प्रभु

शिव द्वारा

जिस जिसकी अब अवज्ञा हुई है

उसको अपराधी ठहराकर

उन्हें

उचित दण्ड दिया जाय

- चाहे वह महादेव हों

आपके समान धर्म शासक हों

चाहे कुछ भी हों।"[8]

8· एक कंठ विषपायी - पृ० - 105

इन्द्र सत्ताधारियों के समान युद्ध कर प्रतिष्ठा बचाने का पक्षधर है। परन्तु ब्रह्मा देवलोक की अपेक्षा सत्य रक्षा में विश्वास रखते हैं। सर्वहित दक्ष की युद्ध लिप्सा पर व्यंग्य करता है -

" आप लोग शासक हैं
और शासकों को कहीं
रक्त की कमी होती है।"[9]

प्रजा पर शासकों की इच्छा के नाम पर अत्याचार होते हैं पर वह चुप रहती है -

" अरे, हम प्रजा थे
हमने उफ तलक न की
शासन के गलत सलत शौकों के भी
फसलों से विनयी हम बिछे रहे निर्विवाद।"[10]

यह कथन साम्राज्यवादी व्यवस्था की हिंसात्मक प्रवृत्तियों की ओर संकेत करता है। जहाँ जन साधारण को कोई न्याय नहीं मिलता।

9· एक कंठ विषपायी, पृ0 - 115
10· वहीं पृ0 - 111

शिव की शक्ति असीम होती है । प्रकारान्तर से मनुष्य की शक्ति की सम्भावनाएं भी असीम होती है । मनुष्य कमजोर होता है, लेकिन अपनी कमजोरी से उभरउठने की क्षमता भी उसी में है । शिव मोहग्रस्त होते हैं । विष्णु आकर सेनापतित्व ग्रहण कर युद्ध की चुनोती स्वीकार कर लेते हैं । उनका शिव के चरणों में छोड़ा गया प्रणाम बाण एक विनम्र आग्रह है जिससे शिव का मोह भंग होता है -

" मैंने एक प्रणाम बाण छोड़ा है

जिसके कई फलक हैं

वे सारे

शिव के कन्धों पर पड़ी हुई भगवती सती के

शव को खण्ड खण्ड कर पल में

छितरा देंगे

x x x x

लेकिन मूल बाण शिव के चरणों में

एक चुनौती या प्रणाम, का अर्थ कहेगा

चाहे वे प्रणाम स्वीकारें

चाहे वे युद्ध की चुनौती

हर हालत में सत्य हमारी ओर रहेगा

अन्तिम विजय हमारी होगी ।"[11]

मूल पुराण कथा के अनुसार विष्णु ने बाण द्वारा शिव के कंधे पर पड़े सती शव को खण्ड - खण्ड कर दिया । ये खण्ड जहाँ जहाँ गिरे वहाँ शक्तिपीठ की स्थापना हुई । कवि ने इस प्रसंग को अपने कथ्य के अनुकूल अत्यन्त सार्थक अभिव्यंजना प्रदान की है । प्रतीकात्मक अर्थ योजना की दृष्टि से शव का खण्डित होना परम्परा का खण्डन है ।

चरित्र संगठन की दृष्टि से भी प्रस्तुत प्रबन्ध अद्वितीय है । "पौराणिक कथा पात्रों के माध्यम से कवि ने आधुनिक बोध को व्यक्त किया है । अतीत की कथा को प्रतीकों के सूत्र में पिरोकर जहाँ एक ओर वर्तमान युग की समस्याएं प्रभावोत्पादक रूप से प्रस्तुत हो गयी है एवं कलात्मक भी लगती हैं ।"[12] इस कृति में दो प्रकार के पात्र दृष्टव्य हैं एक पौराणिक , जिसमें दक्ष, वीरणी,

---

11· एक कंठ विषपायी - पृ0 - 126

12· आधुनिक प्रबन्ध काव्य - डा0 विनोद गोदरे पृ0 - 119

शंकर ,ब्रह्मा, विष्णु, कुबेर, वरूण, शेष इन्द्र एवं वीरभद्र प्रमुख हैं । द्वितीय श्रेणी के पात्र प्रकल्पित हैं जिसमें एकमात्र पात्र सर्वहत है । स्त्री पात्रों में वीरणी एवं सती है । जिसमें सती का एक दृश्य में सूच्य एवं तृतीय दृश्य में शव के रूप में वर्णन है ।

"दक्ष" राजतन्त्री व्यवस्था का प्रतीक है । वह अत्यन्त जिद्दी, आवेशी और आक्रोशी भावना वाले हैं । शंकर यद्यपि उनके जामाता हैं परन्तु दक्ष की दृष्टि में वे अपराधी हैं इसीलिए उन्हें यज्ञ में निमन्त्रण नहीं मिलता है । दक्ष अत्यन्त अभिमानी एवं कूटनीतिज्ञ हैं । यह परम्परावादी हैं शंकर का परम्परा से हटकर सती से विवाह करना उन्हें पसन्द नहीं है यह दक्ष के मन में प्रतिशोध भावना जागृत करती है । जिसकी परिणति अन्त में यज्ञ विध्वंस और युद्ध की तैयारी में होती है । दक्ष में विवेक और संयम की मात्रा कम है तथा आवेश व निर्णय पर अडिग रहने की उदम्य आकांक्षा बलवती है । परम्परागवादियों को यह कतई मन्जूर नहीं कि कोई नया मूल्य पुराने को खंडित कर सामने आए इन्द्र के कथनानुसार -

"क्यों लोग -"नये "को ऊपर आने देना नहीं चाहते ?

चाहे वह साधारण जन हो

अथवा महादेव शंकर हो
क्यों इनमें अधिकांश लोग लाशें ढोते हैं,
लाशें मरी मान्यताओं की
जरें ····· विचारों की ······भावों की "

शंकर जो " एक कंठ विषपायी " में नायक की भूमिका में हैं । उन्हें परम्परा पोषक भंजक दोनों रूपों में प्रस्तुत किया गया है । उन्होंने माता-पिता की इच्छा के विरूद्ध "सती " को बहका कर वरण किया है जो लोक मर्यादा के विरूद्ध है जिसका परिणाम जम -निन्दा है । यही शंकर की अमर्यादा और परम्परा - भंजकता है क्योंकि शंकर अर्न्तविरोधीं से युक्त पात्र हैं जिससे वे आधुनिक व्यक्ति के आन्तरिक संकट और उसकी विसंगति को प्रकट करते हैं। परन्तु यही शंकर सती के दाह पर मोह ग्रस्त होकर परम्परा पोषी हो गये हैं । वे एक साधारण मोह ग्रस्त मानव की भाँति ज्ञान-चेतना लुप्त कर सती के शव को कंधों पर उठाकर इधर उधर घूमते है । वे अपने व्यक्तित्व को विखण्डित और टूटा हुआ अनुभव करते हैं । डा0 शिव शंकर कटारे ने उनके चारित्रिक विशिष्टता को इंगित करते हुए लिखा है कि - " शिव क्रोधी हैं किन्तु उनका क्रोध परिस्थिति जन्य है । वे अपमान का बदला क्रूरता से लेते

हैं । वे अनुदार वादी हैं । वे परम्पराओं से चिपके रहना चाहते हैं । लेकिन जब परिवर्तन होता है तो उनसे उत्पन्न विषम परिस्थितियों का जहर भी वे ही पी लेतें हैं वे सच्चे प्रेमी के रूप में दिखलाए गये है"[13] वे देवत्व को धिक्कारते हैं क्योंकि देवत्व के नाम पर या तो वे छले गये हैं या फिर वह व्यर्थ का आडम्बर था जिसने उन्हें प्रेयसी वियोग दिया -

"देवत्व और आदर्शों का परिधान ओढ़/ मैंने क्या पाया ?
निर्वासन/ प्रेयसी वियोग ।!
हर परम्परा के मरने का विष / मुझे मिला
हर सूत्रपात का / श्रेय ले गये और लोग ।
मैं ऊब चुका हूँ
इस महिमा मंडित छल से ।"[14]

यहाँ वे प्रश्नाकुल लगते है वे परम्परा से मुक्ति की कामना भी करते जान पड़ते हैं और उसकी पुष्टि भी । यही वे परम्परा प्रिय और नयी चेतना के विरोधी लगते हैं किन्तु आज के मोहग्रस्त व्यक्ति के प्रतीक बनकर ।"

- -

13· डा० शिव शंकर खरे - हिन्दी गीत नाट्य - सिद्धान्त और समीक्षा पृ० - 356

14· एक कंठ विषपायी " पृ० - 77

वास्तव में यह शंकर के जीवन का विरोधाभास न होकर जीवन का नितान्त आधुनिक और सजग क्रम है ।"[15]

वे झूठे आदर्शों से लड़ने को तैयार हैं । तथा उन्हें त्यागने को तत्पर हैं :- " जिन आदर्शों ने / मुझे छला है कई बार

मेरा सुख लूटा है / अब उनसे लड़ना "

वे सती को लेकर वहाँ - वहाँ जाते हैं जहाँ उन्होंने सती के साथ विहार किया था । मोह अपनी चरम सीमा पर है वे युद्ध ठान लेते हैं । तृतीय नेत्र की ज्वाला में सब कुछ भस्म करने पर उतारू हैं -

"मैं सच कहता हूँ
महाकाल का ताण्डव फिर होगा
तीनों लोकों में मज्जा दिखेगी नहीं
केवल रुधिर होगा
...... और प्रिया ।"[16]

15· डा० कमला प्रसाद पाण्डेय-छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० - 35।

16· एक कंठ विषपायी - दुष्यन्त कुमार पृ० - 96

" प्रकारान्तर से वे देव लोक के प्रति आधुनिक मानव की भाँति प्रति-हिंसित एवं प्रतिशोध युक्त होकर देवलोक पर आक्रमण कर देते हैं । वस्तुत: समीक्ष्य कृति में तीन रूप शिव के हैं - एक परम्परा भंजक का, द्वितीय मानवीय संवेदना युक्त देवता का, तृतीय परम्परा ग्रस्त का । वास्तव में हर नई पीढ़ी पिछली पीढ़ी के प्रति विद्रोह करती है किन्तु पुराने उससे चिपके रहते हैं । जब हम स्वयं पुराने हो जाते हैं तो हमें नये विचारों और सिद्धान्तों से जूझना पड़ता है । विद्रोह आस्था जो युगों से चला आ रहा है ।"[17]

ब्रह्मा देवों के नायक एवं लोकतान्त्रिक मूल्यों के संरक्षक है..। क्षणिक घटनाओं से उत्तेजित नहीं होते । वे युद्ध को अनुचित मानते हैं । इन्द्र द्वारा सुझाये गये सुरक्षा प्रयत्नों को भी वह सत्य के पक्ष में स्वीकार नहीं करते हैं । उनका यह कथन उचित है -

"युद्ध अधिक से अधिक एक कारण है
उसको सत्य न माने / प्राणों की आहुति
युद्ध के लिए नहीं / सत्य के लिए होती है ।"[18]

17· हिन्दी गीत नाट्य-डा0शिव शंकर कटारे सिद्धान्त और समीक्षा पृ0-357
18· एक कंठ विषपायी - पृ0 - 115

परन्तु जब देश पर मंडराते हुए युद्ध के बादल, और देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न हो तब युद्ध को सामूहिक आत्मघात कहना तथा सत्य की दुहाई देकर शान्त रहना विवेकहीनता का परिचय देता है। ब्रह्मा निर्णय लेने में असमर्थ हैं :-

" आप सभी पहले अपना आवेश त्याग दो
बैठो शान्त भाव से मेरे पास
और यह निश्चय जाने
इस स्थिति में अगर युद्ध ही एक मात्र है समाधान
सबसे पहले मेरा रक्त गिरेगा भू पर युद्धस्थल में
सेना लेकर सबसे आगे मैं जाऊँगा।"[19]

युद्ध स्वयं में घृणित है परन्तु जब राष्ट्रीय सुरक्षा और कल्याण की भावना इसमें निहित हो तो इसकी चुनौती स्वीकार करना चाहिए।

काव्य में विष्णु उस मानव विवेक का प्रतीक है जिसके सक्रिय हो जाने से शंकर मोह मुक्त हो जाते हैं। वे दूरदर्शी एवं व्यवहारिक हैं। नारी के प्रति आदर भाव रखते हैं। सती के अपमान पर वे कहते हैं -

- -

19· एक कंठ विषपायी - पृ० - 110

" ....जिसमें नारी का पतिव्रत्य

सहन नहीं कर सका उपेक्षा उस शिव की

जो सार्वभौम / जगती में महासत्य

सारे ब्रह्माण्डों में सर्वोपरि

स्वयं पूर्ण ।"[20]

सर्वहत जब शोषण के खिलाफ न्याय (चुल्लू भर रक्त) माँगता है तब विष्णु पूर्ण आश्वस्त करते हुए कहते हैं -

न्याय करूँगा

चाहे शंकर मेरे कितने निकट मित्र हों

चाहें ब्रह्मा जी मेरे कितने अभिन्न हों

पर मैं अपना मत / सत्य पक्ष में दूँगा ।"[21]

वे शोषण के विरोधी हैं । कवि ने विष्णु जो पालन कर्ता हैं उनका चरित्र चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से किया है । वे ऐसी भूमिका निभाते हैं जो विश्वास

---

20 एक कंठ विषपायी - पृ0- 128

21. वहीं पृ0 - 128

करती है कि परम्परा का सम्मान करते हुए नये मूल्यों का प्रतिस्थापन होना चाहिए जिसमें समन्वय प्रमुख हो ।

"हर परम्परा के मरने पर थोड़े दिन तक
सारा वातावरण शून्य से भर जाता है
जो परम्परा के चरणों में नत मस्तक
उसका हर पोषक
सहसा मन में डर जाता है
अथवा आक्रमण या हिंसक हो उठता है ।" [22]

सम्पूर्ण कृति में विष्णु एक सफल सेनानायक के रूप में सामने आते हैं उनके चरित्र में उदारता, सत्यवादिता, स्पष्टवादिता, विवेक शीलता, न्याय प्रियता, व्यवहारिकता, हितैषणा आदि गुणों का समावेश है । परम्परा से मुक्ति दिलाने का कार्य विष्णु ही करते हैं। यद्यपि शंकर को कवि ने "एक कंठ विषपायी " कहकर उनकी सक्षमता बताई है परन्तु उनका परम्परा मोह तभी करता है जब विष्णु का बाण छूटता है । इस प्रकार शंकर ही विषपायी है स्वयं विष्णु ने उनकी शक्ति स्वीकार की है। वहीं शंकर को परम्परा

- -

22· एक कंठ विषपायी - पृ0 - 129

से मुक्ति दिलाना विष्णु की महत्ता को बढ़ाता है । स्वयं विष्णु कहते हैं -

" मैंने प्रणाम् बाण छोड़ा है

x x x x

शिव के कंधों पर पड़ी भगवती सती के /

शव को खण्ड खण्ड कर पल में

दिशा दिशा में बिखरा देगी

जहाँ - जहाँ वे खण्ड गिरेंगे / वहाँ सत्य के नये नये अंकुर उपजेंगे

और धर्म के तीर्थ बनेंगे ।"[23]

काव्य में " वीरणी " नारी पात्र है जो नायिका की भूमिका में है । वह स्त्री - सुलभ दया एवं ममता रखती है । जो उसे सामाजिक बन्धनों की पालना के लिए बाध्य करती है । वह पति के कृत्यों से चिंतित है -

आह ! समझ गयी / दुर्दिन जब आते हैं

तो पहले व्यक्ति का स्वतन्त्र बोध

चिन्तन और प्रज्ञा हर लेते हैं

अनायास मन की वैचारिक स्थितियाँ

23· एक कंठ विषपायी - पृ0 - 125

प्रतिबन्धित कर देते हैं

पार्श्व में प्रसंगों में / लघुता भर देते हैं।"[24]

सर्वहंत "एक कंठ विषपायी" का सबसे सशक्त पात्र है। उसके माध्यम से कवि ने उस जनता की मनःस्थिति का विश्लेषण किया है जो युद्धाक्रान्त हो पीड़ित एवं क्षुब्ध जीवन व्यतीत कर रही है। काव्य में उसकी भूमिका एक सेवक की है परन्तु सम्पूर्ण घटनाक्रम का यह भुक्त भोगी है। शिव एवं दक्ष के आपसी झगड़े का विस्तार एक विराट रूप धारण कर लेता है। युद्ध की घोषणा होती है और इच्छा होते हुए भी प्रजा को शासकों के आदेश का पालन करना पड़ता है। युद्ध की पीड़ा भोगनी पड़ती है -

" कौन कहता है

यहाँ कुछ भी नहीं है शेष

यहाँ शेष ही तो सबकुछ

सारे शहर में ताजा

जमा हुआ रक्त है

24· एक कंठ विषपायी - पृ० - 33

और सड़ी हुई लाशें हैं

मुड़ी हुई हड्डियाँ हैं ।

x x x

कंगूरे हैं / कला में

x x x x

सिर्फ लोग नहीं है तो क्या हुआ ?"[25]

" सर्वहत " के माध्यम से आधुनिक जनता की विसंगतियों, एवं जीवनगत विकृतियों को अभिव्यक्त किया है । शासक प्रजा पर मनमानी करते हैं और प्रजा सहती है । यही विवशता व कुंठा "सर्वहत " के माध्यम से प्रकट होती है -

" क्यों कि यह विधाता के नियमों की विडम्बना है

चाहे न चाहे / किन्तु शासक की भूलों का उत्तरदायित्व

प्रजा को वहन करना पड़ता है

उससे गलित मूल्यों का दण्ड भरना पड़ता है

और मैं मनुष्य ही नहीं

मैं प्रजा भी हूँ ।"[26]

25· एक कंठ विषपायी - पृ० - 45

26· वही पृ० - 49

प्रजा को शासकों के भय और अनेक प्रकार के अत्याचार सहने पड़ते हैं । वह भूखी रहती है एवं विसंगतियों का सामना करती है । " सर्वहित " के माध्यम से कवि ने यह भाव बोध कराया है । " भूख " दुनिया की सबसे कटु लेकिन यथार्थ सत्य है ।

"सर्वहित " में हिंसा भावना नहीं है परन्तु युद्धोपरान्त की ह्रास शील संस्कृति की आशंकाए और भय अवश्य है । वह विक्षिप्तों का आचरण करता है । वैसी ही मानसिक स्थिति से वर्तमान में कई लोग इसी विकृति को भोगते हैं ।

" दुनिया में सब भूखे होते हैं सब भूखे ...
कोई अधिकार और लिप्सा का /कोई प्रतिष्ठा का
कोई आदर्शों का/ और कोई धन का भूखा होता है -
ऐसे लोग अहिंसक कहाते हैं / मांस नहीं खाते
मुद्रा खाते हैं / किन्तु बन्धु
जीवन की भूख बहुत कम लोगों में होती है।"[27]

27· एक कंठ विषपायी - पृ0 - 51

युद्ध की विनाशी पीड़ा का दंश सहता हुआ " सर्जहत " पीड़ा का प्रतिरूप है । कवि ने उसके माध्यम से ही शासकों की क्रूरता, नृशंसता और साधारण जनों की उपेक्षा, सामाजिक स्वार्थ आदि अनेक वर्तमान जीवन की विसंगतियों की ओर संकेत किया है । उसके माध्यम से आधुनिक परिवेश की नयी समस्याओं और यथार्थ को उभारा है :

इन राज महलों से मोह
अब तोड़ना पड़ेगा मुझे
बहुत शीघ्र अब
यह नगर छोड़ना पड़ेगा मुझे
वरना क्या खाउँगा और पियूँगा कहाँ ?
ग्रहण करके छोड़ना कितना कठिन होता है ?

अन्य पात्रों में इन्द्र महत्वपूर्ण है । वे अधुनातन युद्ध पिपासु शासक के प्रतीक हैं । अहम्, उग्रता, क्रोध, एवं अधीरता उनके स्वाभाविक गुण हैं वे युद्ध को अन्तिम समाधान मानते हैं -

"जहाँ न्याय की हत्या हो
अन्याय सफल हो
- - - - - - - - - - - - - - -

वहाँ धैर्य का दुर्ग अन्तत: ढह जाता है

और एक मात्र उपाय युद्ध ही रह जाता है ।"[28]

आज के युग की मुख्य समस्या मूल्यों के विघटन कोलेकर है । युद्धोत्तर युग में यह मूल्यगत ह्रास हमें देखने को मिलता है । इससे एक ओर तो प्राचीन मूल्य मर्यादाओं के उमर से हमारा विश्वास हटने लगता है । दूसरे नये मूल्यों को स्वीकार करने में हम कोई स्पष्ट धारणा नहीं बना पाते । आज मानव अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों से ग्रसित है अत: एक ओर तो वह दिशा हीनता की ओर बढ़ता जा रहा है दूसरे उसका "व्यक्तित्व" दोहरे व्यक्तित्व " में बदल गया है । आज की सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं से वह इतना विघटित हो चुका है कि उसकी पीड़ा भोगने को अभिशाप्त हो गया है । आज मनुष्य की कथनी और करनी में कोई साम्य नहीं । " एक कंठ विषपायी " के शंकर भी आधुनिक मानव की इस पीड़ा से ग्रसित हैं - " करते हैं कुछ, कुछ करना चाहते हैं / अपनी प्रिया के सन्दर्भ में / दुहरा जीवन जीते हैं शिव शंकर ।"

इस काव्य में युद्ध की समस्या और समाधान तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की पुर्नव्याख्या की अभिव्यक्ति काव्य में सशक्त ढंग से हुई है । दुष्यन्त कुमार ने

- -

28· एक कंठ विषपायी - पृ0 - 104

वर्तमान समय की विभीषिकाओं, समस्याओं तथा उथल-पुथल को स्वयं देखा । समाज में हो रहे मूल्यों के ह्रास और परम्पराओं के खण्डन का वह स्वयं भोक्ता रहा है । आधुनिक मानव की इसी कुन्ठा, संत्रास , व पीड़ा को दुष्यन्त कुमार ने अपनी लेखनी से सशक्त वाणी दी है । यही कारण है कि एक कंठ विषपायी पौराणिक आख्यान होते हुए भी वर्तमान परिवेश से पूर्णरूपेण संयुक्त है । यह एक सफल रचना है जिसमें पठनीयता और अभिनेयता का समन्वय है । आलोच्य रचनाकार के मत में हर किसी को विवेकी बनने की या अपनी सत्ता को सामाजिक सत्ता में विलीन करने की अपेक्षा समाज के सर्वोच्च नेताओं द्वारा समझदारी से काम लेने से दुनिया का महाविनाश टल सकता है । यह श्रेय शंकर को मिलता है इसीलिए वे " एक कंठ विषपायी " कहलाते हैं क्योंकि उनमें दुःख का गरल पी जाने की असीम सम्भावना है । विष्णु की व्यवस्था सिद्ध करती है कि सृष्टि में पुरातन का विनाश और नूतन की स्थापना को स्वीकारना विकल्प-हीन मार्ग है । ऐसे परिवर्तन के लिए सर्वनाश होना अनिवार्य नहीं है । कवि ने अत्यन्त सशक्त माध्यम से अपनी बात जन मानस तक पहुँचाई है । कतिपय दुर्बलताओं के पश्चात भी " एक कंठ विषपायी " आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है जो नये सत्य की सृजन व्यथा को व्याख्यायित करती है ।

एक पुरुष और

" संशय की एक रात", " अंधायुग", "एक कंठ विषपायी" की तरह डा0 विनय कृत " एक पुरुष और " की पृष्ठभूमि में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दो महायुद्धों की विनाश लीला तथा राष्ट्रीय स्तर पर स्वातंत्र्योत्तर भारत की परिस्थितियों में उत्पन्न विघटन, संत्रास, कुण्ठा, प्रतिशोध एवं असंगति की स्थितियां हैं । यह आज के जीवन के सन्दर्भ में एक सार्थक रचना है । आज के जीवन के दो आयाम है, प्रथम सामाजिक समस्याओं की पहचान और उनसे जूझते हुएएक ही सही विकल्प की खोज, {2} व्यक्ति के अस्तित्व का प्रश्न । वास्तव में एक ओर मार्क्सवादी तथा दूसरी ओर मनोविश्लेषणवादी एवं अस्तित्ववादी चिन्तकों ने हमारे आज के जीवन के इन दोनों ही आयामों को अपने अपने ढंग से पहचानने का प्रयत्न किया है । " एक पुरुष और " वास्तव में एक ऐसी काव्य कृति है , जो आज के सामाजिक सन्दर्भों से टकराती हुई मूलतः व्यक्ति के अस्तित्व मूलक संकट से जूझकर किसी विकल्प की खोज करती है । अस्तित्व का संकट केवल भौतिक स्तर का नहीं है वरन् मानसिक भी है, दूसरे शब्दों में जिसे मानव की अस्मिता का संकट भी कह सकते हैं । प्रत्येक युग में परम्परागत जड़-मूल्यों ने जब जीवन के सहज - स्वच्छ प्रवाह को रोकने या अवरुद्ध करने की कोशिश की है, तभी कोई न कोई मूल्यान्वेषक उस प्रयास को नाकामायाब कर अपने

जिजीविषा के संघर्ष - प्रयासों के द्वारा नवीनजीवन्त मूल्यों को पुन स्थापित करने में सफल रहा है । अस्तित्व का यह संकट आज के यंत्र - युग में अपेक्षाकृत और भी अधिक गहरा हो गया है । इसी - अस्तित्व के संकट " को कवि ने विश्वामित्र एवं मेनका के माध्यम से व्यक्त किया गया है । अपने प्रतिपाद्य के बारे में " विनय भूमिका में संकेत करते हैं - " आज की शब्दावली में जिसे अस्तित्व का संकट ﴾ क्राइसेस आफ आइडेन्टिटी ﴿ कहा जाता है । वह उतनी ही प्रबल मात्रा में प्रत्येक युग में रहा है और यह जाँच पड़ताल व्यर्थ नहीं कि अतीत में अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्तियों के जीवन में आने वाला यह अस्तित्व संकट किस प्रकार समाप्त हुआ - हुआ भी या नहीं ? विश्वामित्र के चरित्र में अस्तित्व की रक्षा के लिए जूझने का सर्वाधिक प्रामाणिक और सहज मानवीय प्रयास दृष्टिगोचर हुआ । इसीलिए मैं जो कुछ भी, आज के मानव - संघर्ष के विषय में कहना चाहता था, उसे विश्वामित्र और मेनका के माध्यम से कहकर मानव के काल निरपेक्ष संघर्ष की अभिव्यक्ति करते हुए सामयिक प्रश्नों के विषय में भी अपने रचनाकार की भूमिका अदा करता रहा हूँ ।[1] उपर्युक्त पंक्तियों से लक्षित होता है कि कवि द्वारा प्रस्तुत समस्या सामयिक है लेकिन वह उस समस्या

- -

1· डा0 विनय, एक पुरुष और - भूमिका से उद्धृत ।

सामयिक है लेकिन वह उस समस्या के काल - निरपेक्ष रूप को प्रस्तुत करना चाहता है ।

कवि परम्परागत रूढ़ मूल्यों के विखण्डन एवं सामयिक महत्व के जीवन-मूल्यों की स्थापना को रचना - दायित्व मानता है । " एक पुरुष और " के विश्वामित्र संघर्षों से जूझते हुए दिखाई देते हैं -

" मेरे सहभोग में तुम - मात्र अप्सरा
देवताओं की भोग्या ही नहीं रही
नई पीढ़ी को जन्म देने वाली नैतिकता
एक पूर्ण स्त्री हो । निर्माण की शक्ति
और मैं .... पूर्ण पुरुष बन गया हूँ -
ऊहा पोह चुक गया है मेरे भीतर
तुम पूर्ण नारीत्व को प्राप्त हुई हो
तुम्हे - अपने में समेट कर मैने पा लिया है पूर्ण पुरुषत्व ।"[2]

नारी और पुरुष का एकात्मीकरण ही पूर्णता को प्राप्त करना है

- -

2· एक पुरुष और - पृ0 - 155

जीवन मूल्यों की संघर्ष यात्रा इसी पूर्णता को प्राप्त करने की यात्रा रही है । परन्तु " एक पुरुष और " में यह सवाल उठाया गया है कि क्या प्रत्येक नारी सचमुच प्रत्येक पुरुष में अपने को उतार देती है और नारी से भागकर कोई पुरुष अपने को पूर्ण कर पाया है । इन सवालों का जवाब लेने से पहले अतीत में झांकना आवश्यक है । सामंतवादी मूल्यों और आभिजात्य संस्कारों में डूबे हुए मनुष्य ने नारी को एक जागीर की तरह भोगा है । लेकिन उसका स्वार्थ लोलुप वैयक्तिक मन सामाजिक सुरक्षा के प्रश्न द्वारा अपना अस्तित्व संकट में पड़ते देख कर इसी नारी को दूसरों पर विजय प्राप्त करने के लिए अपने शोषण का शिकार बनाता है । इस रचना में यह समस्या पूरे आवेग के साथ मुखरित हुई है । इन्द्र देवताओं का ऐसा वर्ग प्रतिनिधि रहा है जिसने अपने अस्तित्व को जब भी संकट में पाया, है देव लोक की अप्सराओं को अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए खुले आम मनमाने ढंग से उपयोग किया है । विश्वामित्र विद्रोही थे । वे राजा से तपस्वी हुए और तपस्वी हो उन्होंने स्वर्ग को आतंकित किया । इन्द्र ने उनका तप भंग करने के लिए मेनका को भेजा और उसने विश्वामित्र का तप भंग किया । फलस्वरूप शकुन्तला का जन्म हुआ । इन पौराणिक प्रसंगों को कवि ने केवल माध्यम के रूप में स्वीकार किया है, अतः

अनुभूतियों एवं चिन्तन के बीच इनका संकेत मात्र कर दिया है । " वाल्मीकि रामायण [3] एवं महाभारत [4] के उल्लेख के अनुसार राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र कई वर्ष तक राज्य करने के पश्चात सेना सहित पृथ्वी की परिक्रमा करने के लिए निकलते हैं । मार्ग में वे वशिष्ठ मुनि का आतिथ्य ग्रहण करते हैं । वशिष्ठ के पास कामधेनु है एक ऐसी गाय जिसके माध्यम से अपनी समस्त इच्छाओं को पूरा किया जा सकता है । विश्वामित्र उसे प्राप्त करना चाहते हैं चाहे उन्हें इसके लिए शस्त्रों का प्रयोग क्यों न करना पड़े । कामधेनु प्राप्त करने की लालसा में वे युद्ध को तत्पर हो उठते हैं परन्तु उन्हें कामधेनु के सैनिकों से पराजित होना पड़ा 2 अपनी क्षात्रशक्ति को पराजित देखकर विश्वामित्र को यह अनुभव होता है कि ब्राह्मणत्व अर्थात् तपस्या की शक्ति प्रबल अधिक है। वे राज्य का त्याग करके ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए तप करने चले जाते हैं ।

इस पौराणिक कथा में रचनाकार नवीन अर्थ का संधान करते हैं । प्रतीकात्मक अर्थयोजना के अनुसार वशिष्ठ से विश्वामित्र का संघर्ष कुंठा हताशा, विघटन एवं संत्रास के मध्य आधुनिक मानव का संघर्ष है । पराजित विश्वामित्र

3· वाल्मीकी रामायण, बालकाण्ड, सर्ग - 52-57 ।

4· महाभारत, 40,43 शान्ति पर्व, 141, दान धर्म पर्व - 41

अपने अस्तित्व के प्रति शंकाग्रस्त होकर तपस्या की ओर उन्मुख होते हैं। कथा का यही वह सार्थक बिन्दु है जहाँ रचनाकार विश्वामित्र के माध्यम से "अस्तित्व के संकट" की अर्थ योजना करता है। मानव के मन में अस्तित्व के संकट का बोध भीषण संघर्ष की स्थिति में उत्पन्न होता है। रक्तपात, प्रतिहिन्सा जैसी अमानवीय घटनाएं सदैव से मानवता के समक्ष प्रश्नचिन्ह लगाती रही है। आधुनिक विश्व मानव के समक्ष अस्तित्व के संकट की स्थिति उत्पन्न करने वाली सबसे बडी घटनाएं हैं - दो महायुद्ध से उत्पन्न विनाश। वास्तव में यूरोप में अस्तित्व वाद का जन्म दो महायुद्धों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। "एक पुरुष और" के माध्यम से डा0 विनय वर्तमान युग के आम आदमी के संकट को और साथ ही साथ सामाजिक नैतिक मूल्यों के लिए टकराव को प्रस्तुत करते हैं। कवि ने स्वीकार करते हुए कहा है -" "एक पुरुष और" का वैचारिक धरातल आधुनिकता की चेतना में आज के मनुष्य की उस द्विधा का चित्रण भी करता है, जिसमें वह अप्राप्तियों की वेदना झेलते हुए अन्दर बाहर के संघर्ष से जूझते हुए आत्मबोध से जन्में आचरण के प्रति प्रश्नाकुल होता है।··· इसे हम कोई भी नाम दें, लेकिन प्रत्येक युग में व्यवस्था दमन की नीति पर चलती रहती है और उसका विरोध करने के लिए जागरूक व्यक्तियों ने यथा-

स्थिति के विकल्प में नई स्थितियों का निर्माण किया है । यह निर्माण संघर्ष की अनेक मुखी तथा व्यापक भूमिका में यंत्रणा झेलते हुए आन्तरिक ऊर्जा से होता है । और आज का विघटन, संत्रास, प्रतिशोध, असंगति के वातावरण में मनुष्य की आन्तरिक ऊर्जा का स्मरण अपनी पहचान के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कभी रहा है ।"[5] अस्तित्व संकट से जूझने के लिए सर्वाधिक आवश्यक है अपनी शक्ति को पहचानना । अपने अन्दर संघर्ष करने की शक्ति का संचयन करके शोषणवादी राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था के जाल को तोड़कर नवीन मूल्यों की स्थापना करना । प्रस्तुत रचना में मानव के संघर्ष संकल्प की इस अन्तर्यात्रा की अभिव्यक्ति विश्वामित्र की तपस्या के माध्यम से हुई है । पराजित विश्वामित्र अपने राजर्षि रूप के प्रति प्रश्नाकुल हो उठते हैं -

"उसने इससे पहले भी कई बार
अपने आप से पूछा था
कि क्या होगा वैभव के बीच
कपड़े पहनकर खड़ा होने से

---

5. एक पुरुष और - पूर्व कथन से उद्धृत

क्या होगा देर तक धारण करने से

एक कटीला मुकुट ।"[6]

जब भी कोई आदमी स्थापित मान्यताओं के खिलाफ आवाज बुलन्द करता है और पारम्परिक दृष्टि को एक नयी दृष्टि देना चाहता है तो वह अचानक अपने सामने पूरे समूह को खड़ा हुआ पाता है । स्थिति यह होती है कि पुरातन को हटाकर नवीन की स्थापना करने वाले को समाज स्वीकार नहीं करता । एक अजीब कोलाहल पूर्ण संघर्ष जन्म लेता है । अपूर्णता का बोध, असुरक्षा का तनाव ही प्रज्ञावान व्यक्ति को सत्यान्वेषण तथा मूल्यान्वेषण की नयी दिशाओं की ओर प्रेरित करता है । विश्वामित्र वाह्यजगत की असफलता से प्रेरणा ग्रहण करके साधना के माध्यम से अन्तर्जगत पर विजय प्राप्त करने के लिए मुड़ते हैं । उस अन्तर्जगत में न वैभव, है, न राज्य है और न रक्तपात है । वे अपने अन्दर ऐसे अभिभक्त पुरुष की तलाश का प्रयत्न है जो इतिहास की दिशाओं को बदल देने की शक्ति रखता हो -

" कदाचित मैं भी पा जाऊँ एक दृष्टि

जो भीतर की यातना को खोल दे अनायास

6· एक पुरुष और , पृ० - 14

जन्म ले सके एक अविभक्त मनुष्य

पिंजर में उभर आए एक जीवन "[7]

विश्वामित्र की यह अन्तर्यात्रा स्वतत्व के विकास के लिए है । व्यक्तित्व स्वार्थ के घेरे को तोड़कर इतिहास के विकास के प्रति समर्पण है -

"खींच लूँगा यह अस्थि

अपने ही शरीर से

और कर दूँगा समर्पित

इतिहास के विकास को ।"[8]

" एक पुरुष और " का तीसरा महत्वपूर्ण कथाबिन्दु है मेनका द्वारा विश्वामित्र की तपस्या का भंग करना । पुरा कथा के अनुसार यह घटना तपस्या और संयम पर सौन्दर्य एवं काम की विजय का द्योतक है । कवि विनय ने विश्वामित्र के इस चरित्र स्खलन के आधुनिक चिन्तन के सन्दर्भ में नवीन अर्थवत्ता प्रदान की है । मेनका के सौन्दर्य का आकर्षण विश्वामित्र के अन्दर एक पुरुष को जन्म देता है । वह मेनका को पाने और भोगने में अपराध- बोध या पाप-

- -

7· एक पुरुष और , पृ० - 18

8· एक पुरुष और , पृ० - 22

बोध अनुभव नहीं करता वरन् वह इसे जीवन का स्वस्थ भोग मानता है। जीवन के स्वस्थ भोग से ही व्यक्ति का जीवन अस्तित्ववान होता है और दूसरों का अस्तित्व दिया जा सकता है। व्यक्ति जीवन से प्रतिबद्ध होकर ही जीवन से मुक्त होता है और सार्थकता प्राप्त करता है। यह जीवन, धरती का स्वस्थ भोगमय जीवन ही सत्य है, वह अविभाजित सत्य है। विश्वामित्र द्वारा मेनका की स्वीकृति उनकी पराजय नहीं है, उनकी विवशता भी नहीं है। सत्य तक पहुँचने की एक यात्रा है -

"सत्य को पाने के लिए कई बार
गुजरना पड़ता है गुनाहों के कोटरों से।"

x x x x

यथार्थ को स्वीकार करना
विवशता नही
एक तेजोदीप्त - व्यक्तित्व की आकांक्षा
करना है।"[1]

---

1. एक पुरुष और - पृ० - 121

विश्वामित्र मेनका को स्वीकार करके जीवन तथा जगत के प्रति सहज समर्पण करते हैं । उनके अन्दर एक अन्य पुरुष जन्म लेने लगता है । जो न तो ब्रह्मर्षि है न राजर्षि है । वह मात्र एक पुरुष है । वे मेनका से पूछते हैं -

" कितनी अजीब बात है मेनका
कि तपस्या रत मैं
अन्तरोन्मुख मै
और नींद देवताओं की उड़ रही थी
पानी सूखरहा था स्वर्ग का
क्या व्यक्ति केवल अपनी पहचान के लिए
करवट नहीं बदल सकता ?" [10]

विश्वामित्र मेनका से स्पष्ट रूप से कह देते हैं कि स्वर्ग के अधिकारी यह सोचते हैं कि तुम्हें भोगने से मेरा तप भंग होगा और मैं अपने ही घर पदच्युत हो जाऊँगा -

" मेरे तेज से निकलती एक रेखा
खिंच जाएगी सारी व्यवस्था पर

- -

10· एक पुरुष और - पृ0 - 136

जिसने अब तक मेरा और तुम्हारा

शोषण किया है -

सोचते होगे स्वर्ग के अधिकारी

मेरे तप भी भंग होगा

मैं हो जाऊँगा पदच्युत अपने ही घर में .....

लेकिन यह सम्भव नहीं है

क्योंकि मैं तप के सम्पूर्ण संचय को

तुम्हारी आत्मा में उतार दूँगा

तुम्हारे आने से मेरी साधना की एकान्तता

केवल अपने लिए न होकर

एक पूरे युग को समर्पित होगी ।"[1]

विश्वामित्र की वाणी अस्मिता के लिए संघर्ष करते आज के आदमी का स्वर है । संघर्षशील आज का आदमी अपराजित है । अतः विश्वामित्र को

---

1. एक पुरुष और - पृ० - 19

भी कोई परास्त नहीं कर सकता -

"विश्वामित्र कभी पराजित नहीं होता

मैं कहता हूँ वशिष्ठ और कालजयी मानवों से

विश्वामित्र बार - बार जन्म लेता है युगों को चीर कर

विश्वामित्र एक राजा

विश्वामित्र एक तपस्वी - ब्रह्मर्षि

और इन सबसे ऊपर

विश्वामित्र मेनका की पुत्री का पिता

स्वर्ग का निर्माता नहीं

त्रिशंकु का पुरोहित भी नहीं

धरती के सत्य - नये रक्त का

एक जन्मदाता

आत्म तत्व को अपने विकास के साथ

जोड़ देने वाला एक पुरुष

एक पुरुष और ।"[12]

12· एक पुरुष और = पृ० - 158

विश्वामित्र की मान्यता है कि सत्यार्थ प्राप्ति के लिए क्रान्ति को भी चुना जाना आवश्यक है । आज का आदमी संघर्ष के उस दौर से गुजर रहा है जो असंतोष का परिणाम है । यह यंत्रणा उसकी अन्तरोन्मुखी चेतना को युग सत्य और जीवन यथार्थ के निकट लाती है इसलिए विश्वामित्र घोषित करते हैं ।-

"घोषित करता हूँ विश्व के सामने
कि विश्वामित्र और मेनका की समानान्तरता
धरती और आकाश
यथार्थ और स्वप्न
दोनों अपूर्णताओं को मिलाने का बिन्दु है ।"[13]

मेनका " एक पुरुष और " कृति में यंत्रणायुक्त नारीत्व का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत की गयी है । वह सार्थक जीवन जीना चाहती है । देवलोक में उसका सौन्दर्य सार्थकता पाता है । लेकिन उसके व्यक्तित्व के अन्य पहलू - उसका मातृत्व, पत्नीत्व सबसे मुख्य उसका स्त्रीत्व उपेक्षित रह जाता है । कविने मेनका को आकाश या स्वर्ग का प्रतीक मानकर धरती के प्रतीक से जोड़ने और स्वर्गीय आदर्श तथा जागतिक यथार्थ को मिलाकर सम्पूर्ण सत्य पाने का प्रयत्न नहीं किया है । मेनका तो व्यवस्था द्वारा प्रताडित एक ऐसी नारी है, जिसका व्यक्तित्व

- -

13. एक पुरुष और, पृ0 - 140

छीनकर उसे मात्र शोषण तथा षड्यंत्र का माध्यम बना दिया गया था । वह यातना का प्रतीक है और विश्वामित्र प्रतीक है संघर्ष तथा ऊर्जा के । सामाजिक यातना और संघर्ष एक दूसरे के पूरक हैं । दोनों मिलकर एक बड़े सत्य की प्राप्ति करते हैं । यातना संघर्ष को मानवीय पीड़ा और मूल्य देती है । और संघर्ष यातना को सामाजिक शक्ति देता है । दोनों मिलकर ही नयी सृष्टि करते हैं एक सुन्दर और मंगलमयी सृष्टि । मेनका आधुनिक जागृत नारी की तरह, जीवन की सार्थकता पाने के लिए विद्रोह करती है । वह उन परम्पराओं को तोड़ना चाहती है , जो नारी को उसके नारीत्व से वंचित करके केवल भोग का माध्यम बनाकर रखना चाहती है । एक विद्रोहिणी नारी के रूप में वह समाज के ठेकेदारों को सीधे चुनौती देती है -

" एक क्रोधित बिल्ली
बैठ गयी है मेरे भीतर
और मैंने पूरे आकाश को बेध दिया है
नुकीले पंजों से · · · · · खरोच कर ।"[14]

14· एक पुरुष और - पृ० - 70

मेनका कहती है कि सीधे रास्तों पर चलकर जिया भी जा सकता है और उन पर भवन भी खड़े किये जा सकते हैं लेकिन गलते हुए हाथों से पत्थर उठाना और उन्हें अदृश्य दिशाओं में फेंक देना, सचमुच कठिन ही नहीं, सुख मिश्रित आनन्द की प्राप्ति भी है। उत्तेजना सारे सम्बन्धों को धूमिल कर देती है। आदर्श और परम्पराएं युग - सापेक्ष्य रहकर ही जीवित रह सकती हैं। सृजन - प्रक्रिया प्रवंचना की नहीं वन्दना का विषय है क्योंकि सृजन की कोई भी प्रक्रिया अवैध नहीं होती। "एक पुरुष और" की मेनका स्वर्ग की राज्य व्यवस्था की विसंगतियों को पहचानती हुई अपने को उसके षड्यंत्र और शोषण का एक व्यक्तित्वहीन पुर्जा बनाने से इनकार करती है। वह कहती है "बंधे बंधाए नियमों में बंध कर कुत्ते, बैल और भेड़ों का समूह तो चल सकता है लेकिन आदमी नहीं। क्योंकि मानव ही एक मात्र ऐसा प्राणी है जो अपने वक्त के हमेशा आगे रहता है और जो वक्त से आगे होता है उसके लिए कोई नियम नहीं होते। समाज नियमों का नियामक होता है लेकिन वही सामाजिक नियम, परम्पराएं और मान्यताएं यदि व्यक्ति की प्रगति में बाधक होती है तो हर युग में किसी एक और पुरुष ने जन्म लिया है और साथ ही साथ एक और नारी जन्म लेती है।"[15] जो निर्भीकता के साथ कहती है -

---

15. डा0 सरोज पंड्या - नई कविता की प्रबन्ध चेतना (निबन्ध -एक पुरुष और मूल्यान्वेषण की संघर्ष यात्रा पर) पृ0-128

"लेकिन .... आज मैं हर्ष के साथ -

उद्घोषित करती हूँ कि मैं नारी हूँ

स्मृतियों के उपदेश तुम्हारे लिये नहीं

मेरे लिये हैं .....

लेकिन मैं जला देना चाहती हूँ तमाम

ग्रन्थों को

जो षड्यन्त्र की उपज है

जिन्हें पुरुषों ने मिलकर आकार दिये

पूत - मन्त्रों और श्लोकों में "[16]

मेनका की दृष्टि में मानवीय नैतिकता एक ढकोसला मात्र रह जाता है वह विश्वामित्र का आह्वान करती हुई कहती है -

" तुम चुप क्यों हो महामुने ....

तोड़ते क्यों नहीं शताब्दियों का चक्रव्यूह

अपनी हुंकारों से

काट क्यों नहीं देते आवरण की लकीरें

द्वन्द्व ग्रस्त अपने मन को .....

उड़ाओं आकाश में मुक्त ....

16· एक पुरुष और , पृ० - 123- 124

और कुछ देर के लिए चलो ....

जहाँ चिपके हुए पत्थरों की दुर्गन्ध

बाधित न होने पाये

इस अनाम समर्पण में।"[17]

मेनका परम्परा भंजक नारी के रूप में चित्रित की गयी है, जो आधुनिक नारीकी चेतना का सही प्रतिनिधित्व करती है । वह उन मान्यताओं को तोड़ना चाहती है जो नारी की प्रगति में अवरोधक है इसीलिए वह व्यवस्था के ठेकेदारों को चुनौती देती है और व्यंग्य बाणों को तेज प्रहार, व्यवस्था की खोखली मान्यताओं को छिन्न - भिन्न करने के लिए करती है और कहती है -

"यहाँ रहने से शायद

कलंकित हो जाएगा तपोवन.....

झुलस जायेंगे नियम उपनियम

एक मुक्त प्रेम की गन्ध से

कितना छल लेती है मान्यताएं

कितना धोखा देते हैं संस्कार

---

17. एक पुरुष और, पृ0 - 124

वे बना देते हैं आदमी को पति

स्त्री को पत्नी

और सन्तानों के मस्तक पर

दोनों का नाम जोड़कर

चिपका देते हैं एक पट्टा .....

.... सिर्फ दूध पीने के लिए "[18]

मेनका के इस व्यंग्य में उसकी व्यथा छुपी है क्योंकि नारी यदि किसी के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है तो समाज उसे अवैध कहता है परन्तु नारी की इच्छा के विरुद्ध छल से या बलपूर्वक या व्यवस्था में सामाजिक स्वीकृति के नाम पर उसका पालक पिता नाम का प्राणी उसे जानवर की तरह किसी दूसरे के साथ बांध देता है, जहां पर उसका शोषण होता है तो यही समाज उसे वैध मानता है । कवि ने प्रश्न उठाया है कि क्या मानसिक स्तर पर सौंपा हुआ व्यक्तित्व, "भावुकता पूर्ण लिये गये निर्णय " अवैध होते हैं ? क्या नारी के लिए पत्नी और पुरुष के लिए पति होना जरूरी है ? मेनका का विद्रोह फलीभूत होता है वायवी से मानवी बनने में । वह स्वर्ण के घेरे का

- -

18· एक पुरुष और, पृ0 - 124

अतिक्रमण करके मातृत्व का भार ग्रहण करती है । विश्वामित्र उसे केवल मातृत्व ही नहीं बल्कि पत्नीत्व तथा नारीत्व भी प्रदान करते हैं -

" मैं तुम्हें आश्रय दूँगा - पत्नीत्व और सौभाग्य
मात्र शब्दों का नहीं - आचरण का
और पाऊँगा तुमसे - सब कुछ
जो एक स्त्री देती है पुरुष को
सहचरी बनकर - एकान्त में
यज्वाला की प्रदक्षिणा के बाद ।

x x x x

चिन्ता से सिर मत झुकाओ मेनका
कि तुमने तप भी किया है
गर्व से सिर ऊँचा करके महसूस करो
अखंड मातृत्व / अखंड सौभाग्य ।"[19]

डा० विनय की " एक पुरुष और " पर दिनकर की "उर्वशी" की छाप स्पष्ट लक्षित होती है । विश्वामित्र और मेनका का मिलन केवल स्त्री-पुरुष

19· एक पुरुष और - पृ० - 158

का मिलन नहीं है, जीवन में पूर्णता की प्राप्ति का प्रयास भी है । स्वर्ग लोक की मेनका जीवन के स्वप्नों की प्रतीक है, विश्वामित्र जीवन के यथार्थ के । जीवन में पूर्णत्व के लिए विश्वामित्र एवं मेनका का यह युग्म आकाश और पृथ्वी यथार्थ और स्वप्न की युक्ति को प्रतिबिम्बित करता है -

"घोषित करता हूँ विश्व के सामने
कि विश्वामित्र और मेनका की समानान्तरता
धरती और आकाश
यथार्थ और स्वप्न
दोनो अपूर्णताओं को मिलाने का बिन्दु है ।"[20]

रचनाकार ने इस कृति में व्यवस्थावादियों पर इन्द्र के माध्यम प्रहार किया है जो सत्ता से चिपके रहना चाहते हैं । विश्वामित्र ने इस आडम्बर पूर्ण, प्रपंची व्यक्ति का स्वरूप को बेनकाब करते हुए कहा है -

" उसे नारियाँ अच्छी लगती हैं पुरूष भयानक
वह उन तमाम पुरूषों को वज्र से ध्वस्त कर देगा जो
उसके शासन को बर्दाश्त नहीं करेंगे ।

- -

20· एक पुरूष और , पृ0 - 140

उन तमाम कीलों को उखाड फेंकेगा

जो उसके शासन के इर्द- गिर्द । गाद दी गयी है ।"[21]

" एक पुरूष और " में चौथे कथाबिन्दु के अन्तर्गत " डोलता कल्पवृक्ष" और " षड्यन्त्र की साया में " शीर्षक में विश्वामित्र की तपस्या से भयभीत इन्द्र का चरित्र किसी भी देश एवं काल के सत्ता लोलुप शासक का प्रतिनिधित्व करता है । विशेष रूप से आपात काल से पूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति का प्रक्षेपण प्रतीत होता है । पुरा कथाओं तथा महाभारत में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि किसी भी मनुष्य देव और दानव की तपस्या से इन्द्र भयभीत हो जाया करता था । कवि ने इन्द्र के भय के माध्यम से आपातकाल के पूर्व के सत्ताधारी राजनीतिज्ञों की असुरक्षा जनित व्याकुलता को प्रतिबिम्बित करता है -

"अमृत हृद से महल

महल से इन्द्र वन तक

कल्पवृक्ष के शिखरों पर चढ़ा हुआ

भूकम्प उसकी शिराओं को मथने लगा ।"[22]

21· एक पुरूष और , पृ0 - 56- 57

22· एक पुरूष और , पृ0 - 49

में नहीं चाहता

कि निर्वासित हो जाऊँ अनायास

और बिठा दिया जाऊँ

एक कोने में शक्ति हीन

निगल लिया जाऊँ किसी अँधेरे के द्वारा ।"[23]

x x x x

यह कैसे हो सकता है कि आज्ञाकारी

आज्ञा देने के अधिकारी हो जाएं ।"[24]

x x x x

लेकिन अदना मनुष्य

मसीहा नहीं बन सकता ।"[25]

कवि ने उपरोक्त कथनों के माध्यम से पुराण कथा से आधुनिक राजनीतिक वातावरण को दर्शाया है । हालांकि शासक और शासित, शोषक

- -

23· एक पुरुष और , पृ0 - 47

24· एक पुरुष और , पृ0 - 57

25· एक पुरुष और , पृ0 - 48

और शोषित के मध्य का अन्तर मात्र वर्तमान युग का नहीं है, वह काल निर्पेक्ष है । सदैव से मानव समाज विशिष्ट और समान्य के बीच में बंटा हुआ है । एक वर्ग अभिजात्य लोगों का है जो स्वर्गिक सुखों से मंडित है, दूसरा वर्ग उन लोगों का है जिसकी वजह से प्रथम वर्ग सुख सुविधा उठा पाता है यह वर्ग साधारण जन का है । उच्च वर्ग, साधारण जन की मेहनत का लाभ उठाता है वह सुविधा भोगी तथा सत्ताधारी है तथा बना रहना चाहता है । अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए सामान्य जन का शोषण करना ही इस वर्ग का धर्म हो गया है साथ ही उसकी सुरक्षा का उपाय भी है । इन्द्र ऐसे ही सामन्तवादी शोषक तथा सत्तालोलुप वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । विश्वामित्र पृथ्वी के निवासी होने के कारण सामान्य जन के प्रतीक हैं । स्वर्ग के देवताओं की विलासिता ने अपनी क्रूरता और निरकुंशता से मानव या साधारण जन को अनगिनत बार प्रताडित किया है । तथाकथित महान देव पत्नियों ने कुमारियों का असंख्य बार शील भंग किया है । इन देवताओं, शासकों तानाशाहों की महत्वाकांक्षाओं पर इस साधारण जन को बलिदान होना पड़ा है -

"उन्हें यह भी मालूम था कि -

स्वर्ग का गंदा - रक्त बहा दिया गया था

धरती की गुफाओं में -

निर्वासित कर दिये थे पूज्य
रसातल के जंगलों में ।"[26]

परन्तु जब अत्याचार की पराकाष्ठा हो जाती है तो शोषण तथा दमन की प्रक्रिया उलट जाती है और जन क्रान्ति हो जाती है । " एक पुरुष और " में विश्वामित्र की तपस्या को जन क्रान्ति के रूप में देखा गया है -

"इन्द्र ने ऊपर से झाँककर नीचे देखा
एक जन का आन्दोलन
धीरे - धीरे ऊपर उठ रहा है .....
कितना सिमट गया है आकाश
एक अदना आदमी की उँगली
उसे हिलाने के लिए समर्थ है
धराशायी होगा यह साम्राज्य
और फहरेंगी पताकाएँ जन की
यह आन्दोलन दबाया नहीं जा सकता
मारक शस्त्रों से ।"[27]

- -

26· एक पुरुष की ओर , पृ0 - 50

27· एक पुरुष की ओर , पृ0 - 58

कवि . विनय ने विशेष मन: स्थितियों के चिन्तनात्मक और संवेदात्मक आवर्तों की बहुत प्रभावशाली अभिव्यक्तियों को अपने काव्य में लक्षित किया है। कवि ने नये नये बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से आज की संवेदना और चिन्तना के संश्लिष्ट रूप की अभिव्यक्ति की है । किसी रचना-कार के रचना कौशल सूक्ष्म चिन्तन एवं संवेदना का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि प्राचीन कथाओं के अन्दर नवीन अर्थ की सम्भावनाओं को उजागर करे । उसे आधुनिक वाणी प्रदान कर वर्तमान का स्वरूप प्रस्तुत करने के योग्य बनाएं । विश्वामित्र तथा मेनका की कथा को डा० विनय ने " एक पुरूष और " में आधुनिक संवेदनाओं से ओत-प्रोत कर कथा को नवीन अर्थवत्ता प्रदान की है । " एक पुरूष और " के लिए यह कहा जाय कि यह नयी कविता के प्रबंध काव्यों में सात्त्विक उपलब्धि है तो अतिशयोक्ति नहीं होगा ।

xxxxxxxxx

अंधायुग की भाषिक संवेदना

"अन्धायुग" धर्मवीर भारती एवं आधुनिक एवं सर्जनात्मक संवेदना का निरूपक काव्य नाटक है । अंधायुग में कवि ने महाभारत के युद्ध का आश्रय लेकर युद्ध की विभीषिका तथा उसके परिणाम को दर्शाया है । वस्तुत: युद्धोपरान्त समाज में व्याप्त अनास्था, अविश्वास, अमर्यादा, गिरते हुए मानवीय मूल्यों, प्रतिशोध एवं सद्भाव आदि वृत्तियों को जीवन में प्रतिष्ठित करना ही कवि का मूल उद्देश्य रहा है । भारती जी ने मूलत: "अंधायुग" में किसी प्रकार की रूढ़िवादिता का परिचय न देते हुए अन्तत: जीवन के शाश्वत एवं सामयिक मानदंडों के प्रति ही अपनी आस्था व्यक्त की है । कार्लमार्क्स का कथन है, "सभी मृत पीढ़ियों की परम्परा जीवित मानव के मस्तिष्क पर एक दु:स्वप्न के समान सवार रहती है, और ठीक ऐसे समय जब ऐसा लगता है कि वे अपने को तथा अपने इर्द-गिर्द की सभी चीजों को क्रान्तिकारी रूप से बदल रहे हैं और किसी ऐसी वस्तु का सृजन कर रहे हैं जिनका आज तक अस्तित्व न था, क्रान्तिकारी संकट के ठीक ऐसे अवसरों पर वे अतीत के प्रेतों को अपनी सेवा के लिए उत्कंठा पूर्वक बुलावा दे बैठते हैं और उनसे अतीत के नाम, अतीत के रणनाद और अतीत के परिधान मांगते हैं ताकि विश्व इतिहास की नवीन रंगभूमि को इस प्राचीन सम्मानित वेश में और इस मंगनी की भाषा में सजाकर पेश कर सकें ।"[1] आधुनिक कवियों की धारणा है कि कोई भी रचना किसी के द्वारा प्रदत्त मूल्यों की

---

1. कार्ल मार्क्स " लुई बोनापार्ट की अठारहवीं ब्रूमेर " संकलित रचनाएं भाग-1
पृ0 - 133- 134

व्याख्या न होकर उसके अन्वेषण का साधन मात्र है और कृतियों में मूल आग्रह के रूप में प्रतिस्थापित होती है । कवि को रचना - प्रक्रिया से गुजरकर ही मूल्यों की उपलब्धि होती है । रचनाकार को अपने जीवन में हुए अनुभवों, सामाजिक वातावरण की व्याख्या और उनका सापेक्षित महत्त्व निर्धारित करने के लिए बुद्धि का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है क्योंकि काव्य बोध के लिए जीवन के अनुभव का अपना असाधारण महत्त्व है । परन्तु व्यक्ति के सभी जीवनानुभवों का महत्त्व एक समान नहीं है और न ही रचनाकार अपने सभी अनुभवों को रचना में समाहित ही करता है । मूल्यान्वेषण की इसी दृष्टि ने "अंधायुग " के रचनाकार के भाव - बोध को प्रभावित किया है । चाहे प्रिय-अप्रिय कैसी भी स्थिति क्यों न हो अपनी पूर्णतः तथा क्षमता के पश्चात भी युग के सापेक्ष होने का विवश है क्योंकि समय - चक्र के घूमने से कई पीढ़िया तथा उनके इतिहास विनष्ट -विगलित हो जाते हैं परन्तु अपने पीछे नई सभ्यता और संस्कृति के बीज उसी ध्वंसावशेष में छोड जाते हैं । इनमें से कोई क्षण रचनाकार के मन को उद्वेलित कर देता है और प्रारम्भ हो जाती है सृजन परम्परा । प्राचीनता नवीन रूप धारण करती है । यही कारण है कि अनेक पौराणिक प्रसंग, ऐतिहासिक सन्दर्भ, और पात्र वर्तमान युग में आकर भी अपना अस्तित्व बनाएं रखे हुए हैं ।

"अंधायुग " में मूल्यगत संक्रमण और विघटन की त्रासदी को, आधुनिक मानव की अस्तित्वगत दुश्चिन्ताओं और यातना को युग के मूलभूत द्वन्द्व और तनाव को, कुछ ऐसे संवेदनशील रूप में प्रस्तुत किया गया है कि वह नये बोध और नई कला चेतना का पर्याय बन गया है । इसमें रचनाकार की संवेदना और दृष्टि, मिथकीय कथारूप और आधुनिक बोध, बाह्य और आन्तरिक द्वन्द्व जैसी परस्पर अन्तर्विरोधी तत्व अनुभूति की कसौटी पर कसने के पश्चात संश्लिष्ट जीवनानुभव और सामंजस्यपूर्ण कला रूप में बदल गये हैं । प्राचीन कला में आधुनिक बोध और संवेदना की अभिव्यक्ति का इस प्रकार सम्मिश्रण किया गया है कि इसे नई कविता की कला और मूल्यान्वेषण की नई दिशा के संधान एवं एक नई परम्परा का आरम्भ करने का सहज ही गौरव प्रदान किया जा सकता है । इसी नई परम्परा और युग- बोध का समावेश " अंधायुग " में किया गया है । इस काव्य की भाव चेतना का प्रतिदान तीन स्तरों पर प्राप्त होता है- पौराणिक स्तर, युगीन स्तर और मानवीय स्तर । यह कृति महा- भारत युगीन सत्य एवं मूल्य अथवा युद्ध के यथार्थ को वाणी प्रदान करती है । इसीलिए युद्धानुभव का स्तर सही मायने में पौराणिक है । भाव- चेतना का द्वितीय स्तर प्रथम विश्व युद्धों के दौरान उपजी मानवीय परिस्थितियों से सम्बन्धित है और तृतीय स्तर मनुष्य के अन्तश्चेतन में ही विद्यमान पशुत्व की कामना से है । रचनाकार इस कृति के माध्यम से यह कहता है कि युद्ध केवल

बाहर ही नहीं, मानव मन के भीतर भी चलता है क्योंकि मनुष्य के अन्त:करण में सात्विक प्रवृत्ति के साथ साथ तामसिक प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान होती है। वाह्य युद्ध इन्हीं प्रवृत्तियों या भीतरी युद्ध की अभिव्यक्ति मात्र है। इन्हीं आन्तरिक मनोवृत्तियों को नवीन परिवेश, नवीन भाषा के कलेवर से युक्त करके प्रस्तुत करने के कारण अंधायुग किंचित जटिल हो गया है। परन्तु यह जटिलता भी मानव अनुभूतियों, युगीन परिस्थितियों की जटिलता है। अनुभूति एवं भावों के सम्मिश्रण की यह जटिलता आधुनिक कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है जो कुछ दुर्बोधता उत्पन्न करती है। " अंधायुग " मात्र किसी अंधे युग की कथा नहीं है बल्कि अंधत्व के सहारे आस्थापूरित आलोक की ओर संदर्भ संवेदनाएं नवीन और युग सापेक्ष है अत: इस कृति में जो आस्था भावना गुंफित हुई है उसके सही विश्लेषण के लिए आधुनिक संवेदना मान्यताएं, आस्थाएं और संवेदनाएं होने को थी, क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टि और उसमें युक्त आस्थाएं प्रबल हो रही थीं और इसके कारण मानव बुद्धिजीवी हो गया था। लोगों की धार्मिक भावनाएं कमजोर होती जा रही थीं क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण जनमानस में नई जागृति, नई चेतना की लहर दौड़ रही थी। नये मानवीय मूल्यों के स्थापित होने से व्यक्ति की धर्मानुमोदित आस्था लुप्त-

प्राय हो चुकी थी इस कारण नये मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा बढ़ गयी । प्राचीन आस्थाएं और मूल्य जब नवीनता की कसौटी पर कसे जाते हैं तब इस प्रक्रिया के कारण उत्पन्न संकट व क्षण ही आधुनिक संवेदनाओं को प्रकट करता है । "अंधायुग " का कथात्मक इसी बिन्दु पर प्राचीनता का खोल उतारकर नवीन परिवेश धारण करता है । "अंधायुग" नई - कविता की काव्य संवेदना, शिल्पगत नवीनता और भाषा सौष्ठव की स्वायत्तता की परिचायक भी है । "अंधायुग" की भाषा इतनी कसी हुए एवं परिमार्जित है कि वह पात्रों की सम्पूर्ण नैराश्य स्थिति, कुंठा, संत्रास का ज्यों का त्यों वर्णन करती हुई प्रतीत होती है । कवि का अभिप्राय ही जगत व्याप्त संत्रस्त कुंठित और निराश मन: स्थिति, प्रतिशोध, प्रतिहिंसा एवं विद्रूपताओं के अन्तरंग विश्लेषण द्वारा जीवन के दुर्लभ सत्य से साक्षात्कार करना रहा है ।

" अंधायुग " में कथानक गौण रूप में आया है । इसमें ऐतिहासिकता के साथ ही काल्पनिक दृष्टि का समायोजन भी हुआ है । स्वयं डा० भारती ने कृति का परिचय देते हुए कहा है, " इस दृश्य काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है , उसके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय लिया गया है । अधिकतर कथावस्तु " प्रख्यात" है । केवल कुछ

- -

तत्व ही उत्पाद्य हैं। कुछ स्वकल्पित पात्र और स्वकल्पित घटनाएं हैं।"[2]

कवि के कथन से स्पष्ट है कि " अंधायुग " को मात्र ऐतिहासिक अथवा पौराणिक रूप में पुनराख्यान होने से बचा लिया गया है। कवि ने कल्पना से जहाँ कथानक में नवीनता का पुट दिया है वहाँ रोचकता का भी सम्यक समावेश हो गया है। इसी के फलस्वरूप ही द्विवेदी युगीन इति वृत्तात्मकता एवं नैतिक जीवन आदर्शों का पोषण न कर कवि ने इसे आधुनिकता का परिवेश देकर युगानुरूप ढालने का प्रयास किया है जो कि उसके विकसित दृष्टिकोण का परिचायक है। जैसा कि ज्वाला प्रसाद खेतान का अभिमत है, " अंधायुग एक अन्त:संयमित एवं अधिक व्यापक कलाकृति बन पड़ी है। ऐसा नहीं कि यह नाट्य- काव्य सर्वथा काल्पनिक है और कलाकार में अनुभूति जगत से उसका सम्पर्क नहीं, भारती ने " वेदना सबकी भोगी है।" अन्तर केवल इतना है कि उसकी वेदना की वैयक्तिकता से ऊपर उठकर " अंधायुग " के रचनाकाल में वह उसकी विराट मानवीय प्रासंगिकता के प्रति चेतन हो उठा है।"[3]

- -

2· डा० भारती - अंधायुग " निर्देश ‖ पृ० - 6

3· डा० हुकुम चन्द राजपाल - धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम पृ०- 46

काव्य क्षेत्र में नवीन प्रयोग करना ही कवि का मूल उद्देश्य था । कवि की दृष्टि लीक से हटकर अन्वेषण रत रही । सम्पूर्ण कथानक का विभाजन पाँच अंकों में किया गया है । इनके नाम क्रमशः " कौरव नगरी" "पशु का उदय ", "अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य", "पंख पहिये और पट्टियाँ" तथा गाँधारी का शाप " एवं " विजय एक क्रमिक आत्म हत्या" । प्रारम्भ में " स्थापना " है जिसमें भारती ने कथ्य स्पष्ट किया है कि यह कहकर कि यह " कथा ज्योति की है - अंधों के माध्यम से ।"[4] इसका स्पष्टीकरण करते हुए भारती जी ने कहा है - " यह कथा आज की है अतीत के माध्यम से ।"[5]

प्रथम अंक में कौरव नगरी का वर्णन है इस नगरी में खण्ड -खण्ड होकर मर्यादा पड़ी है, जिसके उत्तरदायी कौरव तथा पांडव दोनों ही है । कौरव-महलों में मात्र दो प्रहरी घूमते हैं, जिनके प्रारम्भिक वार्तालाप से कौरव के राज्य- नाश एवं कुल नाश का बोध होता है तथा इसके साथ ही अपने

- -

4. डा0 भारती - अंधायुग - पृ0- 10

5. डा0 भारती - कादम्बिनी (जून0 1973 ई0 (पृ0- 73

निरूद्देश्य जीवन की भी व्यंजना करते हैं । दोनों प्रहरी आस्था, श्रम, साहस तथा अस्तित्व को निरर्थक मानते हैं । यह आधुनिकता के प्रतीक हैं जो उस अंधी संस्कृति को उजागर करती है जो अतीत और आज दोनों के इंसान को जकड़े हुए है । इसके पश्चात गिद्धों के बादल का आकाश में छा जाना यह संकेत है महायुद्ध के मरघटी या श्मशानी परिणाम का । प्रहरी इन बातों की चर्चा कर ही रहे थे कि विदुर का आगमन होता है । वे युद्ध के समाचार जानने के लिए उत्सुक है । वे धृतराष्ट्र एवं गांधारी से मिलते हैं । " अंधायुग " में धृतराष्ट्र व्यक्तिगत स्वार्थ एवं ममता के अंधेपन से पीड़ित है एवं गांधारी कटु निराशा एवं अनास्था का प्रतीक है । गांधारी कृष्ण को " वंचक" सम्बोधित करती है । तभी याचक प्रवेश करता है जो कौरवों की विजय की घोषणा करता है जबकि वास्तविक स्थिति इसके प्रतिकूल है क्योंकि -

"जब कोई मनुष्य
अनासक्त होकर, चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है
नियति नहीं है पूर्व निर्धारित -
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है ।" [6]

6· डा0 भारती : अंधायुग - पृ0- 24

अर्थात् यदि भयावह युद्धों की मालिका से बचना है तो निष्क्रिय बने रहने से काम नहीं चलेगा । युग - परिवर्तन के लिए विशेष स्थिति की प्रतीक्षा करते रहना भी व्यर्थ है क्योंकि हर क्षण इतिहास बदलने वाला होता है । इतिहास को बदलने के लिए स्वयं इतिहास से उपाय सीखना पड़ता है - तभी मृत इतिहास जीवन में शक्ति का स्रोत बन सकता है । गांधारी अपनी ममता में अंधी हो गयी है वह किसी की बात का विश्वास नहीं करती - वह मोहाविष्ट होकर बार - बार कहती है -

" होगी / अवश्य होगी जय

मेरी यह आशा

यदि अन्धी है तो हो

पर जीतेगा

दुर्योधन जीतेगा ।"[7]

सभी पात्र दिव्य दृष्टिसम्पन्न संजय की प्रतीक्षा करते हैं । वे प्रतिदिन युद्ध का समाचार सुनाते हैं । इसमें सत्रह दिन की पराजय के संवाद

- -

7· डा0 भारती : अंधायुग - पृ0- 25

है । " अंधायुग " में पुत्र शोक से जर्जर गांधारी को संशय है, विदुर की आस्था है तथा इन सबके मध्य सहसा वृद्धयाचक का आगमन होता है, जो कि "मापा हुआ झूठे भविष्य " का प्रतीक है । अत: यह कहना उचित होगा कि प्रथम अंक में प्रहरी - युग्म के माध्यम से लेखक ने वर्तमान जीवन में दास - वृत्ति ग्रस्त जनता की मनोवृत्ति का परिचय दिया है ।

द्वितीय अंक के आरम्भ में किंकर्तव्यविमूढ़ संजय का प्रवेश होता है । संजय यहाँ क्रियाहीन सत्य एवं तटस्थता का प्रतीक है । उन्हें दिव्य दृष्टि का वरदान था । दुर्योधन की पराजय का दृश्य न देख सकने के कारण वे धनुष तोड़कर वन को प्रस्थान कर गये । दूसरी ओर अश्वत्थामा अतीत का स्मरण कर दु:खी होता है । जिसके फलस्वरूप वह आत्म हत्या करने के लिए तत्पर होता है परन्तु बाद में वह जीवित रहने का संकल्प करता है क्योंकि बदला लेना ही अब उसका धर्म है । अश्वत्थामा संजय को पांडव पुत्र समझ कर वध करने को तत्पर हो जाता है उसे कृत वर्मा और कृपाचार्य रोकते हैं एवं इस दुष्कृत्य की प्रताड़ना करते हैं अश्वत्थामा कहता है -

" मैं क्या करूँ ?

मातुल

मैं क्या करूँ

वध मेरे लिए नहीं रही नीति

वह है अब मेरे लिए मनोग्रन्थि ।"[8]

यहाँ अश्वत्थामा कुंठित है वह घृणा से सराबोर है इसीलिए अपने अस्तित्व का अर्थ "वध" मानता है । वह विक्षिप्त हो चुका है इसी लिए वृद्ध याचक की हत्या कर देता है क्योंकि वह कर्म की सत्यता को प्रतिपादित करता है - कृष्ण संदेश की पुनरावृत्ति करके -

- निष्क्रियता नहीं

आचरण में ही

मानव अस्तित्व की सार्थकता है ।"[9]

8· अंधायुग - पृ० - 38

9· अंधायुग - पृ० - 43

तृतीय अंक का प्रारम्भ कथा गायन से होता है । इसमें कौरवों की पराजय का कारुणिक चित्रण है । भारती जी ने अपने प्रभावपूर्ण शब्दों से धृतराष्ट्र तथा विदुर की बातचीत में झलकती धृतराष्ट्र की विवशता दर्शायी है । तभी एक गूँगा तथा पंगु सैनिक घिसटता हुआ आता है । भारती जी ने गूँगे सैनिक के माध्यम से युद्ध की विभीषिका को ही नहीं उजागर किया बल्कि बरसों तक बनी रहने वाली प्रतिहिंसा की भावना की ओर भी सफल संकेत किया है । ये सभी दृश्य गांधारी को जड़ बना देते हैं । युयुत्सु अंधायुग का एक मुख्य पात्र है । वे संशय ग्रस्त हैं क्योंकि उन्होंने कौरव वंश का होने पर भी सत्य को महत्व दिया है । उन्हें सान्त्वना देते हुए विदुर कहते हैं -

" इस पर विवाद मत करो युयुत्सु
अज्ञानी, भय डूबे, साधारण लोगों से
यहां तक मिला ही सदा उन्हें
जो एक निश्चित परिपाटी
अपना अपने आप
निर्धारित करते हैं ।" [10]

10· अंधायुग - पृ० - 53

यह उद्धरण युयुत्सु के चरित्र की महत्ता प्रकट करता है कि किसी प्रकार उन्होंने उस अंधे युग में भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रखा । गांधारी बिना किसी ममता का प्रदर्शन किये वहां से चल देती हैं तथा घायल गूंगा सैनिक भी युयुत्सु की करूणा नहीं स्वीकार करता है । युयुत्सु क्षुब्ध हो जाते हैं - वे स्वयं को बधिक, मातृ वंचित तथा सबकी घृणा का पात्र समझते हैं , इस स्थिति में उन्हें कृष्ण से घृणा हो जाती है वे अपनी घृणा को व्यंग्य के माध्यम से प्रगट करते हैं -

" जय है यह कृष्ण की
जिसमें मैं बधिक हूं
मातृ वंचित हूं
सबकी घृणा का पात्र हूं ।" [1]

तृतीय अंक के दूसरे भाग में प्रेत लोक की तरह वातावरण उपस्थित किया गया । युद्ध की विभीषिका को यह वातावरण पूरी तरह उजागर करता है । युयुत्सु स्वयं को पहिये की तरह, संजय स्वयं को कर्मलोक से वहिष्कृत दो बड़े

---

1. अंधायुग - पृ0- 54

पहियों के बीच लगा एक छोटा सा निरर्थक शोभा - चक्र की तरह तथा विदुर स्वयं को कृष्ण का अनुगामी, भक्त और साधारण नीतिज्ञ की भाँति स्वीकारते हैं। अश्वत्थामा द्वारा मारे गये वृद्ध याचक की प्रेतात्मा अवतीर्ण होकर सारे युग के अंधेपन को देखती है। यह आत्मा युयुत्सु, विदुर एवं संजय की छायाओं को मंत्र शक्ति से आहूत कर उनकी असंगतियों से अवगत कराना चाहती है। संजय ने स्पष्टत: स्वयं के विषय में कहा है -

" पर मैं तो निष्क्रिय
निरपेक्ष सत्य
मार नहीं पाता हूँ
बचा नहीं पाता हूँ
कर्म से पृथक
खोजा जाता हूँ
क्रमश:
अर्थ अपने अस्तित्व का ।"[12]

संजय के इस कथन से कवि ने अस्तित्व बोध की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कर्मण्य होने की प्रेरणा दी है। अस्तित्व बोध के द्वारा ही जीवन की अर्थवत्ता

12· डा० भारती : अंधायुग पृ०- 125

एवं सार्थकता प्रतिष्ठित की जा सकती है ।

चतुर्थ अंक में " गांधारी का शाप " का विशेष वर्णन है । अश्वत्थामा में विक्षुब्धता चरम सीमा पर है वह शिव को तप करके प्रसन्न करता है, वे उसे वरदान देते हैं -

" अश्वत्थामा, तुम विजयी होगे निश्चय
हो चुका पाण्डवोंके पुण्यों का अब क्षय
मैं कृष्ण प्रेम वश
अब तक इनकी रक्षा करता था
मैं विजय दिलाता
इनमें नया पराक्रम भरता था
पर कर अधर्म वध
द्वार उन्होंने स्वतः मृत्यु के खोले ।"[13]

शिव पाण्डवों के प्रति क्रोधित है। उनका आशीर्वाद पाकर अश्वत्थामा ने देव असि से नृशंसता पूर्वक कृत वर्मा एवं कृपाचार्य के शिविर में आग लगा दी।

---

13. डा0 भारती, अंधायुग , पृ0 - 90

गांधारी पुत्र मोह से इतनी ज्यादा ग्रसित है कि वह इस कृत्य से प्रसन्न होती है । कृत वर्मा एवं कृपाचार्य मरणासन्न दुर्योधन को अश्वत्थामा की वीरता का परिचय देते हैं जिससे दुर्योधन का श्री हीन मुख पुन: आभायुक्त हो जाता है । गांधारी अश्वत्थामा के शरीर को वज्र बनाने के लिए पट्टी आंख से उतार लेती है । संजय की दिव्य दृष्टि लोप हो जाती है । अश्वत्थामा अर्जुन से युद्ध करते समय ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है । उन्हें ऐसा करने से रोका जाता है, परन्तु अश्वत्थामा उस ब्रह्मास्त्र को उत्तरा के गर्भ पर गिराता है,

" सुन लो कृष्ण

यह अटूट अस्त्र - अश्वत्थामा बोले -

निश्चित गिरे जाकर

उत्तरा के गर्भ पर

वापस नहीं होगा ।" [14]

वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा विश्वास की एक ठोस भावना एक मन: स्थिति की जन्मदात्री हो सकती थी । युद्ध में मानव मूल्यों का हनन होना अनिवार्य

- -

14· अंधायुग - पृ0 - 94

होता है । प्रतिहिंसा और घृणा की भावनाएं इस हनन के लिए उत्तरदायी होती हैं । " अंधायुग " में भारती ने अश्वत्थामा को केन्द्रीय चरित्र मानकर पर्याप्त आधुनिकता से काम लिया है । अश्वत्थामा के चरित्र में प्रतिहिंसा और घृणा को बड़ी मनोवैज्ञानिकता के साथ उभारा गया है । इसलिए "अंधायुग" में कृष्ण के अनासक्त प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता में अश्वत्थामा "अनासक्त विक्षोभ' का प्रणेता बनकर आया है । पारम्परिक जीर्ण आस्थाओं को नष्ट कर नई आस्थाओं के पनपने की विचारधारा को दृष्टि में रखकर ब्रेख्त ने कहा था - " अनास्था पहाड़ों को डिगा सकती है ।[15] इसी अनास्था को भारती न अश्वत्थामा के माध्यम से रूपायित करके अनास्था की गहरी पहचान का परिचय दिया है । भारती जी ने लिखा है - " जब " अंधायुग " के पूरे नोट्स बनाए थे और अंक प्रति अंक उसकी रूपरेखा बनायी थी, तब कृष्ण के सारे मूल्य- मर्यादाजाल को ध्वस्त करने का दायित्व गांधारी पर था, लेकिन लिखते - लिखते गांधारी शाप देकर कृष्ण के प्रतिसहसा द्रवित हो गयी और विद्रोह तथा असहमति की कठिन भूमिका आगे आकर अश्वत्थामा ने संभाल ली ।[16] युधिष्ठिर द्वारा बोला

- -

15· धर्मवीर भारती - ठेले पर हिमालय पृ० - 8।

16· धर्मवीर भारती - पश्यन्ती पृ० - 13

गया अर्द्धसत्य द्रोणाचार्य की मृत्यु का कारण बनता है इसी के साथ अश्वत्थामा के अन्तस का शुभ व कोमलतम भाव हमेशा के लिए विलुप्त हो गया । युधिष्ठिर ने " अश्वत्थामा हतः, नरो वा कुंजरो वा " कह कर मानव और पशु के बीच की विभाजक रेखा को मानो मिटा दिया था इसीलिए अश्वत्थामा कहता है -

"मानव को पशु से
उन्होंने पृथक नहीं किया
उस दिन से मैं हूँ पशु मात्र, अंध बर्बर पशु ।"[17]

निराशा की सघनता के कारण अश्वत्थामा की समस्त चेतना मनोग्रन्थि में परिवर्तित हो गयी है । निराशा की चरम सीमा पर पहुँच कर उसका अस्तित्व केवल एक अर्थ देता है - " वध, केवल वध, केवल वध ।" वह कहता है - वध मेरे लिए नहीं रही नीति / वह है अब मेरे लिए मनोग्रन्थि । " दुर्योधन का पराजय स्वीकारने पर पिता की निर्मम हत्या का प्रतिशोध न ले सकने की असमर्थता का अनुभव अश्वत्थामा को हुआ । वह सही अर्थों में आधुनिक मानवता का प्रतीक है । वह त्रास और घुटन आदि को सहते सहते पर्याप्त असाधारण हो गया है । पिता की मृत्यु उसे

- -

17 अंधायुग : पृ० - 35

प्रतिशोध से भर देती है और वह पाशविक वृत्तियों से गिरकर घूमता फिरता है। युद्ध ने उसे इतनी पीड़ा, इतना तनाव दिया है कि वह घृणा का रास्ता अपनाता है। वह सत्य वक्ता संजय का गला दबाता है। उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र फेंकता है। उसका व्यक्तित्व आधुनिक मानव की तरह इतना विकृत और भयावना है कि कृत वर्मा तो उसके दर्शन मात्र से घबरा जाते हैं। प्रति हिंसा और प्रतिशोध के वशीभूत होकर उसने मर्यादा, नीति, विवेक, धर्म और सदाचार आदि सभी कुछ को भुला दिया है। यही स्थिति आधुनिक मनुष्य की है, वह पीड़ा, अकुलाहट, क्षोभ और निराशा के क्षणों में वही आचरण करता है जो काव्य नाटक में अश्वत्थामा को करता हुआ दिखाया गया है। काकोलूकीय द्वन्द्व से प्रेरित होकर अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न को सोते हुए हत्या करता है -

" आँखों के कोटर से
दो दो साबित गोले कच्चे
आमों की गुठली जैसे उछल गये
खाली गड्ढों में काला लोहू उबल पड़ा।" [18]

इन पंक्तियों से अश्वत्थामा की जघन्य प्रतिहिंसा की भावना लक्षित होती है। वह घृणित से घृणित कार्य करने में ही शान्ति अनुभव करता है। उसे

18· अंधायुग : पृ० - 79

अपने कृत्य पर तनिक भी लज्जा नहीं है उसके अनुसार जो कुछ उसने पाण्डव शिविर में किया कृष्ण, जो कि आस्था के प्रतिनिधि है उन्होंने भी वही किया है । दोनों ने व्यापक हत्या में स्वयं को धकेला है -

" झूठे हैं ये स्तुति - वचन यह प्रशंसा वाक्य
कृष्ण ने किया है वही
मैने किया था जो पाण्डव शिविर में
सोया हुआ नशे में डूबा हुआ
होता है एक सा
उसने नशे में डूब अपने बंधु जनों की
की है व्यापक हत्या ।"[19]

अश्वत्थामा किसी मर्यादा का पालन नहीं करता है । उसने उत्तरा के गर्भ को नष्ट करना चाहा किन्तु कृष्ण ने गर्भ की रक्षा कर ली । कृष्ण ने उसे भ्रूण हत्या का शाप देकर उससे मणि छीन लेते हैं । मणि छीन लिये जाने के कारण अश्वत्थामा के मस्तक में नासूर बन गया जो सदैव ताजा बना रहता था। शाप के कारण ही उसका अंग - अंग गलित कुष्ठ के कारण दुर्गन्ध से भर गया ।

- -

19· अंधायुग - पृ0 - 112

उसका रोम - रोम रौरव नरक की यातना से पीड़ित हो उठा । परन्तु कृष्ण के घायल चरणों में से घाव के फूटकर बह निकलने पर जब अश्वत्थामा ने अपनी निजी पीड़ा को शान्त होते हुए अनुभव किया, तो उसकी घृणा आस्था में परिवर्तित हो गयी । जो अंधायुग, अंधी प्रतिहिंसा बनकर अश्वत्थामा की अन्तरात्मा तक पैठ गया था, उसके कारण अब वह पश्चाताप से विगलित है। भारती ने यही अनास्था के खण्डहर में आस्था के अंकुर फूटते हुए दिखाया । घृणा से नर पशु बना अश्वत्थामा अनुभव करने लगता है कि प्रतिहिंसा का मार्ग सदैव विनाशकारी होता है, घृणा का तर्क अमानुषिक है । वह पश्चाताप की अग्नि में जलता है । मनुष्यता की विस्मृति का यह अविस्मरणीय पात्र अन्त में अनुभव करता है -

" जिसको तुम कहते हो प्रभु

वह था मेरा शत्रु,

पर उसने मेरी पीड़ा भी धारण कर ली

ज़ख्म है बदन पर मेरे

लेकिन पीड़ा सब शांत हो गई बिलकुल

मैं हूँ दण्डित

लेकिन मुक्त हूँ ।"[20]

20· अंधायुग - पृ० - 127

इन पंक्तियों से अश्वत्थामा की अन्तरात्मा की पुकार स्पष्ट झलकती प्रतीत होती है । " अंधायुग " में आद्योपान्त अश्वत्थामा के चरित्र की घनीभूत व्याकुलता और प्रतिहिंसा की जलन व्याप्त है । वह आज के मनुष्य की पीड़ा को दर्शाता है । आज के मनुष्य की " नैतिकता और धर्म अमर्यादा के जाल से फँसे है । इसलिए अश्वत्थामा आज हम हैं अश्वत्थामा अर्द्धसत्यों से विचलित प्रतिहिंसा और प्रतिशोध की ज्वाला से जल रहे थे और जल रहे हैं हम । हमारे भीतर शुभ और कोमलतम की भ्रूण हत्या पहले ही हो चुकी हैइसी कारण हम भविष्य हन्ता बन गये हैं ।"[21]

अंधों के माध्यम से कही गयी ज्योति की यह कथा, जिसमें अंधकार का केन्द्रविन्दु अश्वत्थामा है, उसी प्रकार ज्योति या जीवन का केन्द्रीय चरित्र कृष्ण है । कवि ने प्रारम्भ में ही कृष्ण की अद्वितीयता को परिभाषित किया है -

"सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का
वह है भविष्य का रक्षक, वह है अनासक्त ।"[22]

21· डा0 लक्ष्मी शर्मा, पुराख्यान और कविता - पृ0 - 104

22· अंधायुग - पृ0 - 12

कृष्ण का अनासक्त होना ही उनकी विशेषता है । वह सत्य के पक्षधर हैं । क्योंकि सत्य एवं मर्यादा जीवन के ऐसे मूल्य हैं जिन्हें सामयिक परिस्थितियाँ नष्ट नहीं कर सकती । युगीन सन्दर्भों में अनास्था, अमर्यादा, अन्याय, प्रतिशोध, कुण्ठा, निराशा आदि जीवन में ऐसी सामयिक स्थितियाँ हैं जो क्षणिक हैं, अर्थात् इनकी स्थिति पानी के बुलबुले के समान है । जीवन के चिरन्तन प्रवाह में इनका क्षणिक महत्व भले ही स्वीकार कर लिया जाए पर आस्था, विश्वास, श्रृद्धा , मर्यादा एवं सत्य जीवन के परम तत्व हैं, जिनके अभाव में इसे प्रवाह युक्त रख पाना कठिन है । यहाँ स्पष्टत: भारतीय जीवन से विलग होने की इच्छा प्रकट की है, फिर आस्था एवं भक्ति के पाश में पुन: आबद्ध होकर उसी " कायर " " वंचक " एवं " शक्तिहीन" कृष्णके प्रति नतमस्तक होकर कवि कह उठता है -

" हरि के रहस्यमय जीवन की
है जरा अलग यह छोटी सी
मेरी आस्था की पगडन्डी
दो मुझे शब्द, दो रसानुभव, दो अलंकरण
मैं चित्रित करूँ तुम्हारा करूण रहस्य - मरण ।" [23]

23· अंधायुग , पृ० - 119

मनुष्य में निराशा की सघनता होने के बावजूद भी कहीं से एक आशा की किरण विद्यमान रहती है । इसी कारण अनास्था के घने अंधकार में आस्था एक पगडण्डी की भाँति ही प्रतीत होती है । कृष्ण का करूण मरण ही "अंधायुग" पर विधेयात्मक उद्देश्य के रूप में जीवन बनकर छाया है । परन्तु उनके दर्शन चौथे अंक " गांधारी के शाप " में मात्र आवाज रूप में ही होते हैं । पुत्र मोह से ग्रस्त गांधारी कृष्ण को शाप दे देती है वे उन्हें माँ कह कर सम्बोधित करते हैं और समझाते हैं -

" अठारह दिनों के इस भीषण संग्राम में
कोई नही केवल मैं मरा हूँ करोड़ो बार
जीवन मैं हूँ
तो मृत्यु भी तो मैं ही हूँ माँ !
शाप यह तुम्हारा स्वीकार है ।" [24]

यहाँ कृष्ण का सार्वभौमिक रूप लक्ष्य किया गया है । वे शान्ति दूत के रूप में पहले ही दुर्योधन से कह चुके थे -

---

24· अंधायुग " पृ० - 100

" मर्यादा मत तोड़ो

तोड़ी हुई मर्यादा

कौरव वंश को ······

···········तोड़ डालेगी ।"[25]

कृष्ण निराकार, परब्रह्म तथा अनासक्त हैं । वे अठारह दिनों के युद्ध में करोड़ों बार मरे है भारती के काव्य में कृष्ण सम्पूर्ण आधुनिकता के साथ देवी रूप में उभर कर सामने आते हैं । वे जहाँ एक ओर अपना जीवन देकर भी उत्तरा के मुर्दा शिशु को जीवित कर देने के लिए व्याकुल हैं, वहाँ वह दूसरी ओर अश्वत्थामा की पीड़ा को भी धारण करते हुए दिखायी पड़ते हैं । इसी कारण वह घृणा के कालिया नाग का दमन कर सकने में सफल होते हैं । यही मानवता की चरम सीमा है जिसे भारती जी ने व्यक्त किया है । उन्होंने कहा है - " कृष्ण जो मानवीय आचरण की जटिल तम मर्यादा के मर्मज्ञ थे इस दृश्य काव्य में केन्द्रस्थ पात्र हैं, जो सभी पात्र और परिस्थितियों पर छाये रहते हैं ।"[26] भारतीजी ने भारतीय संस्कृति के शलाकापुरुषपूर्णावतार

- -

26· नई कविता - भारती का वक्तव्य , पृ0 - 50

कृष्ण को नर के रूप में चित्रित करके नर के भीतर नारायणत्व को, चरम पूर्णता को विकसित करने की प्रेरणा दी है। जहाँ भारती के अश्वत्थामा अनास्था, कुण्ठा, अपमान बोध को लेकर विस्फोटक रूप में सामने आते हैं। इसके विपरीत कृष्ण पूरी आस्था, करुणा, ममता के साकार रूप प्रतीत होते हैं। " दायित्व मुक्त, मर्यादित ,मुक्त आचरण " कृष्ण के मरण का रहस्य है। उनका यह आश्वासन है -

"मर्यादा युक्त आचरण में
नित नूतन सृजन में
निर्भयता के
साहस के
ममता के
रस के
क्षण में
जीवित और सक्रिय हो उठूँगा मैं बार - बार।"[27]

भारती जी ने गांधारी को भी सशक्त रूप से उभारा है। अनास्था के पक्ष में अश्वत्थामा के बाद गांधारी ही है।

27· अंधायुग ,पृ0- 128

। भारती जी की गांधारी पातिव्रत्य के कारण नहीं अपितु -

"मुझको इस झूठे आडम्बर से नफरत थी

इसीलिए स्वेच्छा से मैंने

इन आँखो पर पट्टी चढ़ा रखी थी।"[28]

गांधारी पूर्ण आधुनिकता के साथ " अंधायुग " में प्रस्तुत हुई है । उसे वर्तमान नारी का प्रतीक कहना उचित होगा वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होते हुए भी कहीं कहीं मोहाविष्ट है । गांधारी का आंखों पर पट्टी बांध लेना यह स्पष्टीकरण बौद्धिकता के आग्रह का परिणाम है । महाभारत के प्रतिशोध मय प्रवास में गांधारी ने प्रतिशोध यज्ञ में एक भी समिधा नहीं डाली है । भारती ने गांधारी के इस महाभारतीय स्वरूप को अत्यधिक परिवर्तित कर दिया है । " अंधायुग " में गांधारी पुत्र शोक के कारण अंदर से जर्जर होकर गहन व्यथा और उद्दत अनास्था कृष्ण को शाप ही नहीं देती, बल्कि अश्वत्थामा के नेशयुद्ध के दुष्कृत्य से सान्त्वना का अनुभव करती है । अश्वत्थामा द्वारा धृष्टद्युम्न के वध का प्रसंग सुनकर वह कहती है - अंधा कर दिया उसको पहले ही / कितना दयालु है अश्वत्थामा ।"[29] कटु निराशा

---

28. अंधायुग , पृ० - 32

29. अंधायुग , पृ० - 79

और उद्दत अनास्था की भावना गांधारी के लिए स्वाभाविक ही है ।
अनास्था के आवेश में वह कृष्ण को शाप दे देती है । गांधारी की अंधी
ममता की पराकाष्ठा प्रतीक करता है यह शाप :-

" तो सुनो कृष्ण ।
प्रभु हो या परात्पर हो
कुछ भी हो
सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक दूसरों को परस्पर फाड़ खाएगा
तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याध्र के हाथों मारे जाओगे
प्रभु हो
पर मारे जाओगे पशुओं की तरह ।"[30]

कृष्ण गांधारी को युद्ध की वास्तविकता से परिचित कराते हैं । तब
गांधारी दुखी होती है और उसके हृदय में कृष्ण के लिए अगाध ममता उमड़
पड़ती है ।

30· अंधायुग पृ० - 102

वह कहती है -

" कोई नही दुख अपने

सौपुत्रों के लिए

लेकिन कृष्ण तुम पर

मेरी ममता अगाध है

कर देते शाप यह मेरा अस्वीकार

तो क्या मुझे दुख होता

मैं थी निराशा में, कटु थी

पुत्र हीना थी।"[31]

इस प्रकार तेजस्विता, ममता ही गांधारी के चरित्र की विशेषता है। वह साधारण स्त्रियों की भांति दुर्बल मन वाली है । दावाग्नि में झुलस जाने पर वह कहती है - अपने इस शाप की / प्रथम समिधा में ही हूँ ।[32] इसी प्रसंग में उनका कहना है -

"संजय !

जो जीवन भर भटके अंधियारे में

उनको मरने दो

- -

31· अंधायुग , पृ0 - 102

32· अंधायुग, पृ0 - 114

प्राणांतक प्रकाश में ।"[33]

धृतराष्ट्र "अंधायुग" में विवेकांधता के कारण " बाहरी यथार्थ या सामाजिक तक सीमित है । अपनी मांसलता से उपजे कौरवों को ही वे अन्तिम सत्य के रूप में अपना पाते हैं । सत्ता लोलुपता और पुत्र विषयक अंधी ममता के कारण वे अश्वत्थामा द्वारा उत्तरा के गर्भ पर फेंके गये ब्रहमास्त्र का समाचार पाकर उद्विग्न नहीं होते इसके विपरीत वे युयुत्सु से कहते हैं -

" अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र
यदि गिरा है उत्तरा पर
तो कौन जाने एक दिन युधिष्ठिर
सब राजपाट तुमको सौंप दें ।"[34]

सत्ता लोलुपता ही उनकी नियति है । विवेक से न होकर अपितु विनाश से बाहरी यथार्थ जगत का बोध उसे हुआ है । इसलिए यह बोध, यह ज्ञान उसे दृढ़ता देने के स्थान पर भय प्रदान कर रहा है । मृत्यु की छाया में उन्हें अवश्य अनुभव हुआ है - " जीवन भर में अंधेपन के अंधियारे में भटका हूँ ।"[35]

5 -

33· अंधायुग, पृ0 - 114

34· अंधायुग , पृ0 - 95

35· अंधायुग, पृ0 - 113

पाँचवा अंक " विजय :एक क्रमिक हत्या " भी कथा गायन से आरम्भ होता है । इसमें अंधों की परम्परा में महायुद्ध के ध्वंस के बाद राज्य के सिंहासन पर बैठे हुए युधिष्ठिर अत्यन्त चिन्तित हैं । भीम मंदबुद्धि हैं । उनकी कटूक्तियों के कारण धृतराष्ट्र व गांधारी वन को प्रस्थान करते हैं । तथा व्यंग्य बाणों से आहत होकर युयुत्सु आत्म हत्या कर लेता है । कृपाचार्य युधिष्ठिर की आत्मघात करने वाली संस्कृति में न रहने की प्रतिज्ञा करते हैं कवि इस अंक में विवेक, मर्यादा और अंधत्व को एक बिन्दु पर ही तौलता है । वह अनुभव करता है कि विवेक हार गया है, मर्यादा टूट चुकी है और सिंहासन पर अंधापन बैठा है । धृतराष्ट्र के स्थूल अंधेपन के तथ्य को खण्डित करके ये पंक्तियाँ राज्य और व्यक्ति के भीतर निहित अमर्यादित और अंधेपन को व्यक्त करने लगती है । युधिष्ठिर के प्रहरियों के शासन सम्बन्धी वार्तालाप में आधुनिक शासन व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है -

"हम जैसे पहले थे

वैसे अब भी हैं

शासक बदले

स्थितियाँ बिल्कुल वैसी है

इससे पहले के ही शासक अच्छे थे

अन्धे थे लेकिन वे शासन तो करते थे।"[36]

ये पंक्तियाँ जहाँ महाभारत कालीन अविवेक, खंडित मर्यादा, एवं अंधत्व व्यक्त करती है वहाँ आधुनिक, विश्वयुगीन अविवेक को भी, जो मानवता को कुचलने के लिए सिद्धान्तों का कुचक्र चलाती है। प्रहरियों के वार्तालाप में व्यंग्य विडम्बना और वेदना विद्यमान है। ये प्रहरी कौरवों के राजमहल में टहलने वाले एक प्रतीक है। हरेक मानव के भीतर एक सूना गलियारा है, अंधकार है। जिसमें उदासी टहल रही है। प्रहरी के जीवन और रक्षणीय वस्तु में कोई सम्बन्ध नहीं है और जब बिना सम्बन्ध के कर्म में प्रवृत्त हुआ जाता है तब एक शून्यता और मरुस्थल का उदय होता है। प्रहरी के वार्तालाप से यह अंक समाप्त होता है।

"समापन" उपशीर्षक में वन्दना के उपरान्त कलह वृद्धि एवं कृष्ण द्वारा स्वबन्धुओं को मार डालने की कथा है। इसके बाद शाप की सत्यता के कारण कृष्ण के पैरों को मृग- मुख समझकर याचक मृतात्मा द्वारा पैर को निशाना बनाकर बाण चलाना तथा प्रभु निधन है। अश्वत्थामा का अट्टहास, किन्तु प्रभु महिमा

- -

36· अंधायुग, स्थापना अंक

में लीन हो जाना, व्याध एवं अश्वत्थामा का पश्चाताप, व्याध द्वारा कृष्ण कृत अश्वत्थामा की हत्या को अपने ऊपर लेने की सूचना आदि कथा के अन्य सूत्र है । कृष्ण इन सबका दायित्व लेते हैं और पात्रों के युगों -युगों तक प्रतीकात्मक रूप में जीवित रहने की घोषणा करते हैं -

" सबका दायित्व लिया मैंने अपने ऊपर
अपना दायित्व सौंप जाता हूँ मैं सबको
अब तक मानव भविष्य को मैं जिलाता था
लेकिन इस अंधे युग में मेरा एक अंश
निष्क्रिय रहेगा, आत्मघाती रहेगा
और विगलित रहेगा
संजय युयुत्सु अश्वत्थामा की भाँति
क्योंकि इनका दायित्व लिया है मैंने ।"[37]

कवि का अभिप्राय यही है कि व्यक्ति अपनी जीवन की सार्थकता, कर्मशीलता के आधार पर ही पा सकता है चाहे वह अनास्थावादी और विकृत अन्तस वाला ही क्यों न हो ? वही अपने भविष्य का नियन्ता होगा ।

- -

37· अंधायुग , पृ० - 129

वस्तुत: "अंधायुग " के रचनाकार का उद्देश्य महाभारतीय पुराकृत का पुन: आख्यान करना नहीं है अपितु उसके माध्यम से द्वितीय युद्ध की विभीषिका और तीसरे से भयानक परिणामों की संभावना की चेतावनी देना है । कुत्सित एवं खण्डित आयामों का उद्घाटन कर कवि ने इनका पर्यवसान पुन: आस्था में व्यंजित किया है इस प्रकार वे एक साथ परम्परा एवं युग- सापेक्ष दृष्टि का सम्यक निर्वाह कर सके हैं । जीवन मूल्य मानव- अस्तित्व की व्याख्या में सहायक है तथा इसकी अनिवार्यता से ये सहज रूप से सम्बद्ध हैं । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानव मूल्यों का मानव - स्थायित्व के लिए प्रयुक्त विभिन्न संस्कारों, घटना - प्रवाहों, सामाजिक दायित्वों के वैचारिक ग्राह्य के अतिरिक्त कोई महत्व अथवा अर्थ नहीं है । अस्तित्व अर्थात् सत्ता की विद्यमानता को बिना जाने मान्यताओं एवं मानदण्डों के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। "अंधायुग " में कवि स्पष्टत: अस्तित्व -बोध से प्रभावित प्रतीत होता है । अश्वत्थामा युधिष्ठिर के अर्द्ध -सत्य एवं कृष्ण के अन्याय पूर्ण कार्यों के प्रति अपने में विद्यमान मनोग्रन्थि के कारण युद्ध से आत्म- संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है। मानव - निर्णय की महत्ता प्रतिपादित कर भारती जी ने अस्तित्व बोध की व्याख्या की है । कर्म से विरत व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता संजय ने स्पष्टत: स्वयं के विषय में कहा है -

" पर मै तो निष्क्रिय

निरपेक्ष सत्य

मार नहीं पाता हूँ

बचा नहीं पाता हूँ

कर्म से पृथक

खोजा जाता हूँ क्रमशः

अर्थ अपने अस्तित्व का ।" [38]

संजय के इस कथन से कवि ने अस्तित्व बोध की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कर्मण्य होने की प्रेरणा दी है । कवि भी एक सामाजिक प्राणी होता है - वह जिस प्रकार के युग अथवा परिवेश में रहता है - उसे अपने अनुभवों एवं चिन्तन के आधार पर अपने व्यक्तित्व में ढालकर छाप - स्वरूप काव्य अथवा कृति में उसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिम्बित करता है । इस रचना में कवि ने युगीन जीवन-दर्शन व्यक्त किया है । कवि मनुष्य की कर्मशक्ति पर विश्वास करता है । वह नास्तिक होते हुए भी अपनी जीवन दृष्टि के प्रतीक कृष्ण को मानते हैं जो अनासक्त कर्म पद्धति के साकार रूप है । कवि बौद्धिकता

- -

38· अंधायुग, पृ० - 125

और भावुकता के संगम पर आस्था रखता है । विशुद्ध मानवता ही उसका प्रतिपाद्य दर्शन है । कवि अपने काव्य के माध्यम से युद्ध - संस्कृति और आत्म-घाती मनोवृत्ति से मनुष्यता के ऊपर ले जाना चाहता है । उसका धर्म उपदेश होकर, व्यवहारिक जीवन में पवित्रता है । इस रचना की स्थापना है कि मनुष्य मतवादों एवं वीर पूजा के बंधनों से मुक्त होकर भविष्योन्मुखी हो । विजय लालसा और व्यक्तिगत उन हितों को छोड़ दे जिनसे दूसरों के हितों का बलिदान होता है । इसके अनुसार सत्य किसी व्यक्ति की मर्यादा में नहीं रहता । वह तो विशुद्ध विवेक जन्य कर्म का प्रतिरूप है । यही "अंधायुग " का जीवन-दर्शन है और इसी आधार पर यह एक " आधुनिक युग की संवेदन-पूर्ण रचना " है । " अंधायुग " ने मानव की सर्वोपरिता और उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता को परम मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है और यह निष्कर्षित किया है कि उसी दृष्टिकोण से संसार की वर्तमान समस्या हल हो सकती है । "अंधायुग " का सर्वेक्षण किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि भारती जी ने महाभारत कालीन निराशा और अनास्था को युगीन निराशा व अनास्था से जोड़कर जिस अंधायुग का निर्माण किया है वह भविष्य में हमें किस मानवीय दृष्टि को प्रदान करता है जिसकी सहायता से नवीन सृजन किया जाय ।

इसमें कवि ने ज्योति की कथा को अंधों के माध्यम से प्रकट किया है। इसमें कई आलोचकों ने रहस्यमय तथ्य का निरूपण किया है परन्तु यहाँ यह बात ज्ञातव्य है कि जो व्यक्ति अंधा है वह कैसे ज्योति व प्रकाश को व्यंजित कर सकता है उसके सम्मुख प्रकाश व अंधकार में कोई अन्तर नहीं है। तथापि कवि का मन्तव्य उस अंधे युग से है जिसमें चारों ओर विकृतियाँ व्याप्त है, और वह इनमें प्रकाश अथवा ज्योति की व्यापकता को दर्शाने के लिए प्रयत्नशील है।

तत्कालीन आण्विक संस्कृति ब्रह्मास्त्रों के युग से पृथक नहीं है। भारती ने महाभारत के शीत और गर्म युद्धों की विभीषिका,घुटन, टूटन को " अंधायुग " के पृष्ठों पर नवीन रूप में प्रस्तुत कर साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह किया है। अणुशक्ति यदि देश की सृजनात्मक शक्ति में लगे तो नव-निर्माण का द्वार खुल सकता है किन्तु यदि उसका दुरुपयोग हो तो समस्त सृष्टि का कण - कण बिखर कर ,टूट कर विच्छिन्न हो जायेगा। मानवीय विकृतियों का सबसे प्रमुख कारण भौतिक संस्कृति का पतनोन्मुख होना और वह निरन्तर विघटन की ओर अग्रसर हो रही है। सर्वत्र अनास्था ,युद्ध संस्कृति और आत्मघाती मनोवृत्ति से निर्मित, " अन्धायुग " का परिवेश, सत्य मर्यादा तथा दायित्व के प्रश्नों को उभारता है। लेखक के विचारों को पूर्ण मान्यता देने पर भी लक्ष्मीकान्त वर्मा ने " अंधायुग " को निराशावादी

अनास्था पूर्ण कृति नहीं स्वीकार किया है । परन्तु डा० मदन गुलाटी का मत इसके विपरीत है उनका कथन है - " भारती जी का इतिहास बोधरूग्ण है । वह आधुनिक युग के बदलते परिवेश में मृतप्राय है । " अन्धायुग " मानव जाति के इतिहास में न कभी आया है और न आएगा । प्रथम - द्वितीय विश्वयुद्ध की भयंकरता से परिचित विश्व जन मानस ध्वंस से भयभीत हुआ, यह सत्य है और यह भी सत्य है कि युद्ध से विनाश होता है लेकिन उस सत्य से बड़ा सत्य भी है कि मनुष्य हर विनाश के बाद निर्माण की नई शुरूआत करता है । मनुष्य की इस शक्ति को नजर अन्दाज करके मानवीय यथार्थ की सही अभिव्यक्ति नहीं हो सकती । युद्ध के बाद धरती पर खड़ा होने वाला मनुष्य अपेक्षाकृत नया होता है । उसकी संवेदना में ध्वंस, हिंसा और प्रतिहिंसा, कष्ट, दुःख सब कुछ घुल - मिल कर ढंग से रूपायित होते हैं कि वह जीवन के मूल्यों का एक नया संसार अपने सामने पाता है कवि अथवा कलाकार का यह कर्तव्य है कि वह ध्वंसात्मक शक्तियां के बीच भयभीत मनुष्य को उस जमीन से उगता दिखाए लेकिन भारती जी टूटते मनुष्य को कोई संबल नहीं दे पाए । वस्तुतः चुनौती वही कलाकार स्वीकार करता हुआ उस यथार्थ के बीच अपने कर्म के औचित्य को सिद्ध करने की क्षमता रखता है ।" [39]

---

39. डा० मदन गुलाटी - (नई कविता की प्रबन्ध चेतना) पृ० - 28 "अंधायुग " निबन्ध)

"अंधायुग" का रचनाकार बावजूद निराशा और टूटन घुटन के आस्था का प्रकाश देता है । वर्तमान जीवन में भी यही स्थिति है । "अंधायुग" का रचियता वस्तुत: जीवन में मर्यादा, सत्य आस्था एवं विश्वास की प्रतिष्ठा तथा अमर्यादा, असत्य, अनास्था, अविश्वास, कुण्ठा एवं प्रतिशोध आदि की अत्यधिक यथार्थता एवं कुरूपता व्यंजित करता है । मनुष्य चाहे कितना भी स्वार्थी हो जाय लेकिन वह जीने की इच्छा तो रखता ही है और यह स्थिति पौराणिक काल में भी थी और आज भी है । इससे यह प्रतीत होता है कि चाहे मनुष्य हजार बार मरे फिर भी वह जीवन को हर बार पाने का प्रयत्न करता है । यही प्रयत्न और स्थिति " अंधायुग " में इस ढंग से प्रस्तुत की गयी है कि एक पौराणिक आख्यान के सहारे लिखा गया " अंधायुग" वर्तमान का सशक्त लेख बन गया है । पौराणिक कथा में वर्तमान परिवेश की तीखी और यथार्थ चेतना के समावेश से न केवल मूल्यवान बन गया है, अपितु एक सार्थक काव्य नाटक भी हो गया है । डा0 सुरेश चन्द्र गुप्त का यह कथन उचित ही है - " अंधायुग " में परिचित जीवन-व्यवहार का ही समीकरण न कर अश्वत्थामा की अमानवीयता और सम्बन्ध-हीनता आदि का चित्रण किया गया है जो भारती के सर्जनात्मक बोध का परिचायक है ।"[40]

40· डा0 सुरेश चन्द्र गुप्त - (हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन) पृ0-675
सं0 डा0 गुलाटी

वस्तुत: भारती जी " अंधायुग " के माध्यम से जीवन का अवलोकन करना चाहते हैं जिसका आधार पौराणिक कथानक नवीन सन्दर्भों में व्यक्त माना जा सकता है। विशेष कर मानव अस्तित्व एवं युग - सत्य का यथार्थ प्रगटीकरण करने में कवि की सफलता अद्वितीय है। निष्कर्ष के रूप में अंधायुग के सम्बन्ध में यह उक्ति काफी हद तक सही है - " अंधायुग " की गणना उन अत्यन्त विरल और सशक्त कृतियों में की जा सकती है, जिनकी शक्ति और संवेदना एक ऐसे संपृक्त रूप में उभरती है, जहाँ भाव पक्ष और कलापक्ष जैसे विभाजन ही कृत्रिम लगने लगते हैं।"[41]

---

41. रामस्वरूप चतुर्वेदी - छायावदोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - कमला प्रसाद पाण्डेय पृ0 - 342.

कनुप्रिया

" अंधायुग " के पश्चात " कनुप्रिया " धर्मवीर भारती की दूसरी प्रबन्ध कृति है । नई कविता की प्रबंध काव्य रचना के क्रम में सृजनात्मक प्रेरणा की दृष्टि से आन्तरिक यथार्थ के संश्लिष्ट चित्रण की कारगर कोशिश " कनुप्रिया " में हुई है । आन्तरित यथार्थ का सम्बन्ध काल की सबसे छोटी "क्षण" के परिबोध से है । वस्तुतः " क्षण हमें इतिहास की असंगतियों तथा विरोधी स्थितियों के विवेक एवं (रेशनालिटी) समस्याओं के समाधान की खोज से विमुक्त कर देती है । ......तन्मयता स्वतन्त्रता को व्यवस्था से समंजित करने के प्रश्न को दबा देती है । काव्य कृति के धरातल पर राधा अस्तित्ववादी " स्वतन्त्रता" का भी चुनाव करती है तथा हरेक सामाजिक स्थिति को सहज (भावाकुल तन्मयता) की कसौटी पर कसती है ।"[1] प्रकारान्तर से यही संवेदना कवि की रचनात्मक प्रेरणा की पृष्ठभूमि में क्रियाशील है । पीड़ा, दायित्व - चेतना और मुक्ति - भावना आधुनिक मानवीय चेतना के प्रमुख पहलू हैं । नई कविता इन तीनों को समग्रता के साथ उभारती है । भारती के " अंधायुग " में दायित्व चेतना और मुक्ति भावना का वैयक्तिक एवं सामाजिक पक्ष को उभारा गया है । "पीड़ा" की भावना को नवीन भूमि में रूपायित करने का प्रयत्न " कनुप्रिया " में हुआ

---

1. डा0 रमेश कुन्तल मेघ - क्योंकि समय एक शब्द है पृ0 - 438

है । इसमें कवि की आन्तरिक शक्ति एक नया सन्देश लेकर आयी है ।

भारती ने इतिहास की प्रक्रिया और व्यक्ति की आन्तरिक तन्मयता में मूल्यों की आधुनिक व्याख्या की है । डा० रघुवंश का यह कथन उचित है - " क्षण की तन्मयता का विस्मरण नहीं, वरन् सजग उपलब्धि ही व्यक्तित्व को वह आयाम दे सकती है जिसमें इतिहास भी सार्थक हो सके ।"[2] "कनुप्रिया" में कवि ने राधा एवं कृष्ण के प्रणय को नई दिशा दी है । काव्य कृति के धरातल पर राधा अस्तित्वादी स्वतन्त्रता का भी चुनाव करती है तथा हरेक सामाजिक स्थिति को सहज (भावाकुल तन्मयता) की कसौटी पर कसती है । "कवि ने राधा के माध्यम से एक ऐसे आधुनिक व्यक्ति के प्रति अपना आग्रह व्यक्त किया है जिसका रोमांटिक भाव बोध की अपेक्षा अस्तित्व बोध से अधिक सम्बन्ध है । समस्त रचना में इसी कारण " क्षण " की महत्ता प्रतिपादित की गयी है । ऐसे आधुनिक (अस्तित्ववादी) व्यक्ति के सम्मुख तन्मयता के क्षणों में लीन होने पर भी दो विरोधी परिस्थितियों दो असंगतियों , जो द्विविभिन्न सामाजिक अनुभवों में समन्वय न कर सकने की समस्या खड़ी हो जाती है - इस समस्या को वह भावाकुल तन्मयता की कसौटी पर कसना चाहता है , जिससे कहीं - कहीं

2· डा० रघुवंश : कल्पना (मासिक - 1960 ई० (पृ० - 60

संशय एवं जिज्ञासा की क्षणिक प्रतीति होने पर दोनों का विलय हो जाता है ।"[3]
यह संशय और जिज्ञासा की क्षणिक प्रतीति ही कवि की सृजन धर्मी चेतना को प्रेरित करती है । प्रस्तुत सन्दर्भ में कवि की यह स्वीकारोक्ति उल्लेखनीय है - "लेकिन ऐसे भी क्षण होते हैं जब हमें लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है - महत्व उसका नहीं है - महत्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कृत होता है चरम तन्मयता का क्षण, जो एक स्तर पर सारे बाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ है । जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है । इस तरह कि समस्त वाह्य अतीत, वर्तमान, और भविष्य सिमट कर उस क्षण में पुंजीभूत हो गया है और हम, हम नहीं रहे ।"[4]

इन पंक्तियों से कवि की मानसिकता दृष्टिगोचर होती है । भारती जी ने इतिहास व काव्य में तादात्म्य स्थापित किया है उनका कथन है कि इतिहास की प्रक्रिया व व्यक्ति की आंतरिक तन्मयता दोनों स्थितियों में सार्थकता की खोज मूल्यों की आधुनिक व्याख्या के आसान समाधान है । मूल्यांधता की समस्या को सुलझाने के लिए उन्होंने "दायित्व युक्त " मर्यादित मुक्त आचरण " का उपाय बताया था । भारती जी का कथन है कि "अंधायुग"

- -

3· डा0 हुकुम चन्द राजपाल - नई कविता की नाट्योन्मुखी भूमिका - पृ0 - 179

4· धर्मवीर भारती - " कनुप्रिया " " भूमिका " पृ0 - ख ।

की समस्या के ही कुछ विशिष्ट सन्दर्भ " कनुप्रिया " में उद्घाटित हुए हैं।

मानवीय मूल्यों को नये युगीन सन्दर्भ में प्रतिष्ठित करने की कामना "कनुप्रिया " में भारती जी ने अलग स्तर पर उठाया है। इस प्रेम गाथा को प्रस्तुत करने के पीछे कवि का आशय अनास्था व आकांक्षा से ग्रसित विश्व व जर्जर राजनीति से दंशित नैतिक संघर्षों को प्रस्तुत करना है। अपने से बाहर का इतिहास की दुर्दान्त शक्तियों का विवेचन उन्होंने " अंधायुग" में किया। भारती की कविता में तद्युगीन पिसती - कराहती जनता की द्विधामयी मनोव्यथा को संवेदना पूर्ण स्वर मिला है। उन्होंने इतिहास के अराजक क्षणों में जीवन यापन के दो मार्ग इंगित किये है। प्रथम - इतिहास की दुर्दान्त सक्षम शक्तियों के सम्मुख सब कुछ सहकर जीवन ढोना और द्वितीय इतिहास के परिवर्तित मोड़ों पर स्वअस्तित्व को जीवन्त रखने का आग्रह। युद्ध के औचित्य-अनौचित्य तथा सार्थकता एवं परिणाम पर विचार करना भी कवि का लक्ष्य रहा है - " संकेतों और प्रतीकों के आधार पर राधा - कृष्ण की प्रेम कथा की पौराणिक प्रकृति को भरसक प्रामाणिक रखते हुए यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि मानव समुदाय की सार्थकता के लिए युद्ध के बदले प्रेम को स्थान मिलना चाहिए। प्रेम के बिना सत्य और न्याय महत्तर धारणाएं भी व्यर्थ हो

जा सकती है । पर धर्मवीर भारती ने इस मूल्यवान बोध के सम्प्रेषण का आग्रह रखते हुए भी राधा - कृष्ण से जुड़ी हुई रस और सौन्दर्य की भूमिका की उपेक्षा नहीं की है ।"[5] डा० श्रीराम नागर के अनुसार :" युद्ध और युद्धोत्तर स्थितियों से निर्मित मानव चेतना की उस निर्विकल्प अनास्था की द्योतक है , जो यह मानने को बाध्य हो जाती है कि युद्ध किसी धर्म की स्थापना नहीं कर सकता, युद्ध और सृजन स्तर पर पूरक भले प्रतीत होते हों, पर वे न तो एक दूसरे के पर्याय हैं न अनिवार्यत: समान मूल्य धर्मी ही । इतिहास बोध इस बात को प्रमाणित करता है कि युद्ध के कारक मूल्य युद्धाग्नि में भस्मीभूत हो जाते हैं तथा युद्ध में मूल्य निर्माण की कोई क्षमता नहीं होती । प्रेम जो स्वयं सर्जन-धर्मी होता है और युद्ध जो मूल्य ह्रास का सबसे बड़ा कारक है, को सामने रखकर शासक कूट-नीतिज्ञ व व्याख्याकार कृष्ण के पूरे व्यक्तित्व तथा उसकी सम्पूर्ण मूल्य दृष्टि को प्रश्न चिन्हित कर देने का सफल प्रयास कनुप्रिया में हुआ है ।"[6]

कनुप्रिया छठे दशक के अन्तिम वर्ष की कृति है । इसमें कृष्ण की कल्पना

- -

5· डा० राम स्वार्थ सिंह ·:- नई कविता और पौराणिक गाथा पृ० 165

6· डा० श्रीराम नाग्यर - कनुप्रिया : एक समीक्षा (नई कविता की प्रबन्ध चेतना में संकलित निबंध) पृ० - 40-41

पूर्ण पुरुष के रूप में की गयी है । इसलिए मानव जीवन का कोई ऐसा अनुभव नहीं जो कृष्ण नेनहीं किया । गायें चराने से लेकर योग की चरम साधना तक कोई ऐसी उपलब्धि नहीं जो उनमें न मिलती हो । प्रोफेसर विशम्भरनाथ उपाध्याय के शब्दों में, " वह एक साथ सहज और जटिल है, मेधावी और सरल है विजेता और रण छोड़ है, राजा और ग्वाल हैं, दुराचारी और योगी है कामी और संयमी है, दरिद्रता और समृद्धि अपना पन और सम्मान, अलगाव और प्यार सभी विरोधी तत्वों और शक्तियों का उनमें अधिष्ठान दिखा-या गया है ।"[7] कृष्ण की कल्पना भारतीय कल्पना की पूर्णता है । कवि ने राधा को पौराणिक अथवा " सूर " एवं " हरिऔध" की राधा नहीं, सर्वथा आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया है । सूर तथा हरिऔध ने जहाँ राधा को उसका युग प्रदान किया है वहीं भारती ने अपनी सम्पूर्ण मानसिकता प्रदान की है यही इसकी नवीनता भी है ।

रचनाकार का मन्तव्य समूची कृति में नारी की उत्तरोत्तर विकास मयी स्थिति का सांकेतिक ज्ञापन है इसीलिए इस एक पात्री कथा काव्य में राधा का व्यक्तित्व अधिक प्रबल है । कनुप्रिया में कवि ने अपना समाधान प्रस्तुत किया है । परन्तु यह समाधान भावाकुल तन्मयता के स्तर पर इतिहास प्रक्रिया को ग्रहण करने का स्वतः एक बिन्दु से देखने का प्रयास मात्र लगता है । कवि के अनुसार

7:- डा0 लक्ष्मण दत्त गौतम - धर्मवीर भारती पृ0 - 180

कनुप्रिया ही कृष्ण की उद्घोषित महानताओं से अभिभूत और आतंकित हुए बिना अपनी सहजता की कसौटी पर इतिहास के सारे मानव मूल्यों को कसना चाहती है ।" यह कहना कि समाधान का रूप तथा प्रक्रिया कवि की वर्तमान दृष्टि से अलग भी हो सकती थी, निरर्थक प्रतीत होता है पर मूल्यों के प्रश्न पर इस प्रकार का संकेत सार्थक माना जाता है । इतिहास के निर्मम घटना प्रवाह को विवेक के स्वाधीन प्रयोग से और मानवीय सम्बन्धों की भावशीलता से जोड़कर मानवीय नियति को मूल्य सम्पृक्त करने का एक मार्ग भी संभव है परन्तु भारती ने भावाकुल तन्मयता में कनुप्रिया को इन प्रश्नों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है ।"[8] "कनुप्रिया" में कवि ने नारी को महानतम बताया है इसमें आधुनिक नारी के अर्न्तमन की उधेड़बुन, शंका, विवशता और घुटन के साथ साथ तर्क - वितर्क स्वातन्त्र्य की भावना का सूक्ष्म निरूपण किया है डा० भारती की मान्यता है कि बीसवीं सदी के मशीनीयुग में निःसंदेह प्राचीन मूल्य परिवर्तित हो चुके हैं, पाश्चात्य सम्पर्क से नारी अधिकारों के प्रति पूर्ण जागरूक हैं । " कनुप्रिया " की राधा आधुनिक नारी के सदाशयी भावाकुल रूप उजागर करती है :- " लेकिन वह क्या करे जिसने

- -

8· धर्मवीर भारती, कनुप्रिया - पृ० - 73

अपने सहज मन से जीवन जिया है । तन्मयता के क्षण में डूब कर सार्थकता पायी है और जो अब उद्घोषित महानताओं से अभिभूत और आतंकित नहीं होता बल्कि आग्रह कि वह उसी सहज की कसौटी पर समस्त को कसेगा , परन्तु कनुप्रिया की राधा इतनी भोली नहीं है कि वह जड़ इतिहास निरर्थकता को समझ न सके । वह कृष्ण से पूछती है - " अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएं युद्ध की क्या ये सब सार्थक हैं। "

वह कृष्ण से कहती है कि यह इतिहास उसकी समझ से परे हैं । यह " बैसाखी पर चलता हुआ इतिहास " कनुप्रिया " के तन्मयता के क्षण की प्रतीक है । उसकी यह तन्मयता सहज मानवीयता की उपज है । इसीसहज कसौटी पर वह इतिहास को कसना चाहती है । उसका अनुभव " चरम साक्षात्कार का एक गहरा क्षण / सारे इतिहास से बड़ा "[9] है । उसने कृष्ण से अनुरोध किया कि अब इतिहास बनाते समय उसे भी इति -हास में गूंथा जाय -

" सुखी को तुमने बांहों में गूंथा

पर उसे इतिहास में गूंथने से हिचक क्यों गये प्रभु " ।[10]

- -

9· धर्मवीर भारती , - कनुप्रिया - पृ0 - 62

10· धर्मवीर भारती - कनुप्रिया - पृ0 - 88

परन्तु उसे स्वयं याद नहीं है कि उसने इतिहास में प्राण फूंकने के लिए कोई योगदान नहीं दिया है। अत: उसका यह प्रश्न निरर्थक है। वह स्वयं सक्रिय होकर इतिहास में गुथने की चेष्टा नहीं करती। यदि उसने अन्तर्मन से हिंसा मय इतिहास की पीड़ा को अनुभव किया होता तो उसकी छटपटाहट उत्तरदायित्व युक्त सक्रियता के रूप में अवश्य व्यक्त होती। अत: डा0 जगदीश कुमार का यह प्रश्न असंगत नहीं कहा जा सकता कि " भारती की कनुप्रिया को दुखियों का दर्द क्यों नहीं सताता।"[1] कनुप्रिया में ऐतिहासिक कृतिशीलता के अभाव में क्षण की तन्मयता का दर्शन निरर्थक हो गया है। इसमें इस तन्मयता का विस्मरण है, सजग उपलब्धि नहीं। सार्थक जीवन विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों की तन्मय क्षण - मालिका होता है। इस आकलन से कनुप्रिया रहित है। अत: कनुप्रिया महाभारत तथा भागवत के कृष्ण को परस्पर पूरक रूप में उपस्थित करते हुए सेतु नहीं बन पायी। इसलिए " कनुप्रिया " यथार्थ की अपेक्षा जीवन के रोमांटिक बोध की रचना ही बन सकी है। यह " पाकर खो देने की व्यथा भरी गूंज " से गुंजित प्रेम कथा है।

इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि कनुप्रिया में कथानक नाममात्र है। "पूर्वराग"

- -

1· जगदीश कुमार - नयी कविता - विलायती सन्दर्भ, पृ0- 90

में पाँच गीत हैं - पहले गीत में - छायादार पावन अशोक वृक्ष" का चित्रण है जो कनुप्रिया की प्रतीक्षा में कई जन्मों से पुष्प हीन खड़ा है । दूसरे गीत में प्रतीक्षा रत स्वर्णिम संगीत का रूपांकन है जो लज्जा की सृष्टि करता है जिसमें राधा को कृष्ण के प्रेम में अनन्य भाव से डूबा हुआ बताया है 2 तृतीय गीत में कदम्ब के नीचे ध्यानमग्न कृष्ण को अज्ञात वन - देवता समझ कर राधा उनका अभिवादन करती है - परन्तु कृष्ण अडिग, निर्लिप्त, वीतराग, निश्चय भाव से खड़े रहते हैं । राधा यह प्रवृत्ति जानकर अभिवादन करना ही त्याग देती है । यह अस्वीकृति ही बंधन के रूप में चित्रित है । चतुर्थ गीत में राधा का यमुना के नीले जल में स्नान करते समय कृष्ण के बंधनों का चित्रण है । राधा कहती है -

"मानों यह यमुना की साँवली गहराई नहीं है
यह तुम हो जो सारे
आवरण दूर कर
मुझे चारो ओर से कण - कण रोम - रोम
अपने प्रगाढ अथाह आलिंगन में पोर - पोर
कसे हुए हो ।" [12]

12· कनुप्रिया - पृ० - 16

यह राधा की तन्मयता की स्थिति का चित्र है । पाँचवे गीत में राधा की स्थिति है - वह गृह काज से अलसा कर कदम्ब के नीचे शिथिल अस्त-व्यस्त पड़ी हुई है । प्रेमिका राधा अपने प्रेमी की पुकार पर उसके वेणु - वादन की लय पर उसके नील जलज तन की परिक्रमा देकर अनन्त काल तक रास के नृत्य में मग्न बनी रहना चाहती है किन्तु मर्यादा का लोट आती है इसी कारण वह पश्चाताप ग्रस्त है ।

" मैं उस दिन लौटी क्यों -
कण - कण अपने को तुम्हें देकर रीत क्यों नहीं गयी ?
तुमने तो उस रास की रात
जिसे अंशत: भी आत्मसात किया
उसे सम्पूर्ण बनाकर
वापस अपने - अपने घर भेज दिया ।" [13]

डा० देवराज ने इस चरण की प्रशंसा करते हुए अपना मत व्यक्त किया है-
" विशुद्ध अन्विति की दृष्टि से सम्भवत: "कनुप्रिया " का " पूर्वराग " अंश सबसे सफल है कवि में विस्तार का लोभ नहीं है । उसने उतने ही मानसिक गीत

13· कनुप्रिया पृ० - 17

राधा और कृष्ण के सम्बन्ध में एक अभिनव परिवेश और रूप दे देती है - वे कवि की श्रेष्ठ कल्पना - शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करती है।"[14] " मंजरी - परिणय " के अन्तर्गत विषय का प्रतिपादन, " आम्र बौर का गीत ", " आम्र बौर का अर्थ तथा " तुम मेरे कौन हो - इत्यादि शीर्षकों में किया गया है। जिसमें किशोरावस्था से आगे की मन:स्थितियों का चित्रण बड़ी सफलता से किया गया है। साक्षात्कार के सुखमय क्षणों के मधुर - भय, अनजान संशय, आग्रह भरे गोपन और निर्व्याख्या वेदना और उदासी से अभिभूत राधा के मन यह चेष्टा बनी है -

" तुम्हारी जन्म जन्मान्तर की
रहस्यमयी लीला की एकांत
संगिनी मैं।"[15]

इस प्रसंग में राधा ने अपनी " क्वांरी उजली पवित्र माँग " का उल्लेख किया है जो परम्परा के अनुसार मान्य नहीं है। यहाँ पर भारती ने आम्र वृक्ष को कदम्ब के स्थान पर संकेत स्थल चुना है। यहाँ परिवर्तन का कारण सम्भवत: आम्र बौर की तुर्शी है स्वयं राधा कहती है -

---

14· डा0 देवराज, प्रतिक्रियाएं

15· कनुप्रिया , पृ0 - 23

" आम्र बौर की महक तुर्श होती है

तुमने अक्सर मुझमें डूब- डूब कर कहा है

कि वह मेरी तुर्शी है

जिसे तुम मेरे व्यक्तित्व में

विशेष रूप से प्यार करते हो ।" [16]

आम को कामदेव के पंचशरों में एक माना है । राधा " आम्र बौर का अर्थ न समझकर कृष्ण से मान न करने की प्रार्थना करती है क्योंकि कृष्ण राधा की प्रतीक्षा में आम के नीचे खड़े हैं तथा आम्र बौर को हाथों में लेकर चूर - चूर कर पगडन्डी पर बिखेर देते हैं जो कि राधा की उजली - क्वांरी माँग का प्रतीक है और निराश होकर वापस लौटजाते हैं । कृष्ण के विचित्र प्रेम का निदर्शन कवि इन शब्दों में किया है -

" मेरे लीला बंधु मेरे सहज मित्र की तो पद्यति ही यह है

कि वह जिसे भी रिक्त करना चाहता है

उसे सम्पूर्णता से भर देता है ।" [17]

16· कनुप्रिया - 32

17· कनुप्रिया - 30

कनुप्रिया के मन का प्रश्न " तुम मेरे कौन हो " में अधिक मुखरित हो सका है। वह कनु के विषय में अनभिज्ञ है। वह कृष्ण को कभी, सखा, सहोदर कभी लक्ष्य या आराध्य के रूप में एक साथ देखती है - तो कभी कान्ह उसका कुछ नहीं लगता -

" और इसीलिए सम्बन्धों की इस घुमावदार पगडन्डी पर
क्षण - क्षण पर तुम्हारे साथ
मुझे इतने आकस्मिक मोड लेने पडे हैं
कि मैं बिल्कुल भूल गयी हूँ कि
मैं अब कहाँ हूँ
और तुम मेरे कौन हो ।" [18]

राधा कृष्ण की " जन्म जन्मातर की रहस्यमयी लीला की एकान्त संगिनी " है। " असंख्य सृष्टियों का क्रम " और कुछ नहीं अपितु राधा कृष्ण की "अतृप्त क्रीडाओं की अनन्त पुनरावृत्तियाँ " मात्र है। इससे यह ज्ञात होता है कि राधा और कृष्ण प्रकृति पुरुष है। राधा कहीं भक्त - राधिका के रूप दीख पडती है। और कृष्ण आराध्य है। सम्बन्धों का यह रूप नया नहीं है पर इन्हें केन्द्र पर संतुलित करके व्यापक तथा विराट स्त्री पुरुष के भाव बोध में

18· कनुप्रिया - 40

व्यंजित करना नया है।

ई और मै बार बार नये नये रूपों में

उमड उमड कर

तुम्हारे तट तक आयी

और तुमने हर बार अथाह समुद्र की भाँति

मुझे धारण कर लिया -

विलीन कर लिया -

फिर भी अकूल बने रहे

मेरे साँवले समुद्र

तुम आखिर हो मेरे कौन

में इसे कभी माप क्यों नहीं पाती ?"[19]

" सृष्टि - संकल्प " में कनुप्रिया कनु की सृजन - संगिनी है। इससे कृष्ण की रहस्यमयता स्पष्ट होती है जिसमें सूर्य - चन्द्र तथा सागर की उत्ताल भुजाएं सब उनकी इच्छा स्वरूपा है। परन्तु कवि इस विराट सर्जन प्रक्रिया को शारीरिक

- -

19· कनुप्रिया - पृ0 - 40

संवेदनों तथा सम्बन्धों में बांधने में विवश हो जाता है -

" और यह प्रवाह में बहती हुए

तुम्हारी असंख्य सृष्टियों का क्रम

सहज हमारे गहरे प्यार

प्रगाढ़ विलास

और उत्तप्त क्रीड़ा की अनन्त पुनरावृत्तियाँ है । "[20]

इसी भाव का विस्तार " आदम भय " में हुआ है, निखिल सृष्टि को लीला तन के रूप में अनुभव करने वाली राधा को सर्जन के अज्ञात रहस्य "भय " से आकुल करते हैं ।

" सुनों मेरे बंधु

अगर यह निखिल सृष्टि

मेरा लीला तन है

तुम्हारे आस्वादन के लिए

तो यह जो भयभीत है - यह छाया तन

किसका है ?

किसलिए है - मेरे मित्र - ।"[21]

20· कनुप्रिया - पृ० - 44

21· कनुप्रिया - पृ० - 52

समस्त सृष्टि प्रकृति एवं ब्रह्माण्ड में राधा अपनी विद्यमानता स्वीकार करके भी भयभीत है ।

इस ग्रन्थ का अन्तिम उन्मेष " केलि - सखी " में व्यक्त हुआ है । इस शीर्षक में उन्मुक्त वासना, आवेग, एवं आकर्षण का चित्रण तथा मिलन का रूपांकन है । राधा के शिथिल, अधखुले तन को दिगन्त व्यापी अंधेरा पकड़ने को तत्पर है और उसे भय लगने लगता है -

" और इस निखिल सृष्टि के
अपार विस्तार में
तुम्हारे साथ में हूं - केवल में
तुम्हारी अन्तरंग केलि सखी ।" [22]

कथानक की दृष्टि से " सृष्टि - संकल्प " का विशेष महत्व है, क्योंकि इसमें समस्त सृष्टि, ब्रह्माण्ड और प्रकृति में राधा स्वयं को विद्यमान मानती है । इसमें सौन्दर्यात्मक चित्रों का सम्यक प्रस्तुतीकरण कवि ने किया है ।

इतिहास के अन्तर्गत " विप्रलब्धा " उपशीर्षक में राधा अतीत स्मृतियों का स्मरण कर कनु से पूछना चाहती है कि वह कौन था जिसके चरम साक्षात्कार

- -

22· कनुप्रिया - 57

का एक गहरा क्षण सारे इतिहास से बड़ा एवं सशक्त था । अब तो राधा के अंतस में स्मृतियाँ शेष है । यहाँ राधा की स्थिति बड़ी दयनीय है । राधा समय की गति को बाँधना चाहती हुई भी संशंकित है ।

" बुझी हुई राख में छिपी चिंगारी सा
रीते हुए पात्र की आखरी बूँद सा
पाकर खो देने की व्यथा भरी गूँज सा ।" [23]

राधा व्यक्तित्व की उपलब्धि के इन्हीं क्षणों में इतिहास को चुनौती देती है जहाँ राधा में एक ओर माधुर्य मय लीला तथा रोमांटिक भावकुलता दिखाई देती है। वहीं दूसरी ओर प्रश्नों तथा जिज्ञासाओं के द्वारा उसमें आधुनिकता पाई जाती है ।

" सेतु में " उपशीर्षक में राधा स्वयं को लीला क्षेत्र और युद्ध क्षेत्र के बीच का सेतु स्वीकार करती है । वह कृष्ण से कहती है - हाथ मुझी पर पग रख कर मेरी बाँहों से इतिहास तुम्हें ले गया ।" कृष्ण ने राधा के जिस्म सेतु से दोनों क्षेत्रों के अलंघ्य अंतराल को दूर किया और छलावा कर चले गये ।

23· कनुप्रिया - पृ० - 29

जिसको जाना था वह चला गया ।

राधा अर्जुन की भाँति सार्थकता समझने की इच्छा रखती है । " इतिहास " के अन्तराल में राधा विरोधाभास मनःस्थिति से गुज़रती है । वह जहाँ एक ओर इतिहास के सारे घटनाक्रम से सार्थक अपनी प्रणय केलि के क्षण को मानती है, वहीं दूसरे ओर स्वयं को सेतु मात्र रह जाने की निरर्थकता भी संवेदित करती है । यह एक अनकहा उपालंभ है । वह इतिहास का अर्थ नहीं स्वीकारती । वह कहती है -

" कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व
मैंने भी गली गली में सुने हैं ये शब्द
अर्जुन ने इनमें चाहे कुछ भी पाया हो
मैं इन्हें सुनकर कुछ नहीं पाती प्रिय ।"[24]

युद्ध की विभीषिका सम्पूर्ण भावनाएं समाप्त कर देती है । राधा सम्पूर्ण इतिहास को अपने प्रणय के सामने नकार देती है -

"तुम्हारे जादूभरे होठों से
रजनीगंधा के फूलों की तरह टप - टप
शब्द झर रहे हैं ।

24· कनुप्रिया - पृ0- 70

एक के बाद एक के बाद एक

कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व

मुझे सुन पड़ता है

राधन्, राधन्, राधन् ।"[25]

इन शब्दों में भारती की भाषा की एक विशिष्ट प्रवृत्ति " दोहराव की " लक्षित होती है । " समुद्र स्वप्न " में औचित्य - अनौचित्य के प्रश्नों पर विचार किया गया है । यह युग बोध की दृष्टि से प्रभावशाली रचना है ।

" समापन " में उपेक्षित रागात्मिका वृत्ति (राधा) के जीवन प्रक्रिया के लिए आवश्यक माना गया है, वह मानवीय विघटन एवं खोखले पन को रोकने के लिए भी आवश्यक है क्योंकि -

" बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता

तुम्हारे इतिहास का

शब्द, शब्द , शब्द

राधा के बिना

सब

रक्त के प्यासे

अर्थहीन शब्द ।"

25· कनुप्रिया , पृ0 - 71-72

वस्तुतः कनुप्रिया अपने व्यक्तिगत अनुभव जगत को लीला पुरुष के विराट में लीन करके भक्त राधिका के रूप में प्रस्तुत नहीं हो पाती और न ही अपने वैयक्तिक प्रणयानुभव को विश्वजीन बनाकर इतिहास की मूल्य प्रक्रिया से जुड़ पाती है ।

" कनुप्रिया " की आधुनिक संवेदना को स्पष्ट करते हुए राम स्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - " यह जटिल संवेदना है - व्यक्ति और इतिहास के पारस्परिक सम्बन्ध की महायुद्ध के समक्ष एकाकी मनुष्य की असहायता की ।" उन्होंने कहा है " " महायुद्ध के टूटते हुए व्यक्तियों की कथा " कनुप्रिया " की मुख्य संवेदना है । वह इतिहास के " रक्त " के प्यासे " अर्थहीन शब्दों से उद्विग्न है । उसकी यह ओढ़ी हुई उद्विग्नता, उद्विग्नता है क्योंकि "इतिहास से असंपृक्त व्यक्ति का यह दावा कि उसके बिना इतिहास को पूर्णता नहीं मिलती, एक निरर्थक गर्वोक्ति है ।"[26]

राधा का दुख आहत प्रणय का दुख है । राधा प्रेम की सहजता और कैशोर्य-सुलभ आत्म विभोरता की प्रतिमा है । भारती की धारणा है - " मानवता की समस्याएं मानव की जिस अखंड एकता के स्तर पर हल की जा सकती है वह विज्ञान अथवा तर्क का स्तर नहीं , बल्कि सहज रागात्मक सम्बन्ध का स्तर है ।" उन्होंने

- -

26· राम स्वरूप चतुर्वेदी, कविता यात्रा पृ० - 72

इसी धारणा के अनुसार रागात्मक ढंग से आधुनिक समस्याओं को भावाकुल तन्मयता के द्वारा हल करने का प्रयत्न " कनुप्रिया " में किया है कनुप्रिया पर अस्तित्व-वादी विचार धारा का भी प्रभाव पड़ा है । राधा को अनुभव होने वाला आदिम भय अस्तित्व वादियों का कारण हीन भय ही है । इसी प्रकार कहीं - कहीं अपने और कृष्ण की अद्वैतता का उल्लेख करते हुए भी वह सर्जनात्मक दायित्व के लिए अपने पृथक अस्तित्व की आवश्यकता का प्रतिपादन करती है । अस्तित्ववाद में लज्जा का " विशेष महत्व है । कीर्केगार्द ने तो कहा है - " मैं लज्जित हूँ, इसलिए मेरा अस्तित्व है ।" राधा भी " पुरुष " कृष्ण की "प्रकृति " होते हुए लज्जा का अनुभव करते हुए कहती है -

" तुम यह क्यों नहीं समझ पाते कि लाज
सिर्फ जिस्म की नहीं होती
मन की भी होती है ।" [27]

"कनुप्रिया " में वर्णित प्रेम के सम्बन्ध में प्राय: समीक्षकों का कथन है कि इसमें राधा और कृष्ण का प्रेम मानवीय प्रेम का समानार्थक है । कनु अपने युग

- -

27· कनुप्रिया , पृ0 - 23

का सचेत व्यक्ति है । जो एक ओर तो अपने जीवन के राग विरागों के प्रति भी उन्मुख और ईमानदार है , दूसरी ओर युगधारा के गति वेग से भी असम्पृक्त नहीं है । साथ ही " कनुप्रिया " में राधा और कृष्ण के कुछ क्षणों के लिए सामान्य नर - नारी मान लिया जाय तो समस्त कृति में नर नारी के प्रेम सम्बन्ध को चरम मूल्य के रूप में प्रकल्पित किया गया है । इसका कारण डा० देवराज बौद्धिक चेतना का अवतरण न होना मान इसमें संवेदना की गहनतम सत्यता एवं अन्विति की प्रतिष्ठा करते हैं । प्रेम के स्वरूप सम्बन्धी राधा और कृष्ण को एक नये दार्शनिक रूप में प्रस्तुत किया गया है । राधा कवि के समस्त दृष्टि-कोणों का प्रतिनिधित्व करती है वह जो कुछ कृष्ण से पूछना चाहती है - वास्तव में वे भारती की समस्याएं हैं जिनका समाधान उनकी दृष्टि में " तन्मयता के क्षण " हैं । इसलिए कृष्ण भी राधा की सार्थकता को स्वीकारते हैं । समस्त काव्य का केन्द्र बिन्दु राधा के इन शब्दों से स्पष्ट होता है -

"तुमने मुझे पुकारा था न
मै पगडन्डी के कठिनतम मोड पर
तुम्हारी प्रतीक्षा में
अडिग खडी हूं कनु मेरे ।"[28]

28· कनुप्रिया , पृ0 - 99

राधा ने कृष्ण के साहचर्य को उसके अनेक क्षणों में पूरी तन्मयता के साथ जिया था और जीकर एक सत्य पाया था इसीलिए वह सत्य उसका अपना है, कहीं से उधार लिया हुआ नहीं इस सत्य के प्रति राधा को आशंका नहीं होती है। यहाँ तक कि जब कृष्ण सेनानायक महाराज और दुनिया की नजरों में महान बन गये हैं तो भी राधा अपने सत्य को झुठलाती नहीं। उसे जिये हुए सत्य के अतिरिक्त ऐसा कोई सत्य नहीं दीखता जो उसके अपने लिए सार्थक हो। और पूरे विश्वास के साथ साक्षात्कृत सत्य से इतर सत्यों को अस्वीकारती हुई कहती है -

" पर इस सार्थकता को तुम मुझे
कैसे समझाओगे कनु !
शब्द शब्द शब्द
मेरे लिए सब अर्थहीन है।
यदि वे मेरे पास बैठकर
मेरे रूखे कुंतलों में अंगुलियाँ उलझाये हुए
शब्द शब्द शब्द
तुम्हारे शब्द अगणित है कनु संख्यातीत
पर उनका अर्थ मात्र एक है
मैं

मैं केवल मैं

फिर उन शब्दों से

मुझीको : इतिहास कैसे समझाओगे कनु ।"[29]

" कनुप्रिया" ऐसा प्रबन्ध काव्य है जो आधुनिक शिल्प और भावबोध दोनों को आत्मसात कर सका है । " कनुप्रिया " की भी मूल संवेदना प्रेम है किन्तु इस संवेदना को उसकी गहराइयों में उभारते हुए भी कवि मूल्यों से उसे असम्पृक्त नहीं कर सका है । इसकी मूल संवेदना है । भारती की समानियत इस बात में नहीं है कि वे सरल भावुकता से जीवन को देखते हैं बल्कि इस बात में है कि वे बहुत से नये कवियों की कोरी बौद्धिकता न ओढकर हृदय के रस में, संवेदना की आँच में स्वानुभव के ताप में कथ्य को गलाकर कहते हैं । इसलिए उनकी कविताओं में अपूर्व संवेद्यता और तरलता होती है । कनुप्रिया में काव्यत्व अधिक है । कृष्ण और राधा की प्रेम परम्परा में हमारी जाति एवं धर्म सीमाओं में बंधे थे । "प्रियप्रवास" में राधा का भाव लोक - सेवा की ओर आया था किन्तु यहाँ कवि ने उसे मानवता की भूमि में उतारने का सफल प्रयास किया है । इस रचना में यह संदेश व्यंजित है । कि मानवता को जीने के लिए बुद्धि और तर्क के साथ रागात्मक सम्बन्ध भी आवश्यक है क्योंकि ये जीवन के समग्र मूल्य है । - कनुप्रिया" का दूसरा साध्य है कि व्यक्तित्व से " क्षण की तन्मयता " के मूल्य को नहीं भुला जा सकता । अज्ञेय जी के अनुसार -"

" जीवन के मूल विपर्यय का कोई हल निरी बुद्धि से , निरे ऐतिहासिक चिन्तन और विश्लेषण से नहीं निकल सकता , मानवता की समस्याएं मानव की जिस अखण्ड एकता के स्तर पर हल की जाती है, वह विज्ञान एवं तर्क का स्तर नहीं बल्कि सहज रागात्मक सम्बन्ध का स्तर है । यह भारती की बुद्धिगत उपलब्धि है जिसे वह काव्य में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं , क्योंकि वह आधुनिक कवि है - कवि होते हुए भी आधुनिक है।"[30]

30· अज्ञेय - " कल्पना " जनवरी {1960}, पृ० - 60

" शम्बूक "

कवि अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है । युग - परिवर्तन को देख सुन कर पुरानी मान्यताओं की पुनर्व्याख्या और नयी मान्यताओं का निरीक्षण परीक्षण ही कवि की रचना को कालजयी बनाता है । वास्तविकता का सामना करना अग्नि परीक्षण के समान है । कोई भी व्यवस्था मात्र नारों की अनुगूंज में युग की वास्त - विकता को नहीं छुपा सकती क्योंकि सत्य न तो स्थानान्तरित किया जा सकता है और न विखण्डित । सत्य की खोज में चलने वाला अनेक दुरभि: सन्धियों का शिकार बनकर अवमानना के गर्त में दबा हुआ सा दिखाई पड़ता है, लेकिन उसकी आवाज को सदैव दबाकर नहीं रखा जा सकता । प्रतिपक्ष की इसी आवाज को नये कवियों ने आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में मिथक, पुरावृत्त अथवा पुराख्यान के रूप में चित्रित किया है ।

महाभारत और राम कथा में अनेक ऐसे पुराख्यान हैं जिनके माध्यम से समकालीन समस्याओं का समाधान खोजना अपेक्षा कृत अधिक आसान और अधिक प्रभावशाली रहा है । " अंधायुग ", "कनुप्रिया " ﴾धर्मवीर भारती ﴿, संशय की एक रात, "महाप्रस्थानक ", " प्रवाद पर्व " शबरी" ﴾नरेश मेहता ﴿ "आत्मजयी" ﴾कुंवर नारायण ﴿, एक कंठ विषपायी " ﴾ दुष्यन्त कुमार ﴿ और " एक पुरूष और"

की परम्परा में डा0 जगदीश गुप्त का " शम्बूक " भी एक ऐसी कड़ी है । "शम्बूक" की "भूमिका में " जगदीश गुप्त कहते हैं - " आज से लगभग पाँच वर्ष पूर्व 1·8·70 को मैंने पुरावृत्त नाम से कुछ ऐसी कविताएं लिखने की योजनाएं बनाई थी जिन्हें प्राचीन कथाओं तथा पौराणिक प्रसंगों को नयी अर्थवत्ता के साथ नये रूप में प्रस्तुत करने का संकल्प निहित था । जो बात किसी सीधे या अन्य प्रकार से कहना सम्भव न हो उसे कहने में ऐसी कथात्मक संयोजना निश्चित रूपसे सहायक होती है ।"[1]

प्रकारान्तर से कवि ने सामयिक मूल्यों की ह्रासोन्मुखी स्थिति और युगीन समस्याओं के समाधान हेतु इस काव्य की रचना के दायित्व को स्वीकारा है । " शम्बूक " के माध्यम से वर्तमान सन्दर्भों में अन्तर्ग्रन्थित समस्याओं का निदान करते हुए मानव मूल्यों का चित्रण करना ही कवि की सृजन प्रेरणा की पृष्ठभूमि में क्रियाशील रहा है ।

" शम्बूक " हिन्दी राम काव्य परम्परा की सबसे नयी कड़ी है । आधुनिक युगीन राम कथाओं " वैदेही वनवास " ﴾हरिऔध﴿, "साकेत "

- -

1· डा0 जगदीश गुप्त - शम्बूक कवि कथन पृ0 - 7-8

(मैथिली शरण गुप्त), " साकेत संत " (बलदेव प्रसाद मिश्र), " कैकेयी " (नवीन)
"संशय की एक रात " (नरेश मेहता) " राम की शक्ति पूजा " (निराला)
तथा प्रवाद पर्व (नरेश मेहता) में " शम्बूक " इन अर्थों में विशिष्ट काव्य बन
पड़ा है कि इसमें राम के चरित्र को तो नये परिवेश में प्रस्तुत किया ही गया है
अपितु " भूमि पुत्र " " शम्बूक " को भी नयी शक्ति व चेतना देकर प्रस्तुत किया
गया है । वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड " जिसे प्रक्षिप्त माना जाता है,
उसके प्रथम सर्गों , " पदम पुराण " के सृष्टि खण्ड, " महाभारत " के शान्तिपर्व,
रघुवंश " के पन्द्रहवें सर्ग, उत्तर रामचरित के द्वितीय अंक तथा " आनन्द रामायण"
के अनेक अध्यायों में शम्बूक प्रसंग कहीं विस्तार के साथ और कहीं संक्षिप्तता के
साथ मिलता है । शम्बूक वध की एक दूसरी परम्परा "पउम चरित्र " तथा कन्नड़
और उड़िया भाषा की कई रामायणों में मिलती है । जिसमें शम्बूक को " जम्बू
कुमार " , जम्बुमाली और " जपासुर " आदि कहा गया है । यही नहीं शम्बूक
को चन्द्रनखा या शूर्पणखा का पुत्र भी कहा जाता है । दूसरी परम्परा में शम्बूक
वध राम के स्थान पर लक्ष्मण के द्वारा कराया जाता है । जिसे कवि ने संगति
न बैठने के कारण छोड़ दिया है । कवि ने " शम्बूक " में निम्न सारभूत मुद्दों

को प्रस्तुति दी है :-

(क) व्यवस्था सम्बन्धी निरंकुशता के विरुद्ध शम्बूक की आवाज तथा उसका कुचला जाना एक सामयिक प्रश्न एवं प्रासंगिक कथ्य संदर्भ है । "शम्बूक" लोकतान्त्रिक मूल्यों की संस्थापना का सार्थक प्रेरणात्मक साधन बना है । इसीलिए शम्बूक राम से प्रश्न करता है कि -

" जो तुम्हारे पक्ष में हो
कुछ करे अन्याय
तुम रहोगे मौन
भूलोगे समस्त उपाय
शासकों को
सदा यह सुविधा रही है राम
प्रजा को इससे सदा दुविधा रही है राम ।
मारते हो और कहते हो इसे उद्धार
चलेगा कब तक तुम्हारा घृणित व्यापार "।[2]

- -

2· शम्बूक - पृ0 - 53

निश्चय ही " शम्बूक " हमारे लोकतान्त्रिक समाज की मर्यादाओं और मान्यताओं के समक्ष सम्पूर्ण व्यवस्था को चुनौती देते हुए अनुत्तरित, समाधान हेतु खड़े प्रश्न - चिन्हों के यथार्थ को उजागर करता है ।

(ख) कर्मशील मानव के मूलभूत सामाजिक दायित्व को समझकर एक संतुलित मध्य - मार्ग खोजने की चेष्टा करना ही कवि का मूल अभिप्रेत है ।

"मनुज पशुता के भाव से
ऊपर उठे
ज्योति के प्राचीर - सा / भू - पर उठे
अन्तरिक्षों तक
सहज गतिमान हो
मानसिक संकल्प / उसका यान हो
बुद्धि के पीछे
नख दन्त जो
घात का उनके / किसी विधि अंत हो
x x x x
सब करें सेवा
अगर वह श्रेष्ठ है

त्याग दें सब स्वार्थ,

यदि वह नेष्ट है ।"[3]

कवि समकालीन ह्रासोन्मुखी स्थितियों में नवीन मूल्यों की खोज और उनकी स्थापना को भी सृजनात्मक प्रेरणा के रूप में स्वीकार करता है । इस क्रम में समानता के मूल्य का प्रतिपादन द्रष्टव्य है -

" सहज समता हो सभी में व्याप्त

व्यवस्था के हेतु यह पर्याप्त

भूमि पर फिर भूमि की संतान

करे शासन श्रम बने श्रीमान् ।"[4]

कवि ने वर्ण व्यवस्था पर (असमानता पर आधारित) कुठाराघात भी किया है -

" सभी पृथ्वी पुत्र है जब जन्म से

क्यों भेद माना जाय

जन्मजात समानता के तथ्य पर

क्यों खेद माना जाय

- -

3· शम्बूक, पृ० - 73- 76

4· शम्बूक - पृ० - 68

"जन्मना जायते शूद्र:
क्या नहीं सबके लिये यह सत्य
और " संस्कारात् " ही " द्विज उच्यते "
की घोषणा का क्यों न हो सातत्य ।"[5]

"शम्बूक " का कथ्य " राज द्वार ", "पुष्पक यान, "वन देवता", "दण्ड कारण्य " , "प्रतिपदा", छिन्नाशीष, " आत्मकथा ", "रक्त तिलक " शीर्षकों में विभक्त है, जिन्हें कवि ने अंश कहा है । काव्य का प्रारम्भ राजद्वार से होता है । चारो तरफ उल्लसित वातावरण है ऐसे समय एक ब्राह्मण अपने सर्पदंश से पीड़ित पुत्र को लेकर आता है और अपने पुत्र की अकाल मृत्यु का कारण राजा को बना देता है । प्रजा आतंकित हो जाती है -

रामराज रहा नहीं अकलंक
इस कमल में भी सना है पंक
हुआ राजा से कहीं कुछ पाप
क्यों प्रजा पर छा रहा संताप ।"[6]

- -

5· शम्बूक , पृ0 - 49

6· वही , पृ0 - 6

राम पर प्रजा स्वार्थी होने का आरोप लगाती है । प्रजा के अभियोग से वे परिचित तो होते हैं परन्तु शम्या का परित्याग नहीं करते हैं । विप्र पुत्र की अकाल मृत्यु से प्रजा में शंकाएं उत्पन्न होने लगी । गुरु वशिष्ठ को नारद द्वारा ज्ञात होता है कि कोई शूद्र स्वर्ग के सुख लूटने की कामना से तपस्या कर रहा है । वशिष्ठ का कथन है कि देवता स्वार्थ में अंधे होते हैं । विप्र- सुत का शूद्र तप से कोई सम्बन्ध नहीं है । नारद अपने तर्कों से उन्हें शान्त कर विप्र-पुत्र के जीवित होने का उपाय बताते हैं -

" विपिन जाकर
शूद्र - मुनि - वध
जब करेंगे राम
विप्र सुत
होगा तभी जीवित
सहज परिणाम ।"[7]

राम पुष्पक यान पर बैठकर शम्बूक वध के लिए उन्मुख होते हैं । दण्डकारण्य की शोभा का वर्णन कवि ने द्वितीय अंश में किया है । राम के स्मृति चित्रों के माध्यम से पूर्व घटित का आभास रचनाकार ने दिया है । राम का स्वागत प्रकृति के सुरम्य वातावरण में स्वयं वनदेवता द्वारा किया जाता है । वे राम के

7· शम्बूक , पृ0 - 11-12 .. ,,

अन्तस् की बात अनुकूल स्थिति में कहते हैं -

" सुना फैली है तुम्हारी

योजनों तक योजनाएं

पर अगर

आयोजनों तक योजनाएं

यदि पहुँच पायी नहीं

भूखे जनों तक योजनाएं

x x x

अध मरे कहाँ तक

संतोष को खाएं खाएं ।"[8]

यहाँ व्यंग्य करना ही कवि का अभिप्राय है । यह व्यंग्य सत्ता की कागजी योजनाओं पर है जो पिछड़े वर्ग तक लाभ का लघु अंश भी नहीं पहुँचने देते । "प्रतिपक्ष" में राम शासक - पक्ष और व्यवस्था पक्ष के प्रतिनिधि हैं और शम्बूक प्रतिपक्ष का । शम्बूक वर्ग भेद करने वाली व्यवस्था को चुनौती देता है तथा राम के लोकनायक व्यक्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगाता हुआ कहता है कि -

- -

8· शम्बूक - पृ0 - 29

"लोक नायक वही जो -

संवेदना का मर्म समझे

धर्म और अधर्म समझे

कर्म और अकर्म समझे

लोक नायक वही

जो विश्वास अर्जित कर सके

प्रत्येक का

और जो सारी प्रजा के

चित्त का प्रतिरूप हो ।"[1]

राम कर्मच्युत होने की दलील देकर अपने पक्ष को सत्य सिद्ध करते हैं। शम्बूक राम को शूद्र-घाती बताकर उनके समता बोध को चुनौती देता है। राम क्रुद्ध होकर ब्राह्मण रावण के वध की दुहाई देकर स्वयं को इस आरोप से मुक्त करने का प्रयत्न करते हैं। शम्बूक उत्तर देता है कि रावण वध के समय सीता हरण की व्यक्तिगत समस्या तुम्हारे सामने था। निजी स्वार्थों के

- -

1· शम्बूक - पृ0 - 48

कारण तुमने युद्ध किया । उसका प्रश्न राम के सम्मुख था :-

क्यों तुम्हारे न्याय का आधार है वध मात्र ?

क्या विपक्षी सब केवल तुम्हारे लिए बध के पात्र ?"

* * * * *

मारते हो और कहते हो उसे उद्धार

चलेगा कब तक तुम्हारा घृणित व्यापार ।"[10]

इसी प्रकार शम्बूक ने राजसी व्यवस्था द्वारा आर्थिक शोषण एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों के विघटन पर व्यंग्य किया । शम्बूक अपने तर्कों द्वारा राम पर पूरी तरह हावी रहता है । अंत में राम द्विविधा से उबर कर शम्बूक का मस्तक काट देते हैं ।

" छिन्न शीश " कथा का छठा अंश है । शम्बूक का कटा सिर अपने तर्कों से राम के मस्तिष्क पर चोट करता रहा । हिंसा - अहिंसा, पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय, और धर्म - अधर्म के विषय को नवीनता के साथ व्याख्यायित किया गया है -

- -

10· शम्बूक , पृ0 - 53

"मात्र हिंसा नहीं मानव न्याय
है अहिंसक और और उपाय
दण्ड के हैं और बहुत विधान
शीघ्र जिनसे ले, कि भान
व्यक्ति अपने आप, सहित विचार ।"[1]

राम के ऊपर वाक्य प्रहारों का सिलसिला जारी रहता है । शम्बूक वर्ण-व्यवस्था जो कि जन्म पर आधारित है, को अनौचित्यपूर्ण ठहराता है । राम पश्चाताप करने लगते हैं । परन्तु उनके मन मस्तिष्क पर शम्बूक के तर्कों का प्रभाव पड़ता है । अन्तिम अंश " रक्त तिलक" में शम्बूक के कटे शीश का एकलव्य के कटे अंगूठे से वार्तालाप है । इस प्रकार राम के अन्तस् पर हो रही चोट, सत्ता एवं व्यवस्था पर निर्मम प्रहार है । रक्त का तिलक समाज के माथे पर लगा वर्ण-संकीर्णता का चिन्ह है । राम अवाक् और अनुत्तरित रह जाते हैं ।

वस्तुतः "प्रतिपक्ष" एवं "रक्त तिलक" ही काव्य के प्रतिपाद्य अंश है । यदि " प्रतिपक्ष " को " शम्बूक " में से निकाल दिया जाय तो "शम्बूक "

- -

1. शम्बूक - पृ0 - 76

साधारण रचना हो जाती है । राम के सामने रखे गये प्रश्न आज के सन्दर्भ में व्यवस्था के सामने रखे जाने वाले प्रश्नों से भिन्न नहीं है । इसीलिए शम्बूक प्रतिपक्ष की बुलन्द आवाज है । राम के यह कहने पर कि जो व्यक्ति व्यवस्था को भंग करने का संकल्प ही कर ले उसे प्रश्न करने का अधिकार नहीं होता । शम्बूक उत्तर देता है - हे राम । लोकनायक वह है जो सभी का विश्वास अर्जित कर सके । राम उससे कहते हैं -

" तप नहीं है शूद्र का कर्तव्य
फिर से सोच लो शम्बूक
उसे सेवा करना ही है भव्य
क्यों उसमें कर रहे हो चूक "[12]

शम्बूक का उत्तर है - हे राम । तप तो सृष्टि का आधार है, तप से ही संसार चलता है तप ही मनुष्यों को संबल प्रदान करता है -

"मैं तुम्ही से पूछता हूं राम
वही तप दुष्कर्म कैसे हो गया

- -

12· शम्बूक, प0 - 50

वही तप अपराध कैसे हो गया

राज्य दण्ड अबाध कैसे हो गया ?"[13]

राम द्वारा यह कहने पर कि वे शम्बूक की बातों से उद्विग्न नहीं है क्योंकि उन्होंने शासन पालन धर्मानुसार किया है। परन्तु शम्बूक यह नहीं मानता वह कहता है कि शासक को अपनी भूल नहीं दिखायी देती है उसे सिर्फ प्रजा ही अपराधी नजर आती है परन्तु जो शासक के पक्ष में अपना मत देता है चाहे वह कितना भी अन्याय करे परन्तु राजा उसकी भूल की ओर ध्यान नहीं देता है। शम्बूक का राम पर लगाया गया यह आरोप निराधार नहीं है इसके पीछे वह तर्क भी देता है। जैसे दशरथ ने केवल राम को वनवास दिया था परन्तु वे अपने साथ सीता एवं लक्ष्मण को भी बन क्यों ले गये ? सीता - हरण राम का व्यक्तिगत कष्ट था फिर क्यों इस कष्ट मुक्ति के लिए राम - रावण संग्राम समाज पर लाद दिया गया। ताड़का, मारीच, बालि, खर, दूषण, त्रिशिरा, सुबाहु, कबन्ध का वध क्या न्याय संगत है ? क्या शासक के न्याय का आधार केवल वध होता है; क्या सभी विपक्षी शासक पक्ष के लिए वध के पात्र होते हैं ? क्या जो दलबदल, कर

- -

13· शम्बूक, पृ० - 50

शासक के पक्ष में आ जाता है वह शिष्ट कहलाने योग्य हो जाता है। विभीषण को हेय समझा जाता है। राम ने सीता से विवाह किया था परन्तु वे सीता के मन पर आधिपत्य नहीं जमा पाये। यदि उन्हें सीता से स्नेह होता तो रजक द्वारा प्रजा में प्रवाद फैलाने पर लक्ष्मण द्वारा चुपचाप सीता के न भेजकर स्वयं राज्य का परित्याग कर सीता के साथ वन चले जाते। परन्तु ऐसा नहीं हुआ क्योंकि राम को शासन प्रिय था।

" शम्बूक " के माध्यम से कवि ने प्रतिपक्ष के मर्म को उद्घाटित किया है। इसीकारण "शम्बूक" नई कविता की चर्चित कृति बन सकी है। इसके माध्यम से कवि ने वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध तथा शासक वर्ग के विरुद्ध प्रश्न उठाए हैं। जिस प्रकार से " शम्बूक के माध्यम से भारतीय जनतन्त्रात्मक गणराज्य में व्यवस्था के द्वारा बलात् दबाई जाने वाली आवाज को उठाया गया है, वही शम्बूक की मौलिक पहचान है।

xxxxxxxxxxx

संशय की एक रात

संशय की एक रात " जैसी कृतियों ने नयी कविता के कथ्य को प्रबन्धात्मक शिल्प के सहारे संप्रेषित करके व्यापक दृश्य फलक प्रदान किया । आधुनिक जीवन की जटिल स्थितियों और मनोभावों की व्याख्या के लिए आधुनिक कवियों ने अपनी प्रबन्ध रचनाओं में पौराणिक प्रतीकों तथा कथा - प्रसंगों तथा पौराणिक घटनाओं का सर्जनात्मक उपयोग कवि के अनुभव को एक व्यापक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है । "संशय की एक रात " का मूल केन्द्र बिन्दु संशय एवं संघर्ष है । वाह्य एवं आन्तरिक संशय एवं संघर्ष का प्रस्तुतीकरण करने के लिए नरेश मेहता ने पौराणिकता का आश्रय लिया है । रचनाकार भी समाज से जुड़ा हुआ होता है जो मानवीय घुटन, कुंठा, वेदना, भय, सन्त्रास, नैराश्य और अतृप्ति ,दुर्निवार, पीड़ा की संवेदना को महसूस कर अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करते हैं ।

सम्पूर्ण कृति राम के आत्म संघर्ष पर केन्द्रित है । प्रस्तुत रचना की विषयवस्तु का साम्य भारतीय शीर्षस्थ नेताओं की उद्भ्रान्त स्थिति से किया है। चीनी आक्रमण के समय ऐसी स्थिति रचनाकार के मन में घर कर गयी और उसी का परिणाम है कि राम के संशयी रूप में उन्होने आत्मसंघर्ष को प्रचण्ड युद्ध (संघर्ष)

की अनिवार्यता तक ले आने का सार्थक उपक्रम किया है । चीनी आक्रमण के समय भारतीय नेता नि:संकोच युद्ध को स्वीकारने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि उनके मस्तिष्क पर पंचशील, शान्ति और अहिंसा ने एक आवरण डाल दिया था। इस कोटि के लिए, किसी भी स्थिति में चाहे वह स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए ही क्यों न हो, युद्ध की चुनौती के पक्ष में निर्णय लेना स्वयं में जोखिम का कार्य था । राम के संशयी चरित्र को अति विस्तार के साथ प्रस्तुत करते समय कवि का लक्ष्य रामायणीय मिथकों द्वारा सामयिक युग -बोध व्यंजित करना रहा है। राम या तो ईश्वर रहे हैं या चिंरतन गुणों से भूषित महापुरुष । इसलिए राम काव्यों में राम के दृढ़ संकल्प और अटूट निर्णयों को ही लिया है । उनके भीतर उठने वाले संशय, विकल्प या द्वन्द्व की तड़प को नहीं व्यक्त किया गया है जबकि उनके जीवन में निर्णय -अनिर्णय के द्वन्द्व के अनेक गहन प्रसंग है । यही कारण है कि राम प्रस्तुत म रचना में मात्र ऐतिहासिक मर्यादित एवं आदर्शवादी व्यक्तित्व को धारण नहीं किये है वरन् वे एक साधारण व्यक्ति के रूप में आए हैं, जो किसी भी मूल्य पर व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति हेतु जन- विनाश का भागीदार नहीं बनना चाहता ।

वस्तुत: सभी समस्याओं का मूल आधार संशय व संघर्ष है । जब हम प्राचीन ग्रन्थों या इतिहास को देखते हैं तो यह दृष्टिगत होता है कि संघर्ष का एक आधार (केन्द्र) बिन्दु " अपमान " है । कोई व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र

के द्वारा किसी धरातल पर स्वयं को तुच्छ समझता है जिसके कारण उनमें कई बार हीनता की ग्रन्थियाँ अंकुरित होती है। यह स्पष्ट है कि अपमानित सदैव लघु या तुच्छ होता है। इसके विपरीत यदि कोई महान व्यक्ति किसी छोटे से अपमानित होते हैं तो विराटत्व में लघुत्व को मिटाने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इसके साथ साथ उसे राष्ट्र तथा जन सहयोग भी प्राप्त होता है। तथा यहीं से संघर्ष की प्रवृत्ति जाग उठती है। हिन्दी साहित्य में सभी युगों की महान प्रबन्ध कृतियों में " संघर्ष" का मूल अपमान ही रहा है। "महाभारत" में द्रौपदी द्वारा अपमानित दुर्योधन उसे सभी सभासदों के समक्ष वस्त्रहीन कर आत्मिक द्वेष को प्रकट करता है। इसे पांडव विशेषकर भीम अपना महाअपमान समझकर प्रतिज्ञा करते हैं। यही से महाभारत की नींव पड़ती है जो आगे चलकर विनाशकारी युद्ध में परिवर्तित हो गया। आधुनिक काव्य या नई कविता का आरम्भ 1950 के लगभग माना जाता है। इस काल की समस्त प्रबन्ध रचनाएं युद्ध जन्य पीड़ा व निराशा से ओत -प्रोत रही हैं। "अंधायुग" महाभारतीय मिथक पर आधारित रचना है। जिसमें अपमान बोध से प्रतिशोधात्मक -स्थिति में घोर संघर्ष होता है। " एक कंठ विषपायी " का तो मूल बिन्दु ही अपमान बोध है। दक्ष शिव द्वारा स्वयं को अपमानित मानकर उन्हें यज्ञ में आमंत्रित नहीं

करते है इससे दक्ष सुता सती जो शिव की पत्नी हैं अपना अपना अपमान समझकर आत्मदाह करती है । इसी आत्मदाह के कारण शिव प्रतिहिंसित होकर समूल नष्ट करने उठते हैं । "संशय को एक रात " का कथानक रामयण के सेतुबन्ध की एक रात की घटना तक सीमित है । इसमें अपमान और प्रतिशोध के कारण ही राम - रावण का युद्ध हुआ । प्रस्तुत रचना में पुरा-कथा के माध्यम से युग जीवन की अनेक विडम्बनाओं के बीच मे गुजरते हुए नरेश मेहता ने अपनी आत्मस्थिति को पहचानना और अपनी अस्मिता की बेचैनी भरी खोज का मार्मिक चित्रण किया है । काव्य में नरेश मेहता की दृष्टि "संशय " पर अधिक रही है ।" संशय की एक रात - जिस युग की रचना है वह युग वास्तव में विघटन का युग है और यह विघटन किसी एक सन्दर्भ में नहीं प्रत्युत कई सन्दर्भों में है । आज हमारे अपने कई सवाल हैं हमारी अपनी समस्याएं हैं । जिनका समाधान हमें ही ढूंढना है । आस्था अनास्था, व्यक्तित्व १ खण्डित व्यक्तित्व युद्ध और शान्ति साम्राज्यवादी दृष्टि उपनिवेश आदिता, कई समस्याएं है जो हमारे सामने विकल्प बनकर आने लगी है । " संशय की एक रात " इन्हीं सवालों, समस्याओं का आंशिक समाधान है , इस कार्य के लिए कवि ने राम कथा के जिस अंश को प्रबन्ध के लिए चुना है, वस्तुत: वह आधुनिक बोध के

लिए माध्यम मात्र है, प्रतीक मात्र है । प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत पाये जाने वाले राम, लक्ष्मण, हनुमन्त, विभीषणादि सभी आधुनिक चेतना के वाहक है । अतएव "संशय की एक रात " में नरेश ने जिन समस्याओं को उपस्थित किया है वे समस्याएं भी पूर्णरूपेण सनातन, प्रज्ञापुरुष राम की न होकर हमारी है, आधुनिक प्रज्ञा पुरुष की है, अत्याधुनिक चेतन मानव की अथवा चिन्तन शील पुरुष की है।"[1]

युद्ध और शान्ति के सनातन प्रश्नों पर विचार करना कवि की सृजनात्मक प्रेरणा का प्रस्थान बिन्दु रहा है । यह काव्य राम के आत्म संघर्ष पर केन्द्रित है । उनकी व्यक्तिगत समस्या है उनका अपना विवेक यह स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि मात्र सीता की मुक्ति के लिए अनेक व्यक्तियों को विनाशकारी युद्ध में बलि चढ़ा दिया जाय -

"यदि मानवीय प्रश्नों का उत्तर मात्र

युद्ध है । खड्ग है।/ तो ....

समर्पित है यह

धनुष बाण, खड्ग और शिरस्त्राण

मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए

बाण - विद्ध पाखी सा विवश

1· डा० बलभीम राज गोरे, हिन्दी के बहुचर्चित काव्य नये सन्दर्भ - पृ० - 34

साम्राज्य भी नहीं चाहिए

मानव के रक्त पर पग धरती आती

सीता भी नहीं चाहिए ।"[2]

इसके और सामान्य जन की यातनाओं और संघर्ष का प्रतिनिधित्व करने वाले हनुमान हैं, जो राम की व्यक्तिगत समस्या को समान्य जन की मुक्ति की समस्या के रूप में देखते हैं। आत्मसंघर्ष के कारण राम संशय से ग्रसित है। इस: मूल में सीता हैं जिन्हें स्वतन्त्रता तथा पवित्रता का प्रतीक माना गया है। इसके अन्य पात्र हनुमान, लक्ष्मण, विभीषण, जामवन्त, दशरथ और जटायु की प्रेत आत्माएं इस संघर्ष से राम को मुक्त करने के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत करती है। राम - रावण के युद्ध की पुनरावृत्ति कवि का लक्ष्य नहीं रहा है। रचनाकार ने राज तन्त्र को वर्णित न कर समकालीन लोकतन्त्र के स्वरूप को प्रकट करना चाहा है। यह स्पष्ट है कि राजतन्त्र निरंकुश होते थे, जिनमें प्रजा की आवाज पर ध्यान नहीं दिया जाता था। परन्तु संसदीय

- -

2· डा० नरेश मेहता : संशय की एक रात, पृ० - 31-32

शासन प्रणाली में जन वाणी को उपेक्षित नहीं किया जा सकता । यही कारण है कि चीन के आक्रमण के समय तत्कालीन प्रधानमंत्री के सिद्धान्तों के विपरीत युद्ध हुआ । हनुमान, लक्ष्मण विभीषण, जामवन्त तथा प्रेतात्मा रूप में दशरथ तथा जटायु द्वारा राम को युद्ध की वास्तविकता का बोध कराया जाना वस्तुत: तत्कालीन सत्ता दल तथा विपक्षों द्वारा युद्ध की अनिवार्यता घोषित करना है। इसीलिए युद्ध का किसी भी आधार पर तिरस्कार नहीं किया जा सकता चाहे इसको तर्क व्यक्तिगत स्वार्थ का दिया जाय या पंचशील सिद्धान्तों की अवहेलना हो अन्तत: राम स्वयं स्वीकारते हैं -

" मैं निर्णय हूँ सबका
अपना नहीं,
क्योंकि मैं अब निर्णय हूँ
व्यक्ति नहीं ।" [3]

इससे भी बढ़कर राम का यह मानना कि " संशयी राम का यह रूप समाप्त हुआ ।" से तात्पर्य व्यक्ति की अनिच्छा पर भी उसे समूह चेतना को स्वीकारना

- -

3· नरेश मेहता : संशय की एक रात - पृ० - ९९

है । शान्ति एवं युद्ध की शाश्वत समस्या में भी युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकारना पड़ा । " इस प्रकार राम को अपूर्ण व्यक्तित्व वाला निर्मित करके कवि ने उनके भीतर से उसे अस्तित्ववादी व्यक्तिवादी विवेक कोप्रतिष्ठित करना चाहा है जो संकट में नव निर्माण करने में समर्थ हो सकता है, पर जिसे राम ने छोड़ दिया है, समर्पित कर दिया है । अस्तित्ववाद व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा, वरण की स्वतन्त्रता का पक्षधर है । व्यक्तिगत निर्णय के प्रति राम की आस्था है, लेकिन उसे अस्वीकार के धरातल तक उठा लेना उनके वश में नहीं रहा, क्योंकि वे पुराने मूल्यों के रक्षक थे, जिसका परिणाम युद्ध था । यदि राम ने अपने अन्तर के विवेक को सर्वोपरिता प्रदान की होती, यदि उन्होंने स्वतन्त्र वरण को दृढ़ता से माना होता तो युद्ध न होता । " संशय की एक रात " का कवि यही बताना चाहता है ।"[4] " संशय की एक रात " में संशयी, विकल्पी एवं अनिर्णीत मन को संकल्पी एवं निर्णीत स्थिति में पहुँचाया है । समस्त रचना का मनोवैज्ञानिक आधार संशय से दृढ़ता और युद्ध की अस्वीकृति तक की यात्रा है । संशयी मन सदैव किंकर्तव्यविमूढ़ रहता है । वह एक स्थिति पर दृढ़ता नहीं रख पाता है । इस कृति में लघु मन अथवा मानव और विराट् मन अथवा मानवीय संकल्पों -विकल्पों को भी प्रकट किया गया है । सम्पूर्ण कृति में राम जैसे महामानव जो दृढ़ता के प्रतीक हैं, उनका संशय एक ओर दिखाया गया है तथा _ _ _

4· राम मनोहर त्रिपाठी: हिन्दी कविता : संवेदना और दृष्टि ,पृ0-137 प्रथम संस्करण - 1986

लक्ष्मण जो यथार्थवादी है, उनके लघु अस्तित्व बोध की सार्थक कर्मनिष्ठता दूसरी ओर है । " वास्तव में लोक नायक प्रतीक पुरुष राम के भी "व्यक्ति" को देखने की चेष्टा इस काव्य की प्रेरणा है और वही उसे अपेक्षित एकाग्रता और प्रासंगिकता भी दे सकी है ।"[5] कवि ने काव्य में विराट लघु एवं सहज मन के रूप को दिखाकर परस्पर तीन स्थितियों में सामंजस्य स्थापित किया है । राम स्वयं महामानवता के प्रतिनिधि है, लक्ष्मण लघु मन अर्थात् मानवत्व की सशक्त जिजीविषा और संघर्ष के प्रतिनिधि है तथा हनुमान उस सहज मन का प्रतिनिधित्व करते हैं जो मूल्यों एवं नैतिक आग्रहों से अधिक सहज व्यक्तित्व के व्यंग्यों के आधार पर सारी स्थिति को विश्लेषित करते हैं । जहाँ राम की महानता में पारम्परिकता झलकती है वहीं लक्ष्मण के लघुत्व में युग बोध का संकल्प है - वे स्वयं को पूर्ण समझते हैं और अकेले ही सीता को मुक्त करवाने की सामर्थ्य रखते हैं । हनुमान मानवत्व के रूप में सीता के प्रतीक रूपी स्वतन्त्रता को प्रत्येक स्थिति में बनाए रखने के लिए कृत संकल्प है ।

राम के मन में अन्तर्द्वन्द्व है । वे अपने प्रश्नों तथा रावण से भविष्य में होने वाले युद्ध के प्रति चिन्ताकुल है वो दोनों का निर्णय एक साथ चाहते हैं । उनका द्वन्द्व है कि अपनी स्वतन्त्र चेतना को महत्व दें या पुरजनों में

5· रमेश चन्द्र शाह, समानान्तर, पृ० - 11

समर्पित हों । उनके विवेक का निर्णय अधूरा रह जाता है । वे अपने वैचारिक संशय को सामूहिक निर्णय में विसर्जित कर देते हैं । वे न तो यह निर्णय ले पाते कि युद्ध वैयक्तिक है या सामाजिक और न यही निर्णय होता है कि युद्ध अनिवार्य है या नहीं । संशयी राम को परम्परावादी पुरजन अपने दृढ़ निश्चय की ओर खींच ले जाते हैं । कवि ने इस रचना के माध्यम से मनुष्य जीवन के उस पक्ष को प्रस्तुत किया है जहाँ वह तर्कहीन कर दिया जाता है ।

"संशय की एक रात " स्वातन्त्र्य युग की महत्वपूर्ण कृति है । मानव मूल्यों की दृष्टि से यह एक सर्वथा चिन्तन प्रधान काव्य है । कवि राम के नये रूप की संरचना करते समय भी पुरानी परिपाटी का खण्डन नहीं कर पाते थे । प्रस्तुत काव्य में नरेश मेहता ने युद्ध जैसी सर्वकालिक एवं सार्वभौमिक समस्या का सन्दर्भ राम जैसे प्रज्ञा पुरूष से सम्पृक्त करने का प्रयास किया है । प्राय: आधुनिक कवियों के सम्मुख सामयिक परिस्थितियाँ जैसे कुंठा, अविश्वास, अनास्था, संशय आदि व्याप्त थी । इसीलिए उन्होंने राम को नायक चुना परन्तु उनके अलौकिक रूप को प्रश्रय न देकर राम को प्रज्ञा पुरूष के रूप में प्रतिष्ठित किया । मैथिलीशरण गुप्त जी उन्हें पृथ्वी पर स्वर्ग बनाने वाला कहते है । तो वही निराला जी राम की शक्ति पूजा " में राम को निराशा से ओत - प्रोत दिखाते हैं ।

"संशय की एक रात " का आधार वस्तुत: " राम की शक्ति पूजा " ही है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि निराला जी ने जहाँ राम को रावण की विजय से संशंकित दिखलाया है वहीं नरेश मेहता का दृष्टिकोण इससे भिन्न है । इनके राम व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु जन- विनाश नहीं स्वीकार करते हैं ।

काव्य रूप की दृष्टि से " संशय की एक रात " खण्ड काव्य है । राम के पुराख्यानक इतिवृत्त को युगीन सन्दर्भों से युक्त कर प्रस्तुत करने में ही प्रबन्धकार का वैशिष्ट्य है इस काव्य में सम्पूर्ण कथा चार सर्गों में विभक्त है - साँझ का विस्तार और बालू तट, " वर्षा भीगे अन्धकार का आगमन ", " मध्य रात्रि की मंत्रणा और निर्णय, " तथा " संदिग्ध मन का संकल्प और सबेरा ।"

प्रथम सर्ग में राम रामेश्वरम् के सिन्धु तट पर आ पहुँचे हैं और प्रात: ही लंका पर आक्रमण होना है । एकांत संध्या है तथा सेतु बंध का कार्य भी पूर्ण हो चुका है । तब भी राम का हृदय व्याकुल है तथा सोच में डूबा है ।

"क्या हो
क्या न हो के प्रश्न ने
थका डाली मुट्ठियाँ ।" [6]

6· श्री नरेश मेहता - संशय की एक रात पृ0 - 4

राम को सीता हरण की समस्या व्यक्तिगत मालूम पड़ती है वे स्वर्ण मृग का पीछा करने की भूल पर लज्जित हैं तथा स्वयं में निर्णय ले सकने में अस्तित्व शून्य । वे इस संशय में डूबे ही हैं तभी लक्ष्मण आकर पंपा सेनाओं के सहयोग का समाचार देते हैं । राम युद्ध विरक्ति की बाते कहते हैं । लक्ष्मण उत्साहित स्वरों में राम की उदासीनता को भंग करते हैं और सीता को अपने बाहुबल पर लंका से वापस लाने का संकल्प करते हैं । राम का मन्तव्य है कि वे युद्ध से डरते नहीं है अपितु उन्हें युद्ध प्रिय नहीं है.। सीता हरण उनकी व्यक्ति -गत समस्या है जिसके लिए युद्ध क्यों किया जाय -

"सत्य की मिथ्या पताकाएं लिये
अपने स्वार्थ के दे खड्ग
जन के हाथ में,
जो भी लड़ूँगा युद्ध
होगी आस्था की वंचना ही ।" [7]

इसी प्रवंचना के लिए वे युद्ध टालना चाहते हैं । यहीं प्रथम सर्ग का अंत होता है ।

- -

7· संशय की एक रात , पृ0 - 24

द्वितीय सर्ग में हनुमान के संग राम विभीषण के शिविर की ओर प्रस्थान करते हैं । सेतु बंध तैयार है । राम इसी की बुर्जी पर विचार मग्न खड़े हैं । तभी नील द्वारा उन्हें यह सूचना मिलती है कि सेतु पर एक छाया है जिस पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार नहीं होता है । राम पुल पर जाते हैं । जहाँ छाया और उसके अंक में एक पक्षी भी है । छाया राम के साथ एकान्त चाहती है तथा बताती है कि वह दशरथ की आत्मा है और पक्षी जटायु है । ये छायायें राम के परिताप और पश्चाताप को दूर करने का प्रयास करती है । राम तर्क करते हैं कि सत्य या असत्य का निर्णय कैसे हो ? तब छाया कहती है कि संसार में समय एक विराट चक्र है और कर्म ही इसकी गति है । राम इन सबको स्वीकारने के लिए तैयार नहीं है वे संशय को भी सत्य की कसौटी मानते हैं । राम स्वयं को कर्म, क्षण, या घटना नहीं मानते तथा मानव होने के नाते भाई, पुत्र तथा पति के उत्तरदायित्व को न पूरा कर पाने के कारण उन्हें परिताप है । जटायु उन्हें इस संताप से उबारते हैं और समझाते हैं कि यह विराट नियम स्थितियों से संचालित है न कि सम्बन्धों से यहाँ प्रत्येक क्षण में एक नयी सृष्टि का उद्भव व अन्त होता है । -

" यदि तुम क्षण की इस पृथकता को

देख सके होते तो

राघव ।

परितापित कभी नहीं होते ।"[8]

अन्ततः वे दोनों राम के कल्याण की कामना करते हुए दिव्याकाश में विलीन हो जाते हैं ।

" मध्यरात्रि की मंत्रणा और निर्णय " नामक तृतीय सर्ग में राम, लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव , जामवन्त आदि से युद्ध विषयक मंत्रणा कर रहे हैं । लक्ष्मण सभी को बताते हैं कि राम - सीता -हरण को व्यक्तिगत समस्या मानते हैं । तथा युद्ध की विभीषिका से चिन्तित हैं । हनुमान उनका खण्डन करते हैं । कभी कभी व्यक्तिगत समस्या भी परिस्थिति के आग्रह से सामूहिक बन जाती है ।

"सीता माता / भले ही राम की पत्नी हो

किसी की दुहिता हो

पर

हम कोटि,- कोटिजनों की तो केवल

प्रतीक हैं -

8· संशय की एक रात , पृ० - 65

रावण अशोक वन की सीता

हम साधारण जन की अपहृत स्वतन्त्रता ।"[9]

राम जिसे व्यक्तिगत समस्या मानते हैं व सार्वजनिक है और वे दायित्व से दूर हो रहे हैं । समूह दायित्व का निर्वाह अहिंसा और त्याग के मूल्य को चुकाकर भी किया जाना चाहिए । राम हनुमान के तर्क से सहमत अवश्य हैं परन्तु शंकित भी है कि युद्ध के बाद शान्ति होगी अथवा नहीं । लक्ष्मण का उत्तर है कि युद्ध किसी भी पीढ़ी के लिए उत्तर दायित्व है । राम युद्ध को फेन समझते हैं परन्तु सुग्रीव के विचार से युद्ध फेन नहीं, एक निर्णय है जो इतिहास का निर्माण करता है । विभीषण भी इसे एक दर्शन बताते हुए हनुमान से समर्थित हो युद्ध को ही उचित ठहराते हैं । राम युद्ध का विकल्प नहीं ढूंढ पातें है परन्तु परिषद् का निर्णय युद्ध के पक्ष में होता है अतः वे भी अपनी मौन स्वीकृति दे देते हैं ।

" चतुर्थ सर्ग " के प्रारम्भ में राम पुनः चिन्तित हैं और सोचते हैं कि अपने संशय, प्रश्न सभी को अपरिमित ज्वारों को सौंपकर वे पात्र अपने शेष सभी का निर्णय बन गये हैं । उधर सेना कूच के लिए तैयार है तथा पार्थिव पूजन के प्रबन्ध में लक्ष्मण आदि व्यस्त हैं । परन्तु राम अनमने हैं -

---

1: श्री नरेश मेहता, संशय की एक रात - पृ० - 78

"इतिहास / व्यक्ति को व्यक्ति नहीं
शस्त्र मानता है।"[10]

इसी कारण व्यक्ति को इतिहास की अनिवार्यता के समक्ष नत हो जाना पड़ता है। राम को परिताप है कि भावी पीढ़िया उन्हें संशय ग्रस्त न मान ले। वे युद्ध सम्बन्धी निर्णय को पूर्ण स्वीकृति दे देते हैं।-

" अब मैं केवल
प्रतीक्षा हूँ / कवचित कर्म हूँ
प्रतिश्रुत युद्ध हूँ
निर्णय हूँ सबका
सबके लिए।"[11]

उनकी यह द्विधा जनक स्थिति अन्त तक बनी रहती है। प्रस्तुत काव्य कथात्मक संगठना एवं घटना संयोजन की दृष्टि से वाल्मीकि रामायण तथा तुलसी-कृत मानस के निकट है। परन्तु इसमें परम्परागत राम कथा से भिन्न राम के चरित्र में संशय का आरोपण है। दशरथ तथा जटायु की आत्माओं का प्रस्तुतीकरण कथा को मानव मन के अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण करने की दृष्टि से असफल

10· श्री नरेश मेहता - संशय की एक रात - पृ० - 85

11· संशय की एक रात - पृ० - 92-93

बना देता है । इस सम्बन्ध में कवि का मत है - " एक विशेष भाव व निवारण के लिए द्वितीय सर्ग में हेमलेट की शैली प्रयुक्त की गयी है ।"[12] मनोविज्ञान के अनुसार राम स्वयं इन प्रश्नों से जूझने में समर्थ हो सकते थे । "आश्चर्य की बात तो यह है कि जो नये कवि परम्पराओं के प्रति विद्रोह का नारा लगाते हैं, वे विदेशी लेखकों की कृतियों में प्रयुक्त उन मृत रूढ़ियों का अनुसरण करते हैं, जिनकी स्वयं पाश्चात्य समीक्षकों ने भी कटु आलोचना की है और जिनकी आज के भौतिक युग में सार्थकता सिद्ध करना असम्भव है ।"[13]

संशय की एक रात प्रबन्ध काव्य की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त होने के कारण पात्र संख्या सीमित है । काव्य में प्रमुख तथा गौण दस पात्र है । इस खण्ड काव्य के नायक राम हैं । अन्य पात्रों में दशरथ तथा जटायु ﴾ छाया ﴿ लक्ष्मण , हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, जामवन्त तथा नल -नील हैं । " इस रचना में इतिवृत्त की कमी होने से रचनाकार का प्रतीकात्मक दायित्व बोध अधिक सघन हो गया है । पात्र घटनाएं, सर्ग, शीर्षक आदि सभी प्रतीक की ध्वनि

- -

12· संशय की एक रात - शीर्षबंध से उद्धृत

13· डा० हरिश्चन्द्र वर्मा - नयी कविता के नाट्य काव्यों का रूप और अभिव्यजंना विधान पृ० - 310
﴾अप्रकाशित शोध प्रबन्ध - कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय ﴿

देते है ।[14] राम, लक्ष्मण, हनुमान, प्रतीकात्मक पात्र हैं । " संशय की एक रात" के काव्य नायक श्रीराम हैं । अतः रचनाकार ने राम को ही संशयात्मक व्यक्तित्व का प्रतीक बनाया है । तथा उसे एक नवीन दर्शन की कसौटी पर स्थित करने का प्रयत्न किया है । काव्य का नायक " आदर्श और रामत्व वाले रूप से परे प्रश्नाकुल और विभाजित व्यक्तित्व राजकुमार के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो सीता को वापस पाने के लिए किये जाने वाले युद्ध की उचितता एवं अनुचितता के द्वन्द्व में पड़ा है ।"[15] कवि को संशय के प्रकटीकरण में गहनता एवं सफलता के स्थान पर उक्ति कौशल की सार्थकता प्राप्त हुई है पर इसमें वहीं पात्रों के चरित्रोद्घाटन में वह असफल रहा है । राम युद्ध की विभीषिका से चिन्तित हैं क्योंकि सीता हरण को वे व्यक्तिगत समस्या मानते हैं । वे कैश दुख उर्मिला कष्ट , पिता की मृत्यु , भरत के परिताप के लिए स्वयं को दोषी मानते हैं। इस काव्य में राम बार - बार द्विविधा ग्रस्त, संदिग्ध मन एवं तीव्र संवेदना वाले पुरूष के रूप में सम्मुख आते हैं । उनका युद्ध निर्णय इसकी पुष्टि करता है -

---

14· डा0 कमला प्रसाद पाण्डेय - {छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि} पृ0-366

15· डा0 रणजीत - हिन्दी के प्रगतिशील कवि पृ0 - 325-326

" अब मैं केवल / प्रतीक्षा हूँ

क्वचित कर्म हूँ / प्रतिश्रुत युद्ध हूँ ।

निर्णय हूँ सबका / सबके लिए

केवल अपने लिये / सम्भवत: नहीं, नहीं ।। " [16]

नरेश मेहता के राम पौराणिक काव्यों वाले मर्यादा पुरुषोत्तम प्रज्ञा पुरुष न होकर शक्ति व प्रज्ञा पुरुष की गरिमा से च्युत राम है, जो वातावरण की सहानुभूति तथा आशीर्वाद की अपेक्षा करते हैं -

" ओ सिंधु ! / ओ आकाश !

नारियल के वन ! / समुद्री हवा !

ओ निर्णय की भाद्रपद सांझ !

वहाँ ! उस सांझ के तारे को नहीं,

मुझको विलोको / पश्चाताप में

इस झुके मेरे माथे को / नीले फूलों को

शुभ शंसा प्रदत्तो ।" [17]

16· संशय की एक रात - पृ0 - 92- 93

17· संशय की एक रात पृ0 - 7

वस्तुत: यह दैत्य भाव हमें राम के चरित्र से तालमेल बैठाता हुआ नहीं प्रतीत होता है । राम के चरित्र में संशय की पराकाष्ठा अनेक स्थलों में द्रष्टव्य है -

" संभव है / इस युद्ध में / हम सभी अपने स्वत्व को पा जाएं
किन्तु / उसकी चिर सुरक्षा / शान्ति क्यों ?
कैसे हो ?"[18]

कहीं - कहीं राम को कवि ने गाँधी की भाँति अहिंसा का प्रचार करते दिखा दिखाया गया । वे सत्य को जीवन की उच्च भूमिका पर स्वीकार करते हैं -

" मैं सत्य चाहता हूँ
युद्ध से नहीं
खड्ग से नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ ।"[19]

समकालीन चिन्तन मानव व्यक्तित्व को खण्डित अप्रमाणित एवं अनिर्णीत मानता है । राम इसे ही प्रस्तुत करते हैं, तथा भटकते मूल्यों एवं संक्रमित

- -

18· संशय की एक रात पृ० - 68

19· संशय की एक रात पृ० - 31

स्थिति को स्पष्ट करते हैं । इस काव्य में राम के चरित्र में समकालीन विसंगतियों को आरोपित किया है । आधुनिक युग के संशयी एवं खण्डित व्यक्तित्व को राम के चरित्र में समकालीन विसंगतियों को आरोपित किया है। आधुनिक युग के संशयी एवं खण्डित व्यक्तित्व को राम के चरित्र द्वारा प्रस्तुत किया है ।यही इस कथ्य की नवीनता है । संशय के औचित्य के लिए अनेक अप्रासंगिक प्रश्नों का भी राम के चिन्तन से सामंजस्य कर चरित्र को दुर्बल बना दिया है । कवि ने राम के पौराणिक चरित्र की गरिमा एवं उदात्तता का निर्वाह नहीं किया है । राम की अपेक्षा अन्य पात्र अधिक स्पष्ट व्यक्तित्व धारण किये हुए हैं । नायक को वास्तविकता का बोध अन्य पात्रों द्वारा होता है ।

लक्ष्मण का चरित्र परम्परागत होते हुए भी दृढ़ है । वे राम के सेवक मात्र नहीं है और राम के प्रति अनन्य आस्था एवं श्रद्धा रखते हुए भी अंधानुकरण नहीं है । वे मनुष्य की कर्मशक्ति और अदम्य साहस के प्रतीक हैं । वे राम के नियतिवादी दृष्टिकोण का विरोध करते हैं तथा पुरुषार्थ का समर्थन -

"कितने ही लघु हो

इससे क्या [illegible] सार्थक है

[illegible] .... ।"[20]

---

20) संशय की एक रात , पृ0 - 14

के आत्म विश्वास का प्रतीक है तथा सीता को अपने बल से ले आने की सामर्थ्य का परिचय देते हैं।

"बंधु जाऊँगा / सीता को लाऊँगा
अपने पुरुषार्थ × विश्वासें
अपने बंधु मित्रों के पौरुष को।" [21]

प्रस्तुत सन्दर्भ में डा० कमला प्रसाद कहते हैं -

"लक्ष्मण का व्यक्तित्व जैसा हमारे संस्कारों में बना है वैसा ही बना है इतना परिवर्तन यहाँ अवश्य है कि वे राम को अपने अनुसार अनुशासित करने में सफल होते हैं। उनमें मात्र सेवकत्व है ही नहीं। राम के प्रति उनमें आस्था, श्रद्धा और प्रेम है। पर अंधानुकरण नहीं।" [22] डा० हरि चरण शर्मा के अनुसार - "लक्ष्मण के चरित्र में जो विश्वास झलक रहा है उसकी पृष्ठभूमि में जन विश्वास की भावना निहित है। राम भले ही विकल्पी हो लेकिन लक्ष्मण संकल्पी हैं, उनमें आस्था है।" [23] डा० लक्ष्मीकान्त वर्मा कहते हैं - "वास्तव में प्रतीक पुरुष

- -

21· संशय की एक रात, पृ० - 18

22· डा० कमला प्रसाद पाण्डेय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पृ० - 362

23· डा० हरिचरण शर्मा - नई कविता, नए धरातल पृ०- 260

राम और नितान्त यथार्थ ग्राही लक्ष्मण का द्वन्द्व ही इस काव्य में है । एक विगत मूल्य मर्यादाओं के प्रभुत्वमें और नितान्त क्षण में दायित्व बोध से उन्मेषित लघुत्व में संघर्ष है ।"[24]

" संशय की एक रात " में हनुमान मात्र सेवक के रूप में ही नहीं प्रस्तुत किये गये है। वरन् वे जागरूक विवेकशील सदस्य का परिचय देते हैं । लक्ष्मण की भाँति हनुमान भी राम के संशयी व्यक्तित्व में कर्म का मंत्र फूंकते हैं । वे सीता को स्वतन्त्रता का प्रतीक मानते हैं । इसलिए उनके अपहरण को व्यक्तिगत समस्या न मानकर जन सामान्य की समस्या मानते हैं । हनुमान का तर्क है कि दक्षिण भाग की स्वतन्त्रता हथियाने और उपनिवेश स्थापित करने वाला रावण प्रजा का द्रोही है उसने सीता का हरण कर के स्वतन्त्रता को चुनौती दी है -

" सीता माता / भले ही राम की पत्नी हो

x x x

हम कोटि कोटि जनों की तो केवल

प्रतीक हैं -

रावण अशोक वन की सीता

24· डा० लक्ष्मीकान्त वर्मा - (संशय की एक रात) भूमिका से उद्धृत नयी कविता के (विद्यार्थी संस्करण) प्रतिमान

हम साधारण जन की अपहृत स्वतन्त्रता ।"[25]

आज मनुष्य साम्राज्यवादी कूटनीति का शिकार है । हनुमान जन प्रतिनिधि बनकर विरोध करते हैं । वे अपने शौर्य के अनुरूप राम को युद्ध के लिए तैयार करते हैं । वे राजनीतिक चेतना का परिचय देते हुए कहते हैं -

" हम साधरण जन

युद्ध प्रिय थे कभी नहीं

और न लंका युद्ध लड़ेंगे

युद्ध भाव से / महाराज !

साम्राज्य वृत्ति के द्वारा

हम साधारण जन/ अर्द्ध- सभ्य कर दिये गये

हमने राक्षस रथ खींचे / दास भाव से

बदले में / नर नहीं / वानर पद प्राप्त किये ।"[26]

अन्य पात्रों में विभीषण, जटायु तथा दशरथ की प्रेतात्मा है । विभीषण के चरित्र में भी नवीनता है ।" विभीषण के चरित्र की मनोवैज्ञानिक संभावनाओं को

- -

25· संशय की एक रात - पृ0 - 64

26· संशय की एक रात - पृ0 - 65

नरेश मेहता अच्छी तरह टटोला है और उसके अन्तर्द्वन्द्व की नाटकीय स्थिति को प्रभावित करने के लिए सार्थक उपयोग भी किया है । रामायण के अन्य सारे चरित्रों की तुलना में विभीषण की मनोवैज्ञानिक परिस्थिति बहुत ही विशिष्ट है उस परिस्थिति को कवि ने बड़े ही कौशल के साथ आधुनिक व्यक्ति की आत्म चेतना से जोड़ दिया है ।"[27] एक मात्र विभीषण ही राम के संशय को समझते हैं । उन्हें राम के प्रश्नों का औचित्य प्रतीत होता है, पर राष्ट्र द्रोह एवं अपयश के भय से युद्ध के पक्ष में अपना निर्णय देते हैं ।

"संशय की एक रात " का कवि वैचारिकता के निकट पहुँच कर युद्ध और शान्ति की समस्या पर मुख्य रूप से आना चाहता है । युद्ध का इतिहास उतना ही पुराना है कि जितना मानव इतिहास और शान्ति का हर प्रयत्न युद्ध से जुड़ा रहा है । " संशय की एक रात " के राम के मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या सारे शुभाशुभ कर्मों की परिणति युद्ध ही है ? निश्चय ही कवि ने इसके सत् एवं असत् दोनों पक्षों को सम्मुख रखकर समस्या का समाधान करने की चेष्टा की है - इसी के कारण प्रज्ञा- पुरूष राम भी संशय में है । व्यक्तिगत स्वार्थ के के लिए वे लोक हितों की अवहेलना नहीं कर सकते । कवि युद्ध को अस्वीकार

27·रमेश चन्द्र साह - समानान्तर पृ0 - 127- 128

करता हुआ राम से कहलाता है -

" मैं सत्य चाहता हूँ

युद्ध से नहीं,

खड्ग से भी नहीं

मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ ।

क्या यह सम्भव है ? "[28]

काव्य में कर्म की महत्ता भी प्रतिष्ठित की गयी है । लक्ष्मण की दृष्टि में मानव की सार्थकता कर्म में है । इसीलिए वे संशयी राम से कहते हैं -

"कितने ही लघु हों/ इससे क्या ?

सार्थक है / स्वतंत्र है हमारा / कर्म ....।[29]

" बंधु यह असम्भव है / कर्म और वर्चस् को

छीन सके कोई भी / जब तक हम जीवित हैं ।"[30]

इतना ही नहीं छाया द्वारा भी कवि ने " कर्म" की महत्ता को प्रतिपादित किया है । क्योंकि यदि कर्म करने के मूल में केवल स्वाधीनता हो तो वह त्याज्य

- -

28· संशय की एक रात - पृ0 - 31

29· संशय की एक रात , पृ0 - 14

30· संशय की एक रात , पृ0 - 20

है परन्तु जब हो इसमें जन कल्याण का भाव रहता है और यश प्राप्त करने का संकल्प होता है इसे ग्राह्य माना गया है । दशरथ की प्रेतात्मा यही कहती है -

"पुत्र मेरे / संशय या शंका नहीं
कर्म ही उत्तर है
यश जिसकी छाया है
उस कर्म को परो ।" [31]

इसी कर्मवादिता के प्रभाव से राम को युद्ध के लिए नहीं बल्कि असत्य के विरुद्ध अनिवार्य कर्म के लिए प्रेरित करता है । इस रचना का आधार संशयात्मक वृत्ति है । कवि ने ऐकान्तिक चित्रण और सामूहिक बोध की तह तक पहुँचने का उपक्रम किया गया है । अन्ततः सामूहिक निर्णय संशकित अनिर्णय पर आरोपित हो जाता है । आधुनिक मानव युग को विसंगतियों और संग्रामों के बीच स्वयं को खण्डित महसूस करता है । काव्य में वैयक्तिक और पारस्परिक संघर्ष और टकराव के कारण विघटन मुख्य रूप से दृष्टव्य है । नरेश के राम पारम्परिक कथाओं के राम की तरह सब कुछ सुलझा लेने वाले नहीं है । उनके व्यक्तित्व की

- -

31· संशय की एक रात , पृ0 - 67

जटिलता आज के मानव का " खण्डित - व्यक्तित्व " है । राम की शंका आज के मानव की शंका कुल मन:स्थिति है । अत: इस रचना के आधार पर यह कहना युक्ति संगत होगा कि राम की सम्पूर्ण संवेदना एकांतिक होते हुए भी सामूहिकता से ओत-प्रोत है । राम की भाँति विभीषण भी इसी पीड़ा से दंशित है लेकिन वे भी युद्ध की अनिवार्यता को अस्वीकार नहीं करते हैं अत: बहुमत की ही महत्ता मानी जाती है -

" उस वृद्ध , ठंडी शिला पर
गिरकर बैठा हुआ
बहुमत
न्याय्य है, सत्य है,
ऐतिहासिक नियति है
हर व्यक्ति की ।" [32]

फलस्वरूप, राम जो अपने संशय को अपनी नियति न मानकर सामूहिक नियति या सामूहिक विकल्प में बदलना चाहते हैं, अपने संशय को सामूहिक

- -

32. संशय की एक रात , पृ० - 70

निर्णय के सम्मुख इकाई के अनिर्णय को हावी दिखाकर सामूहिक चेतना अथवा बोध की महत्ता प्रतिष्ठित करना चाहता है । राम स्वीकार करते है -

" अब मैं केवल

प्रतीक्षा हूँ

क्वचित कर्म हूँ । प्रतिश्रुत युद्ध हूँ

निर्णय हूँ सबका

सबके लिए

केवल अपने ही लिये

सम्भवतः नहीं

नहीं ।"[33]

जीवन के जड़त्व से राम परिचित हैं । इसलिए रावण के विरुद्ध संघर्ष की परिस्थिति का निर्माण होने के साथ ही राम जीवन के जड़त्व को लेकर बेचैन हो उठते हैं । बाह्य युद्ध की अपेक्षा राम का यह आंतरिक युद्ध विशेष महत्वपूर्ण है । क्योंकि आत्म- परिष्कार की प्रक्रिया अपेक्षाकृत दुष्कर और कष्ट साध्य होती है । राम के अन्तर्द्वन्द्व की समाहिति में हमारे वर्तमान समाज और

- -

33· संशय की एक रात , पृ० - 92-93

राष्ट्र जीवन का एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ अन्तर्निहित है । युद्ध एवं शान्ति विश्व की सनातन समस्या बन गयी है । युद्ध के मूल कारण कहीं वैयक्तिक स्वार्थ होते हैं, तो कहीं जन हितार्थ की भावना होती है । लेकिन जन- विनाश तो अवश्यम्भावी होता है । राम इसी संशय से ग्रस्त है यही कारण है कि वे "इतिहास के हाथों बाण बनने से अंधेरे में यात्रा करते खोजाना श्रेयस मानते हैं ।" आधुनिक मनुष्य करणीय या अकरणीय के द्वन्द्व में फँस गया है । जिसके कारण मानव में अनिर्णय का भाव है वह अनास्था, अविश्वास, भ्रम संशय में भटक रहा है । युगीन स्थितियों को कवि राम के द्वारा संशयी व्यक्तित्व में दर्शाया गया है । इसीलिए विभीषण प्रज्ञापुरूष के अनिर्णीत भाव से स्वयं को संयाजित करते हैं -

> "लेकिन ,
> अभी टूटे हुए व्यक्तित्व की जो बात
> कही थी आपने / सार्थक लगी ।
> द्वन्द्व / मुझमें भी कहीं पर है,
> मुझे भी सरलता है
> स्वयं का संघर्ष
> मैं भी विभाजित हूँ / मैं भी ऐतिहासिक मग्न हूँ
> तभी तो आपकी ही भाँति/मुझमें भी अनिर्णय है ।"

34· संशय की एक रात , पृ0 - 85

आज के मानव में अनिर्णय के साथ ही एक स्थिति में दो विरोधी मूल्य परस्पर टकराते प्रतीत होते हैं । राम कहते हैं -

"दो सत्य / दो संकल्प

दो दो आस्थाएं

व्यक्ति में हो अप्रमाणित व्यक्ति पैदा हो गया है ।"[35]

कवि का ध्येय राम के अनिर्णीत व्यक्तित्व को दिखलाकर मानव - मूल्यों में भटकाव, परिवर्तन की ओर संकेत करना है । साथ ही नरेश मेहता का यह प्रयत्न रहा है, ऐसे मूल्यों का बोध कराना जिनसे खंडित भटके जीवन में मानव फिर से सुख शान्ति की सांस ले सके यह तभी सम्भव होगा जब मानव किंकर्तव्य-विमूढ़ता से उबर कर निर्णय की स्थिति को प्राप्त कर लेगा । राम कहते हैं -

"संशय की प्रत्यंचा को,

असफल साधा था

और उठाकर रख दिया था अपना

व्यक्ति धनुष /यह कहकर

अब मैं निर्णय हूं / सबका

अपनी नहीं ।"[36]

35· संशय की एक रात , पृ0 - 38

36· संशय की एक रात , पृ0 - 102- 103

कवि ने राजनीतिक जीवन दृष्टि से युद्ध और शान्ति की समस्या को सामने रख जनतांत्रिक एवं संसदीय प्रणाली के प्रति आकर्षण दिखलाया है । इकाई (व्यक्ति) को अन्तत: समुदाय (समष्टि) के निर्णय को स्वीकारना पड़ता है । इसी पूर्ण स्वीकृति पर काव्य समाप्त हो जाता है । कवि ने युद्ध की समस्या को लेकर प्रजा तथा राजा के परस्परिक सम्बन्धों का भी संकेत किया है । रचना में लक्ष्मण प्रजा का प्रतिनिधित्व करते हैं और राम की शंका निर्मूल मानते हैं । प्रजा की इच्छा है कि सीता को मुक्त कराया जाय और प्रजा द्वारा मनोनीत राजा को प्रजा का बहुमत स्वीकार करना चाहिए -

" बंधु अग्रज है
परिजन और पुरजन प्रिय भाजन है ।
साथ ही हम प्रजा के / मनोनीत राजन हैं ।" [37]

वस्तुत: हमारा दो शताब्दियों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रजातन्त्र के स्तम्भ समझे जाने वाले देशों ने अपने प्रजातांत्रिक निर्णयों द्वारा ही दूसरे देशों की स्वतन्त्रता का अपहरण किया है । उन्हें उपनिवेश बनाकर वहाँ की सम्पत्ति को लूट खसोट कर वहाँ के सामान्य जन को दास जीवन जीने को मजबूर

---

37. संशय की एक रात , पृ0 - 15

कर दिया । " राम यह जानते हैं कि प्रजातांत्रिक मूल्यों की सहायता लेकर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हुआ जा सकता । वे जानते हैं कि एक चालाक और महत्वाकांक्षी लोकनेता राष्ट्र की समग्र जनता को एक विशेष तनाव पूर्ण मानसिक स्थिति में लाकर, उस पर अपने निर्णय थोप सकता है इसी कारण वे सोचते हैं -

सत्य की मिथ्या पताकाएं लिये
अपने स्वार्थ के दे खड्ग
जन के हाथ में
जो भी लड़ूँगा युद्ध
होगी आस्था की वंचना ही
बंधु ।

" संशय की एक रात " के राम इस तथ्य से अवगत है कि हर व्यवस्था के अपने कुछ अर्न्तविरोध होते हैं । कुछ भीतरी असंगतियां होती है । प्रजातन्त्र भी इसका अपवाद नहीं है । यदि इन असंगतियों और अर्न्तविरोधों को पहचाना न जाय तो इस प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को भी उसके धोषित आदर्श - व्यक्ति स्वातन्त्र्य के विरुद्ध खड़ा किया जा सकता है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना हो जाने के बावजूद देश का प्राय: हर प्रबुद्ध और संवेदनशील

नागरिक बड़ी बेचैनी के साथ यह अनुभव करता रहा है कि देश का प्रजातन्त्र अवसरवादिता, भ्रष्टाचार और निहित स्वार्थों के खुलकर खेलने का अखाड़ा बनकर रह गया है। विरोधाभास यह है कि देश का कोई भी नेता इस स्थिति के लिए उत्तरदायी नहीं मानता। झूठे तर्कों द्वारा सत्य पर परदा डाला जा रहा है। छोटे - छोटे स्वार्थों के लिए अन्तरात्मा की आवाज को दबाया जा रहा है। ऐसी स्थिति में परिषद के प्रजातान्त्रिक निर्णय को आत्म - संघर्ष पर स्वीकार करने वाले राम एक नये प्रकार के दायित्व बोध का परिचय देते हैं। राम की सजग आत्म चेतना ही उनकी बेचैनी का कारण है।"[38]

युद्ध की अस्वीकृति में मानव का मानवता पर पूर्ण विश्वास तथा अहिंसक प्रवृत्ति की प्रबलता एवं आदर्श स्थापित होते दीख पड़ता है। परन्तु मानव मूल्यों और सत्य को प्रतिष्ठित करने के लिए मानवीय अथवा अमानवीय नीतियों का विरोध भी होता रहा है। यह सत्य है कि युद्ध की स्वीकृति में मानव मूल्यों के संरक्षण की भावना निहित है लेकिन युद्ध मात्र उपलब्धि का उपक्रम या साधन है, मूल्य नहीं। यही कारण है कि प्रस्तुत कृति में जन सामान्य की स्वतन्त्रता को

- -

38. डा० महावीर सिंह चौहान ; - नई कविता की प्रबन्ध चेतना

(संशय की एक रात निबन्ध) पृ० - 74

दृष्टि में रखते हुए साम्राज्यवादी शोषण नीति के प्रति युद्ध करने की पुष्टि की गयी है । हनुमान कहते हैं -

" हे रघुकुल तिलक

हमारा यह सुन्दर दक्षिण प्रदेश

रावण

या किसी अन्य का

उपनिवेश हो

यह स्वीकार नहीं अब

किसी मूल्य पर ।" [39]

कवि ने युद्ध को आड़ में सामंत वादी अथवा साम्राज्यवादी प्रवृत्ति, दासता , अत्याचार के विरुद्ध न्याय, अधिकार और स्वतन्त्रता के महत्व को स्वीकार किया है । हनुमान के द्वारा रचनाकार अपने मूल प्रतिपाद्य को सहज रूप प्रस्तुत कर सका है । हनुमान साधारण जन के दुखों व अधिकार के प्रतिरूप हैं । वे किसी परिस्थिति में भी सामंती शासन स्वीकार नहीं करते । सुग्रीव युद्ध को

- -

39· संशय की एक रात , पृ0 - 79

अनिवार्य इसलिए समझते हैं क्योंकि संघर्ष उपनिवेश वादी सामंतीय सत्ता और साधारण जन के मध्य है । हनुमान तो मात्र रावण के सामंतीय शासन से स्वयं को मुक्त कराना चाहते हैं परन्तु विभीषण तो यहाँ तक कहते हैं -

" क्या विश्वास / ये आपके सामंतगण ही

वे सब नहीं दुहराएँगे

जो रावण ने किया

राम ।

इस युद्ध के उपरान्त

मेरे सामने

मेरे राष्ट्र का अनागत कल

अनावृत धू - धू जल रहा है ।" [40]

" संशय की एक रात " में समसामयिक जीवन का यह सन्दर्भ परोक्ष रूप से ही प्रकट हुआ है । कवि ने रचना में पुराण कथा के मूल स्वरूप को क्षति पहुँचाए बिना उसे युग सन्दर्भ प्रदान किया है । अपने मूल स्वरूप में " संशय की एक रात "

- -

40· संशय की एक रात : पृ० - 86

की समस्या न तो राजनीतिक है और न इसमें प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के अन्त: स्वरूप को समझने का उपक्रम ही है। वस्तुत: राम तो मात्र अपनी बिडम्बना पूर्ण स्थिति पर सोचते विचारते हैं। राम की व्यक्तिगत समस्या में व्यक्ति और परिवेश के संघर्ष और सामंजस्य, जीवन के विस्तार और खंडित व्यक्तित्व की करूणा तथा विचार और भाव चेतना के आन्तरिक द्वन्द्व के विविध आयामों और स्तरों को समाहित कर पाने की कलात्मक क्षमता के कारण " संशय की एक रात " मिथिकीय कथा प्रसंग में नयी संवेदना और नये बोध की एक महत्वपूर्ण काव्य कृति बन पड़ी है।

xxxxxx.xxx

उपसंहार

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भी वातावरण में राजनैतिक उथल - पुथल विद्यमान थी । यह युग ही परिवर्तनों तथा आन्दोलनों का युग था । इस युग में हिन्दी काव्य धारा ने अनेक मोड़ लिये हैं तथा हर मोड़ पर एक नया रूप नयी भंगिमा तथा नये मूल्यों का परिचय दिया है । प्राचीन काव्य धारा के कवियों ने युग चेतना के अनुरूप अपने कथ्य और विन्यास में परिवर्तन लाने की चेष्टा की है तथा नवीन काव्य धारा के कवियों ने विभिन्न प्रयोगों के माध्यम से अपने समय के सच तथा कविता के सच को रेखांकित करने के लिए अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया है ।

नयी कविता के रचनाकारों ने आम मानवों की तरह युग के परिवर्तनों को झेला है , उस पीड़ा को भोगा है तथा इसी घुटन, पीड़ा, कुंठा को अपनी भाषा में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है । यह युग प्रगति का है इसलिए इस युग में प्रबन्ध रचनाएं कम ही लिखी गयी । प्रबन्ध काव्य शिल्पन का कार्य कठिन था क्योंकि उसमें मात्र कथावस्तु सम्पूर्ण व्यक्तित्व और विराट समय प्रवाह की शृंखला से सूत्रित न होकर चिन्तन के द्वन्द्वों मनःसत्यों की सूक्ष्म रेखाओं, विघटित व्यक्तित्वों एवं क्षणानुभूतियों को दर्शाने वाली थी । नयी कविता के प्रबन्ध काव्यों

की भाषिक संरचना के मूल्यांकन के पश्चात हम यह निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि काव्य मिथकीय आधार लिये रहने के पश्चात भी, अपनी कथावस्तु में मौलिक कल्पना ,उदात्त चरित्र एवं गरिमापूर्ण शैल्पिक प्रतिमानों को संजोए हुऐ है । इन प्रबन्ध काव्यों में पात्रों की संवेदना का समुन्नत बोध इतने सशक्त ढंग से प्रतिफलित हुआ है कि ये काव्य कृतियाँ न केवल नयी कविता की असाधारण सृजन सामर्थ्य की परिचायक हैं अपितु समस्त हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की सृजनात्मक प्रेरणाओं का परिप्रेक्ष्य युग जीवन के ज्वलन्त प्रश्नों और मानव अस्मिता के समक्ष गहराते हुए संकट की स्थितियों से जुड़ा होने के कारण उनमें प्रबन्ध काव्यकारों की विराट रचना दृष्टि ही प्रतिबिम्बित हुई है । आधुनिक कवियों ने युद्ध की विभीषिका, विज्ञान की विसंगतियाँ ,मूल्यगत संक्रमण की प्रतिक्रियाओं को अपने प्रबन्धकाव्यों में प्राथमिकता दी । वे एक महान संकल्प, एक पूर्ण भाव बोध, एक विराट चेतना को लेकर चलते हैं, जिससे आधुनिक प्रबन्ध काव्य मात्र पुराण कथाओं की पुनरावृत्ति ही नहीं रह जाते अपितु वे विभिन्न स्तरों पर संघर्षरत मानवता की दुर्धर्ष जिजीविषा और अस्मिता के संकट की पहचान कराते हैं । इन काव्यों की रचना के समय कवियों का लक्ष्य प्रयोग धर्मी सृजनात्मकता न होकर वैशिष्ट्यपूर्ण रचनाधर्मी आस्था रही है । इसी आस्था के माध्यम से मानवीय विश्वासों, संकल्पों,

आंकाक्षाओं और आग्रहों की सम्पूर्ति करना ही रचनाकारों का लक्ष्य रहा है। यही कारण है कि इन प्रबन्ध काव्यों का कथ्य पौराणिक एवं ऐतिहासिक पुराख्यानों से परिपूर्ण होते हुए भी उनमें युग जीवन के यथार्थ को चित्रित करने की श्लाघनीय सामर्थ्य है। समकालीन यथार्थ को पुरावृत्तों के माध्यम से प्रतिबिम्बित करने के कारण ही धर्मवीर भारती का " अंधायुग " संक्रान्ति कालीन समाज की मर्यादाहीनता पर सशक्त प्रहार है, " कनुप्रिया " में भावाकुल तन्मयता की प्रतिक्रियाओं का अंकन किया गया है, "उर्वशी" में प्रेम के मान्य स्वरूप के भीतर प्रविष्ट होकर उसकी आन्तरिकता और सूक्ष्म संवेदनाओं को उभारा गया है और कहीं - कहीं उसे एक आध्यात्मिक भंगिमा भी देने का प्रयत्न किया गया है। " संशय की एक रात " में प्रायश्चित्त और परिताप के द्वन्द्व का काव्यपरक बांधा गया है, -" एक कंठ विषपायी " में अपमान बोध और प्रतिशोध वृत्ति उजागर की गयी है। " आत्मजयी " में प्रश्नाकुल मानवात्मा की व्यग्रता का निदर्शन हुआ है, " एक पुरुष और " में व्यक्ति के अस्तित्व के संकट के प्रश्न को उठाया है। और "शम्बूक " में लोकतान्त्रिक मूल्यादर्शों का जन समर्थन किया गया है। वस्तुतः सृजनात्मक प्रेरणाओं की दृष्टि से समीक्ष्य प्रबन्ध - काव्य एक महती उदात्त रचना भूमिका पर प्रतिष्ठित है।

नयी कविता के सभी प्रबन्ध काव्य नये रूपों तथा कुछ मौलिकता का पुट लेकर सामने आते हैं। इनकी कथावस्तु पुराणों या अन्य पुराख्यानों के विरल कथा सूत्रों पर आधारित है। तथापि यह प्रबन्ध काव्यकारों का कथा विधान कौशल है कि उन्होंने विरल कथा सूत्रों में नवीन कल्पना का समावेश कर कथ्य प्रस्तुति में मौलिकता प्रदान की है। इन प्रबन्ध काव्यों के इतिवृत्तात्मक विनियोजन में पुराख्यानों की असंगतियों के परिष्कार का भी प्रशंसनीय प्रयास हुआ है। इन प्रबन्ध काव्यों के पात्रों को भी मानवीय संवेदना का वाहक बनाया गया है इनके माध्यम से समकालीन कुंठा, संत्रास, नैतिक मूल्यों का पराभाव, हीन-बोध, को दर्शाया गया है। ये पात्र साधारण जन का प्रतिनिधित्व करते हैं ये परम्परित व्यक्तित्व का संवहन करते हुए भी, अपने क्रिया-कलापों, अनुचिन्तन एवं व्यवहार की दृष्टि से युग जीवन के यथार्थ परक साँचे में ढाले हुए प्रतीत होते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम जो कि आज तक एक अवतारी पुरूष के रूप में चित्रित किये गये हैं वे ही " संशय की एक रात " में द्विधाग्रस्त मानसिकता के व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है। जगदीश गुप्त के प्रबन्ध काव्य 'शम्बूक' राजतंत्र को खुली चुनौती देता हुआ लोकतान्त्रिक जीवन मूल्यों का पक्षधर बनकर उपस्थित हुआ है। "आत्मजयी " का उद्घाटित करता है। वह तत्त्व - दर्शन की गुत्थियों

को आधुनिकता -बोध के सन्दर्भ में सुलझाने की पूर्ण कोशिश करता है । "एक कंठ विषपायी " जर्जरित सामाजिक रूढ़ियों और परम्पराओं, ह्रासोन्मुखी जीवन मूल्यों एवं विखण्डित रूग्ण मनोवृत्तियों का चित्रण है । इसके काव्य नायक शंकर और सम्पूर्ण देव सृष्टि संघर्ष की नियति को भोगती हुई मूल्यगत संक्रमण की विभीषिका से जूझती दर्शायी गयी है। धर्मवीर भारती ने अपने काव्य " कनुप्रिया " में राधा के माध्यम से नारी की व्यथा- कथा और संकल्पित मनोदशा को रूपायित किया है । प्रेम तथा युद्ध इन दोनों विरोधी स्थितियों का वर्तमान सन्दर्भों में स्थित होना तथा भावाकुल तन्मयता की प्रतीक राधा द्वारा विपरीत स्थिति में प्रश्न उठाना यही कवि की सृजनशीलता के प्रेरक प्रसंग है । " अंधायुग" ध्वंसात्मक के कारकों को खोजती है । कवि ने इस काव्य में हमारी खण्डित महिमाओं और मर्यादाओं तथा अभिशाप्त व्रणों का कृष्ण की परात्परत्व महिमा में अवसान करते हुए युगीन विसंगतियों, विषमताओं और विरोधाभासों की परिणति को एक विशिष्ट रूप से दर्शाया है । अर्थात नयी कविता के प्रबन्ध काव्यों के पात्र पौराणिक होते हुए भी युग संवेद्य , परम्परित होते हुए भी आधुनिक, आदर्शप्रिय होते हुए भी यथार्थोन्मुखी तथा युग जीवन की संवेदना से अनुरंजित है । ये पात्र इतिहास पुराण में यदि पूज्यनीय और श्रद्धेय हैं तो समीक्ष्य प्रबन्धकाव्यों में इनकी

इयत्ता अनुकरणीय और सम्प्रेषक प्रत्ययों से परिपूर्ण है । सर्वश्री नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, दुष्यन्त कुमार, डा० विनय जगदीश गुप्त प्रभृति प्रबन्ध - काव्यकार नयी कविता के उन समर्थ रचनाकारों में से हैं, जिनकी रचनाधर्मिता के शैल्पिक प्रतिमान सुसंस्कारित और समृद्धिपूर्ण रहे हैं । शिल्प विधान की दृष्टि से उनके प्रयोग चर्चित और प्रशंसित हुए हैं । इन प्रबन्ध काव्यों में भावात्मक संरचना, बिम्ब योजना, प्रतीक विधान, उपमान-योजना, अलंकृति और अर्थलय आदि सभी शैल्पिक प्रतिमानों के विनियोजन में असाधारण रचना-सामर्थ्य का निदर्शन हुआ है । इन युगद्रष्टा कवियों ने सौन्दर्यद्रष्टा रचनाकार के रूप में मानवीय व्यक्तित्व, मानवीय प्रकृति और मानवीय सत्ता के अन्तश्चेतना-परक एवं बहिर्मुखी वृत्ति से गुम्फित सौन्दर्य-बोध को उजागर करने में विलक्षण कारयित्री प्रतिभा का प्रभूत परिचय दिया है । इन कवियों का रचनात्मक प्रयास यह रहा है कि विश्वयुद्धों के आतंक और मूल्यगत संक्रमणशीलता के अंधकार में वे मानवीय आस्थाओं, विश्वासों और संकल्प की संरक्षा में सहायक किस प्रकार बनें? व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व जीवन रूपी इकाइयाँ आज विभाजित होकर नहीं अपितु सुसंगठित होकर ही मानवता का हित - संरक्षण कर सकती है । संकुचित मानवीय मनोवृत्तियों, स्वार्थपरक सामाजिक संघटक, संकीर्ण राष्ट्रवादी

चेतना और सर्वप्रभुत्व का भी विश्व शक्ति संगठनों के स्वहित चिन्तन ने मानवता को ध्वंस के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। फलस्वरूप आतंक, अविश्वास अराजकता और असमजंस भरे वर्तमान में जी रहे हम अनागत के प्रति अनाश्वस्त और निराश होते जा रहे हैं। ऐसी विडम्बना पूर्ण स्थिति में मानव नियति की स्थिति वैसी ही अनिश्चित थी जैसी महाभारत काल में तथा प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध के समय थी। सजग साहित्यकार ﴾ प्रबन्धकाव्यकार ﴿ का दायित्व है कि संकट की इस वेला में वह काव्य - सृजन को कल्पना विलास, प्रयोग धार्मिता या पुराख्यानों के पुनराख्यान की रचना का माध्यम न मानकर उसे एक विराट एवं वैभव मानव हित संवर्द्धक अनुष्ठान के रूप में ग्रहण करें। नये प्रबन्ध काव्यकारों ने सृजनात्मक दायित्व बोध के प्रति जागरूक रहते हुए आलोच्य प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन किया है। जिसके कारण ये कृतियाँ हिन्दी प्रबन्ध काव्य परम्परा की अमूल्य निधियाँ हैं और इनके यशस्वी रचनाकारों की काव्य - कीर्ति का अक्षय स्त्रोत है।

xxxxxxxx

ग्रन्थानुक्रमणिका

आधार ग्रन्थ :

1. आत्मजयी - कुंवर नारायण, भारतीय ज्ञानपीठ कलकत्ता, प्रथम संस्करण, 1965
2. उर्वशी - डा० रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल आर्य कुमार रोड, पटना, प्रथम संस्करण, 1961
3. एक कंठ विषपायी- दुष्यन्त कुमार, प्रथम संस्करण, 1957
4. एक पुरूष और - डा० विनय
5. अंधायुग - डा० धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ काशी प्रथम संस्करण, पृ० - 1954
6. कनुप्रिया - डा० धर्मवीर भारती. भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण - 1959
7. शम्बूक - डा० जगदीश गुप्त
8. संशय की एक रात - नरेश मेहता - हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई, प्रथम संस्करण, 1962.

सन्दर्भ शोध ग्रन्थ :

1. आधुनिक हिन्दी प्रबन्धकाव्यों में महाभारत के कथानकों का विकास - कु के० के० शर्मा, राजस्थान, 1978

2• आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में युग चेतना - विनोद धम - लखनऊ, 1976

3• आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में युग चेतना - {1900-1970} कोरली पारा शेषाम्बा , 1976

4• आधुनिक हिन्दी साहित्य में महाकाव्य - गोविन्द राम शर्मा - पंजाब, 1958

5• कामायनी के पश्चात हिन्दी प्रबन्ध काव्यों का विकास - हेमन्त प्रकाश गौतम, सागर , 1970

6• काव्य में उपेक्षित और आधुनिक हिन्दी प्रबन्धकाव्य - बिंदा साह- बिहार, 1974•

7• खड़ी बोली के स्वातन्त्र्योत्तर प्रबन्ध काव्य : परम्परा और आधुनिकता - श्रीमती सुमत जैन , मेरठ - 1976

8• छायावादोत्तर प्रबन्ध काव्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन - दीनानाथ सिंह मगधा - 1974

9• हिन्दी के छायावादोत्तर प्रब न्ध काव्यों के शिल्प पक्ष का अनुशीलन - कु0 शिव प्रिया - महापात्र - सागर , 1968

10• हिन्दी के वर्तमान महाकाव्यों में चित्रित पौराणिक पात्रों एवं गुप्त जी के पौराणिक का तुलनात्मक अध्ययन, श्रीमती रामरती शुक्ला, कानपुर - 1972•

सन्दर्भ ग्रन्थ : संस्कृत

1• अग्नि पुराण - प्रथम संस्करण वि0 लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई संवत 1977 वि0

2• कूर्म पुराण - वि0, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, संवत 1983

3• काव्यालंकार - रूद्रट - चोखम्बा विद्याभवन वाराणसी सन् 1966

4• काव्य मीमांसा - राजशेखर बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, प्रथम संस्करण

5• काम सूत्र - वात्स्यायन - जगमंगला चौखम्बा वाराणसी (टीका एवं अनुवाद सहित)

6• छान्दोग्य उपनिषद - गीता प्रेस गोरखपुर ।

7• कठोपनिषद - गीता प्रेस गोरखपुर ।

8• पदम् पुराण - वि0 वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई । संवत 1952 वि0

9• ब्रह्म पुराण - वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई । संवत 1963 वि0

10• मत्स्य पुराण - राम प्रताप त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 2008 वि0 ।

11• मनुस्मृति - कुल्लुक भट्ट कृत टीका सहित - गुजराती प्रिंटिंग प्रेस सन् 1913

12• मार्कण्डेय पुराण - वि0 वेंकटेश्वर बम्बई संवत 1981

13• बामन पुराण - ई नवल किशोर प्रेस लखनऊ संवत - 1906

14• बाल्मीकी रामायणम् - पण्डित पुस्तकालय काशी सन् 1959

15• महाभारत - हिन्दी अनुवाद सहित द्वितीय संस्करण गीता प्रेस गोरखपुर ।

16• विष्णु पुराण - गीता प्रेस गोरखपुर सं0 2009 वि0

17• यजुर्वेद - सम्पादक और अनुवादक - श्रीराम शर्मा - आचार्य संस्कृति संस्थान, बरेली ।

18• स्कन्द पुराण - सात खण्ड } - वेंकटेश्वर प्रेस } मुद्रणालय } बम्बई 1966

सन्दर्भ ग्रन्थ : अंग्रेजी -

1• अरिस्टोटिल थ्योरी आफ पोयट्री एण्ड ड्रामा - डा0 पी0एस0 शास्त्री, प्रथम संस्करण, - -

2• इन्साइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका - 14वाँ संस्करण, वाल्यूम - 21

3• द इंगलिश एपिक एण्ड इट्स बैक ग्राउण्ड - 1954

4• दएपिक स्ट्रेन इन इंगलिश नावेल - ई0एम0डब्ल्यू0 टिलीयार्ड, प्रथम संस्करण

5• गाइड टू गाडर्न थाट, सी0ई0एम0 जोड ।

6• द हेरिटेज आफ सिम्बालिज्म - सी0एम0 बावरा ।

7• द लाइफ आफ राम कृष्ण - रोम्या रोला } फ्रेंच से अंग्रेजी में अनुवाद अनुवादक - ई0एफ0मालाकाम स्मिथ ।

8• एट उपनिषद्स अनुवादक स्वामी गम्भीरानन्द - अद्वैत आश्रम - कलकत्ता

9• वर्क्स आफ कालीदास - खण्ड -1, अनुवादक और सम्पादक - सी0आर0 देवधर ।

सन्दर्भ ग्रन्थ - हिन्दी ।

1• आत्मजयी : चेतना और शिल्प - विजया शर्मा मेकमिलन दिल्ली प्रथम संस्करण - 1984

2• आधुनिकता साहित्य के सन्दर्भ में - गंगा प्रसाद विमल, मेकमिलन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1978

3• आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य : राम और कृष्ण काव्य परम्परा का विशिष्ट अध्ययन - हुकुमचन्द राजपनल - भारतीय संस्कृत भवन जालंधर प्रथम संस्करण - 1970

4• आधुनिक प्रबन्ध काव्य संवेदना के धरातल - डा0 विनोद गोदरे वाणी-प्रकाशन नई दिल्ली - प्रथम संस्करण ।

5• आधुनिक हिन्दी वाक्य : डा0 कुमार विमल अर्चना प्रकाशन प्रथम संस्करण-1964

6• आधुनिक हिन्दी कविता का भूमिका - डा0 शम्भूनाथ पाण्डेय - विनोद पुस्तक मंदिर - आगरा प्रथम संस्करण - 1964

7• आधुनिक हिन्दी काव्य की स्वच्छन्द धारा - डा0 त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी -प्रथम संस्करण, 1961

8• आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधाएं - डा0 निर्मला जैन, हिन्दी अनुसंधान परिषद, प्रथम संस्करण - 1963

9• आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा - मालती सिंह, लोक भारती, प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण, 1985

10• आधुनिक हिन्दीममहाकाव्यों का शिल्प विधान - श्यामानंदन {प्रसाद} किशोर सरस्वती पुस्तक सदन आगरा प्रथम संस्करण 1963

11• आधुनिक हिन्दी महाकाव्य- डा0 वीणा शर्मा, अनुपम प्रकाशन जयपुर प्रथम संस्करण - 1970

12• आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग - गोपाल दास सारस्वत सरस्वती प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1961

13• आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक सन्दर्भ - डा0 राम दरश मिश्र इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1986

14• आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन - सरयू प्रसाद मिश्र पुस्तक संस्थान कानपुर प्रथम संस्करण, 1977

15• आधुनिक हिन्दी साहित्य- डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय - हिन्दी परिषद प्रयाग प्रथम संस्करण - 1941

16• आधुनिक हिन्दी आलोचना : एक अध्ययन - डा0 मक्खन लाल शर्मा
साहित्य प्रकाश दिल्ली ।

17• आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास - डा0 राज किशोर
कक्कड एस0 चांद - एण्ड कम्पनी दिल्ली - 1968

18• आधुनिक हिन्दी कविता - जगदीश चतुर्वेदी , मैकमिलन , दिल्ली -1975

19• आलोचना और आलोचना - डा0 इन्द्रनाथ मदान, नीलाभ प्रकाश -
इलाहाबाद प्रथम संस्करण , 1971

20• आलोचना के बदलते मानदण्ड और हिन्दी - डा0 शिवकरण सिंह , किताब
महल इलाहाबाद प्रथम संस्करण - 1967

21• आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्दता वादी प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक
अध्ययन- अजब सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी , प्रथम संस्करण 1975

22• उर्वशी, विचार और विश्लेषण - सं0 डा0 वचनदेव कुमार, नेशनल पब्लिशिंग
हाउस, नई दिल्ली : जयपुर: इलाहाबाद द्वितीय संस्करण
1977•

23• उत्तर छायावादी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - कमला
प्रसाद पाण्डेय रचना प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1972•

24• अंधायुग की मानसिकता : डा० सुरेश - वीणा गौतम- प्रथम संस्करण- 1986

25• कविता और मूल्य संक्रमण : छायावादोत्तर हिन्दी कविता - डा० कमलेश गुप्ता प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली प्रथम संस्करण -1985

26• कविता में विशेषण : आधुनिक सन्दर्भ : देवेन्द्र शुक्ल राधा कृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण - 1981

27• कुंवर नारायणऔर उनका साहित्य - अनिल मेहरोत्रा - ज्ञान भारती प्रकाशन दिल्ली प्रथम -1984

28• गीति नाट्य और उर्वशी - डा० कमला प्रसाद मिश्र साहित्य निकेतन कानपुर प्रथम संस्करण - 1985

29• छायावादोत्तर काव्य शिल्प - डा० छेदी लाल पाण्डेय स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1976

30• छायावादोत्तर काव्य की प्रगतिशील चेतना : सन्तोष कुमार तिवारी भारतीय ग्रन्थ निकेतन दिल्ली प्रथम संस्करण - 1974

31• छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन - डा० विशम्भर दयाल अवस्थी सरस्वती प्रकाशनमन्दिर इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1976

32• छायावादोत्तर हिन्दी कविता - रमाकान्त शर्मा - साहित्य सदन देहरादून
प्रथम संस्करण, 1970

33• दुष्यन्त कुमार : रचनाएं और रचनाएं - गणेश तुलसीराम अष्टेकर पंचशील
प्रकाशन जयपुर - प्रथम संस्करण - 1981

34• दुष्यन्त कुमार और उनका साहित्य - डा0 हरिचरण शर्मा - "चिन्तक"
प्रमोद प्रकाश शिवपुरी।

35• दिनकर के काव्य की भाषा - यतीन्द्र नाथ तिवारी पुस्तक संस्थान,
कानपुर, 1976

36• धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम - डा0 हुकुम चन्द्र राजपाल
वि0भू0 प्रकाशन साहिबाबाद प्रथम संस्करण, 1980

37• धर्मवीर भारती का साहित्य : सृजन के विविध रंग - डा0 चन्द्रभानु सोन
व पंचशील प्रकाशन जयपुर प्रथम संस्करण 1979

38• नरेश मेहता कविता की ऊर्ध्व यात्रा, राम कमल राय लोक भारती प्रकाशन
इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1982

39• श्री नरेश मेहता की वैष्णव काव्य यात्रा - डा0 विष्णु प्रभा शर्मा, आशा प्रकाशन गृह, नई दिल्ली - प्रथम संस्करण -1988

40• नरेश मेहता का काव्य : विमर्श और मूल्यांकन - पंचशील प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण - 1979

41• नव्य हिन्दी काव्य - शिव कुमार मिश्र, अनुसंधान प्रकाशन कानपुर -1962

42• नयी कविता उद्भव और विकास - राम वचन राय बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना प्रथम संस्करण, 1974

43• नयी कविता के नाट्य काव्य - हरिश्चन्द्र वर्मा - शोध प्रबन्ध प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण, 1977

44• नयी कविता का मूल्यांकन : परम्परा और प्रगति की भूमिका पर हरिचरन लाल शर्मा आशा प्रकाशन गृह नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1972

45• नयी कविता कथ्य एवं विमर्श - डा0 अरुण कुमार - प्रथम संस्करण

46• नयी कविता की पहचान - डा0 राजेन्द्र मिश्र - वाणी प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण, 1980

47• नया हिन्दी काव्य और विवेचन - शम्भू नाथ चतुर्वेदी,- नंद किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी प्रथम संस्करण 1964

48• नई कविता की प्रबन्ध चेतना - डा0 महावीर सिंह चौहान, गिरनार प्रकाशन गुजरात प्रथम संस्करण 1981

49• नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका : डा0 हुकुमचन्द्र राजपाल, वाणी प्रकाशन दिल्ली (प्रथम संस्करण) 1976

50• भारती का काव्य - डा0 रघुवंश, इन्द्रनाथ मदान प्रथम संस्करण 1980

51• भाषा और संवेदना - राम स्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद तीसरा संशोधित संस्करण 1981

52• मिथक एक अनुशीलन : डा0 मालती सिंह लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण, 1988

53• मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य - डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी प्रथम संस्करण 1985

54• स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता - अनन्त मिश्र प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1987

55• स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी गीतिकाव्य का शिल्प विधान : डा0 राम सिंह अत्रि सुधा कमल ग्रन्थालय उत्तरी गाँधी कालोनी मुजफ्फर-नगर प्रथम संस्करण 1984

56• स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य : डा0 निजामुद्दीन भारतीय ग्रन्थ निकेतन दिल्ली, प्रथम संस्करण 1981

57• स्वातन्त्र्योत्तर गीति काव्य - डा0 शिव शंकर कटारे प्रगति प्रकाशन आगरा प्रथम संस्करण 1979

58• स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्य : परम्पराओं और प्रयोगों के परिपार्श्व में : डा0 बनवारी लाल शर्मा, रामा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्रथम संस्करण 1972

59. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य और सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति : चन्द्रभूषण सिन्हा विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी प्रथम संस्करण 1985

60• स्वाभाविकता और आधुनिक हिन्दी कविता : मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ पुस्तक संस्थान कानपुर प्रथम संस्करण 1975

61• समकालीन हिन्दी कविता, रवीन्द्र भ्रमर, राजेश प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1972

62• हिन्दी कविता में युगान्तर - ब्रह्मदत्त सुधीन्द्र आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली प्रथम संस्करण - 1950

63• हिन्दी की प्रगतिशील कविता - रणजीत, हिन्दी साहित्य संसार नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 1972

64• हिन्दी की आधुनिक प्रबन्ध कविता का पौराणिक आधार - नंन्द किशोर नन्दन प्रकाशन संस्थान दिल्ली प्रथम संस्करण 1978

65• हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य - राम कमल राय - लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद - 1981

66• हिन्दी काव्य शास्त्र में कवीता का स्वरूप विकास - डा0 पुष्पा बंसल शोध प्रबन्ध प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1976

67• दिल्ली के मध्यकालीन खण्डकाव्य : डा0 सियाराम तिवारी प्रथम संस्करण, हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली प्रथम संस्करण 1964

68• हिन्दी के प्रबन्धकाव्यों में चरित्र चित्रण : डा0 प्रेम कली शर्मा - शब्द श्री प्रकाशन आगरा प्रथम संस्करण - 1986

69• हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन : देवी प्रसाद गुप्त : अपोलो पब्लिकेशन जयपुर प्रथम संस्करण 1968

70• हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व, डा0 लाल्ता प्रसाद सक्सेना

71• हिन्दी कविता और आधुनिकता : डा0 सुरेश चन्द्र पाण्डेय अनुभव प्रकाशन कानपुर प्रथम संस्करण , 1981

72• हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - राम स्वरूप चतुर्वेदी लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 1991

कोश -

1• हिन्दी साहित्य कोश - ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी प्रथम संस्करण 2020 वि0 ।

2• हिन्दी विश्वकोष - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

3• अमरकोश - अमर सिंह नवल किशोर प्रेस प्रथम प्रकाशन - 1919•

पत्र- पत्रिकाएं :

1• अभिव्यक्ति अंक

2• आलोचना - (स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक - भाग -1 अंक अप्रैल 1966 तथा अंक जून 1968)

3• उन्मेष - 2

4• कल्पना, मार्च 1959

5• कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक

6• कादम्बिनी जून 1973

7• ज्ञानोदय सितम्बर 1963

8• धर्मयुग अंक, 12 दिसम्बर 1959 एवं अंक 23 नवम्बर 1975

9• बिन्दु अक्टूबर 1967

10• माध्यम ।

11• साप्ताहिक हिन्दुस्तान 25-31 मई 1980

12• समीक्षालोक अक्टूबर 1972

13• राष्ट्रवाणी, सितम्बर - अक्टूबर 1968

14• लहर - सितम्बर 1960

15• वातायन - 1969

xxxxxxx